हमारे त्यौहार और उत्सव

(102)

प्रकाश नारायण नाटाणी

हमारे त्योहार और उत्सव

प्रकाश नारायण नाटाणी

क्रम

23 जुलाई : तिलक-जयन्ती

उत्सव की तैयारी

उत्सव के दो दिन पूर्व सबको तिलक-जयन्ती की सूचना दे दी जाय। जयंती के दिन विशेष रूप से सफाई और सूत्र-यज्ञ करें। सूत्र-यज्ञ में रामायण का पाठ हो। सूत्र-यज्ञोपरांत गीत-रहस्य का पाठ किया जाय। इसके बाद कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया जाय। स्वतन्त्रता का इतिहास भी स्पष्ट किया जाय तथा यह बतलाया जाय कि श्री तिलक को स्वतन्त्रता की आग भड़काने में किस प्रकार और कितना संघर्ष करना पड़ा। उनके महान् जीवन पर दृष्टिपात करते हुए यह स्पष्ट किया जाय कि उन्होंने अपने जीवन में कौन-कौन से महत्त्वपूर्ण कार्य किये। गोखले एवं अन्य नेताओं के साथ तिलक की तुलनात्मक विवेचना भी की जाय और साथ ही तिलक की महानता पर भी दृष्टिपात किया जाय। इसी प्रकार अनेक चर्चाएं चलें। अन्त में इन सभी लेखों एवं भाषणों को संकलित कर पुस्तकाकार दे दें और पुस्तकालय में सुरक्षापूर्वक रखवा दें। सभास्थल पर लोकमान्य तिलक का चित्र लगाया जावे तथा छात्रों को तिलक जी के बारे में बोलने व कविता बनाकर कविता-पाठ करने को प्रेरित किया जावे।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री — तिलक का जन्म महाराष्ट्र के रत्नगिरि में हुआ था। महाराष्ट्र एक प्रायद्वीप है। यह आजकल महाराष्ट्र राज्य में पड़ता है। महाराष्ट्र एक पहाडी जगत् है। पथरीली ज़मीन रहने के कारण उपज कम होती है। अत: वे लोग स्वभावत: लड़ने-भिड़ने में हट्टे-कट्टे एवं मजबूत होते हैं। यहां पर वर्षा कम होती है। गर्मी विशेष पड़ती है, किन्तु समुद्र निकट रहने के कारण कुछ ठंडक रहती है।

जब गोखले का जन्म हुआ था, उस समय अंग्रेज़ों के पैर भारत में अच्छी तरह जम चुके थे। कुछ हिस्सों में फ्रेंच भी राज्य कर रहे थे। स्वतन्त्रता के लिए होड़ मची हुई थी। देश के बड़े-बड़े नेता राजनैतिक अखाड़े में कमर कसे उतर रहे थे। फिरोज़शाह मेहता, दादाभाई नौरोजी एवं महादेव गोविन्द राणा डे इत्यादि प्रमुख नेताओं में से थे। ये लोग देश की जनता को जागरूक कर रहे थे---उत्प्रेरित कर रहे थे। उनमें क्रांति के अंकुर को प्रस्फुटित कर रहे थे। सन् 1857 ई० की क्रांति समाप्त हो चुकी थी, किन्तु क्रांति की चिनगारियां अभी भी लोगों में विद्यमान थीं। लोग इन चिनगारियों को सुल-

गाने का अथक प्रयास कर रहे थे जिन पर वर्षों से राख पड़ रही थी और इसी क्रांति की वेला में महामति लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने हमें 'सर्वजनहिताय' की क्रांति का सहारा दिया तथा जनजीवन के विचारों में नूतनता लाये। लोग पुनः सचेत तथा जागरूक हुए। अन्धकार में एक सुनहरी किरण पाकर लोग सोत्साह आगे बढ़ते गए। इसी प्रेरणा के बल से उत्प्रेरित होकर हमने अपनी प्यारी स्वतन्त्रता प्राप्त की।

भारतीय आन्दोलन को बढ़ाने में तिलक एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। ये उग्र स्वभाव के थे और महाराष्ट्र में ही सर्वप्रथम राष्ट्रीयता की उत्पत्ति हुई जो तिलक जैसे योग्य, देशभक्त तथा कर्मठ नेता को पाकर समस्त देश में फैल गई। बालगंगाधर तिलक का जन्म 23 जुलाई, 1856 ई० में महाराष्ट्र के रत्नगिरि जिले में हुआ था। महाराष्ट्र में इस तरह के राष्ट्रीय वीर का जन्म दो सौ वर्ष पूर्व शिवाजी के बाद हुआ था। ये चितपावन ब्राह्मण थे और अठारहवीं शताब्दी के पेशवाओं के वंशज थे। इनके बचपन का नाम केशव था। लोक-व्यवहार में इनका नाम बलवंतराव तिलक था। संकेत का नाम बाल था। यही नाम आगे चलकर विश्व-प्रसिद्ध हो गया।

लड़कपन से ही ये बड़े मेधावी थे। इनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। इनकी स्मरण-शक्ति बड़ी प्रखर थी। इनकी अधिकांश पढ़ाई घर पर ही हुई थी। ऐसा कहा जाता है कि इनको प्रतिदिन श्लोक याद करने के लिए दिया जाता था और प्रत्येक श्लोक को याद करने पर एक पैसा दिया जाता था। इस प्रकार बचपन में ही उन्होंने बहुत-से सुन्दर श्लोकों का संग्रह कर लिया था। जब ये दस वर्ष के हुए, तभी इनकी माता की मृत्यु हो गई। 1872 ई० में पिता चल बसे। इनके पालन-पोषण का भार काका और काकी पर पड़ा। इनके काका और काकी इनको बहुत मानते थे। ये भी उनका काफी आदर करते थे। 1893 ई० में जब इनको सज़ा हो गई तो इनके काका-काकी कई दिनों तक रोते रहे।

तिलक जी पूना सिटी स्कूल में पढ़ते थे। वहां उन्होंने दो वर्षों में तीन वर्ष की पढ़ाई समाप्त की। 1872 ई० में इन्होंने एण्ट्रेंस पास किया। दूसरे साल उन्होंने एफ० ए० और बी० ए० पास किया। 1877 ई० में एम० ए० की परीक्षा दी, किन्तु अनुत्तीर्ण हो गये। 1879 ई० में इन्होंने एल-एल० बी० पास किया।

इन्होंने कई स्कूलों की स्थापना भी की। 'केसरी' और 'मराठा' नामक दो पत्रिकाओं को निकाला जो अब तक प्रकाशित हो रही हैं। सन् 1891 ई० से 1897 ई० के बीच उन्होंने पत्रों में छपे लेखों द्वारा सार्वजनिक जीवन में सक्रिय हाथ बंटाकर अपनी निर्भयता और विद्वत्ता का परिचय दिया। धीरे-धीरे उनकी लोकप्रियता बढ़ गई। वे जनता में देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की भावना उत्तेजित करना चाहते थे। शिवाजी के उत्सवों से उन्होंने जनता को राष्ट्रीयता की शिक्षा दी। इससे वे जनता के बीच इतने लोकप्रिय हो गये कि वे 'लोकमान्य' कहलाने लगे। वे कहा करते थे कि गीता के उपदेशानुसार तो हम गुरुओं और संबंधियों का भी संहार कर सकते हैं और हम किसी बुराई के

पात्र नहीं होंगे, यदि हमने यह कार्य स्वार्थ-हित की भावना से नहीं किया है। इस प्रकार उन उत्सवों के द्वारा उन्होंने केवल जनता को जाग्रत ही नहीं किया, प्रत्युत राजनैतिक आन्दोलन में लड़ने योग्य बना दिया। अकाल-पीड़ित जनता की सेवा करने के लिए उन्होंने एक स्वयंसेवक दल का सुसंगठन भी किया।

पूना में प्लेग का बड़ा जोर था। ऐसे समय में दो नवयुवकों ने प्लेग कमिश्नर मिस्टर हैण्ड और एक अन्य अंग्रेज को गोली से मार दिया। सरकार की ओर से उनपर राजद्रोह का मुकदमा चला और डेढ़ वर्ष का कारावास-दण्ड दिया गया।

महाराष्ट्र में राष्ट्रीय आन्दोलन को सुसंगठित करने तथा शिवाजी की स्मृति को पुन: जाग्रत करने का श्रेय तिलक जी को ही है। 1889 ई० में उन्होंने कांग्रेस में प्रवेश किया। इनके विचार उग्र थे और ये कांग्रेस के गर्म दल के नेता थे। इनका आदर्श था—स्वावलम्बन, सेवा और कष्ट-सहन।

1906 ई० में उनकी लोकप्रियता पराकाष्ठा पर पहुंच गई थी। उनका प्रभाव लोगों के हृदयों पर गहरा पैठ चुका था। 1908 ई० में तिलक को राजद्रोह के जुर्म में छ: वर्ष की सजा हो गई। उन्हें निर्वासित करके छ: वर्षों के लिए जेल भेज दिया गया। तिलक के साथ इस घोर अन्याय से भारतीय क्षुब्ध हो उठे। जेल में ही उन्होंने तीन अमूल्य ग्रन्थों की रचना की जिनका नाम दी आकिटिक, 'होम ऑफ दी वेदाज़' और 'गीता-रहस्य' हैं। इनमें 'गीता-रहस्य' का विचार बड़ा ही व्यापक, सुदृढ़ तथा परिपक्व है जो तिलक जी की ज्वलंत प्रतिभा का ज्वलंत प्रतीक है। तिलक आपादमस्तक राष्ट्रवादी नेता थे। वे सदा कहा करते थे कि कांग्रेस की नर्मी और राजभक्ति स्वतंत्रता-प्राप्ति के योग्य नहीं है। वे प्रथम भारतीय थे जिन्होंने कहा था—"स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा। (Swaraj is my birth-right and I will have it)।" इनका यह दृढ़ विश्वास था कि "विदेशी शासन कितना भी अच्छा क्यों न हो, स्वशासन से कदापि अच्छा नहीं हो सकता।"

1907 ई० में वे कांग्रेस से अलग हो गये और ऐनीबेसेण्ट के साथ कंधे से कंधा मिलाकर 'होमरूल आन्दोलन' में काम करने लगे। आखिरकार 1 अगस्त 1920 ई० को जिस दिन असहयोग आन्दोलन आरंभ होने वाला था, महात्मा तिलक इस संसार से चल बसे। यद्यपि आज उनका भौतिक शरीर इस संसार में नहीं है। फिर भी उनका व्यक्तित्व प्रतिभा एवं दृढ़ विचार भारतीयों के हृदय पर आच्छादित है। उनके विचार भारतीयों को ही नहीं वरन् समस्त मानव और सारे विश्व का युग-युग तक पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे।

शिक्षाएं—देश के लिए उत्सर्ग होने को सदा तत्पर रहना चाहिए। देश की सेवा एवं उसकी आजादी को क़ायम रखने को उद्यत रहना चाहिए। अपने व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के द्वारा दूसरों के मन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

तिलक-जयन्ती

तेईस जुलाई अठारह सौ छप्पन, रत्नगिरि जन्म-स्थान।
ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए, बलवन्त राव सुजान।।
गंगाधर रामचन्द्र पिता, व माता-नाम पार्वती बाई।
बाल्यकाल में ही माता ने ले ली संसार से विदाई।।

प्रथम संस्कृत का अध्ययन कर पूना स्कूल में प्रविष्ट हुए।
अंग्रेज अध्यापक से झगड़ा हुआ, शाला छोड़ रुष्ट हुए।।
चैन नहीं मिला तिलक को, जब तक अध्यापक नहीं निकलवाया।
अन्य विषयों के साथ आपने, गणित में प्रभुत्व जमाया।।

संस्कृति के सजग प्रहरी, कर्मठ अध्ययनशील आप थे।
स्वधर्म के प्रबल समर्थक परोपकारी उदार आप थे।।
रानाडे, चिपलूणकर जी से देश-भक्ति का ज्ञान लिया।
पूना में न्यू इंगलिश स्कूल चला देश-भक्ति आह्वान किया।।

'मराहठा' 'केसरी' द्वारा देश में, नवजीवन फूंक दिया।
तानाशाहियों का वीर ने, देश में पर्दा फाश किया।।
अत्याचारी शासन का, पत्रों में घोर विरोध किया।
भारत के जन-मन को जगा, निर्भीकता का परिचय दिया।।

जेलों में नित चक्की पीसी, मातृ-भूमि हित परवाने ने।
कोड़ों के प्रबल प्रहार सहे, स्वतन्त्रता के दीवाने ने।।
छः वर्ष का कारावास दे, मांडले आपको भेज दिया।
गीता-भाष्य, गीता-रहस्य का, आपने यहीं सृजन किया।।

वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषदों का गहन अवलोकन किया।
स्वतन्त्रता-संग्राम सेनानी ने, लोकमान्य पद पा लिया।।
शत-शत प्रणाम शहीदे तिलक, तुम पर बलि-बलि जाते हैं।
निशि-दिन पल-पल सांझ सकारे, तुम्हारी महिमा गाते हैं।।

श्रावण शुक्ला 7 : तुलसी-जयन्ती

उत्सव की तैयारी

तुलसी-जयन्ती मनाने के तीन दिन पहले सभी छात्रों एवं शिक्षकों को सूचना दे देनी चाहिये। इस तरह वे लोग नीचे लिखे विषयों पर पहले ही से निबन्ध तैयार करेंगे---

(1) तुलसीकालीन परिस्थितियाँ।
(2) तुलसी की रचनाएँ और उनकी भाषा।
(3) तुलसीदास और अवधी भाषा।
(4) तुलसीदास और सूरदास की तुलना।
(5) तुलसी की रचनाओं में साहित्यिक अभिव्यक्ति।
(6) तुलसी और ज्ञान-भक्ति-शाखा।
(7) तुलसी के सिद्धान्त और ढंग।
(8) तुलसी और सगुण-धारा।
(9) तुलसीदास और 'रामचरितमानस'।
(10) तुलसी की नारी-भावना।
(11) तुलसी की धर्म-भावना।
(12) तुलसी और उनके राम।
(13) तुलसी और राम-भक्ति-शाखा।
(14) राम-साहित्य की परम्परा।
(15) 'अष्टछाप' कवियों में तुलसी का स्थान।
(16) तुलसी के समकालीन अन्य कवि।

इन सब विषयों पर छात्र एवं शिक्षक निबन्ध तैयार करें और भाषण दें। भाषण और निबन्ध-प्रतियोगिता भी होनी चाहिये इससे उनमें वक्तृत्वकला एवं आन्तरिक गुणों का विकास होगा और जीवन की होड़ में सफल होने की आकांक्षा रखेंगे। साथ-ही-साथ वाद-विवाद भी चले। उनमें भी पुरस्कार रखे जायँ। तुलसीदास के विषय में एकांकी एवं प्रहसन भी प्रस्तुत किये जाने चाहिये। अकबर के समकालीन कवियों का एक दरबार उपस्थित करना चाहिये और उसमें सभी कवि अपनी-अपनी सर्वश्रेष्ठ रच-

नाओं से सुन्दर-सुन्दर अंशों को उद्धृत करें। हिन्दी के अच्छे-अच्छे कवियों का स्वर्ग में एक दरबार लगे और उसमें भी लोग अपनी-अपनी सुन्दर-सुन्दर रचनाओं के अंश प्रस्तुत करें। छात्र आधुनिक कवि के रूप में रंगमंच पर आएँ और तुलसी के बारे में रचनाएँ प्रस्तुत करें। इस प्रकार के अनेक विषय रखे जा सकते हैं। इस दिन रामायण के सुन्दर अंशों का सस्वर पाठ हो। साथ-ही-साथ तुलसी के उत्तम पदों का सस्वर पाठ होना चाहिये। प्रसाद-वितरण का आयोजन भी किया जाय। प्रधान तथा अन्य प्रतिष्ठित सज्जन तुलसी के विषय में अपनी सम्मति प्रकट करें। फिर सभी लेखों, भाषणों एवं कविताओं को संकलित करके पुस्तक का रूप दे दें। उत्सव-स्थल पर उत्सव मनाते समय गोस्वामी तुलसी दास जी का चित्र भी लगाना चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री—जिस समय तुलसी का आविर्भाव हुआ था, उस समय देश में लोदी-वंश अपनी अन्तिम साँसें गिन रहा था और उसके स्थान पर मुगल-शासन का प्रभुत्व कायम हो चुका था। राजनैतिक परिवर्तन द्रुतगति से हो रहा था और देश की सारी जनता विकल थी। इस काल में ही हिन्दुओं की राजनैतिक सत्ता समाप्त हो गई थी और वे मुगलों के प्रभुत्व के नीचे दबे जा रहे थे। शनैः-शनैः वे ऐश्वर्य लोलुपता के शिकार बनते जा रहे थे। क्षत्रियों का क्षात्र-तेज एवं आत्माभिमान धीरे-धीरे गर्त में गिरता जा रहा था। मुगलों के आधिपत्य को अंगीकार करके वे संघर्ष एवं स्वाधीनता को भूल चुके थे। देश में कोई राजनैतिक संगठन नहीं था। देश की अवस्था अत्यन्त ही दयनीय और शोचनीय थी।

सामाजिक ढाँचा छिन्न-भिन्न था। वर्ण-व्यवस्था विघटित हो चुकी थी। जनता में दास-वृत्ति प्रवेश कर रही थी, और स्वाभिमान का लोप होता जा रहा था। कृषकों की बुरी हालत थी। खेतों में कोई उत्तम प्रबन्ध नहीं था। उनकी आवश्यकताओं की उपेक्षा करके जबरदस्ती लगान वसूल किया जाता था। दुर्भिक्ष और महामारी देश में व्यापक रूप में फैल रही थी। इसकी रोक-थाम का कोई प्रबन्ध न था।

प्रजा के सुख-दुःख से राजा बहुत ही दूर रहा करता था। न तो वह उनकी दुर्दशा को देख सकता था और न उनकी दरिद्रता को, न उनकी भुखमरी और न अन्य प्रकार के पाखण्डों, अनाचारों, व्यभिचारों अत्याचारों को। प्रत्येक क्षेत्र में मर्यादा का बाह्य प्रदर्शन मात्र होता था। तीर्थ-स्थानों एवं देवालयों की अवस्था अत्यन्त खराब थी। धर्म के नाम पर व्यभिचार हो रहा था। वर्ण-व्यवस्था टूट रही थी। कबीर के निर्गुणाकार का इतना प्रबल प्रभाव हिन्दू-धर्म पर पड़ा था कि लोगों में मूर्तिपूजा की आस्था नहीं रह गई थी। निम्नवर्गों में जागृति तो आई थी, परन्तु वह जागृति स्वतन्त्र वैधानिक विकास के रूप में नहीं, प्रत्युत उग्र तथा उच्छृंखल विध्वंस के रूप में आई थी। इस्लाम का झंडा आसमान में लहरा रहा था और कबीर द्वारा चलाये गये निर्गुणवाद में इस्लाम के एकेश्वरवाद का भी रंग मिल गया था। हिन्दुत्व इस्लाम के शान्त-साम्राज्य के अन्दर विलीन-सा हो रहा था। कबीर के प्रभाव के कारण ये दोनों विशाल धर्म आमने-सामने एक-दूसरे का हृदय टटोलने का प्रयत्न कर रहे थे।

उद्भ्रान्त तथा थके हुए हिन्दू-धर्म में कबीर ने चेतना पैदा की, तो सूर ने अपनी मुरली की तान से उसे तन्मयता में ला समेटा। यह तुलसी का ही काम था कि लोगों में फिर से नवीन शक्ति का संचार कर जीवन की ओर अग्रसर किया और सक्रियता का पाठ पढ़ाया। उद्भ्रान्त हिन्दू-धर्म सूर की वाणी सुनकर शान्ति-लाभ तो कर बैठा था, अपनी थकान तो भूल-सा गया था, पर दौड़ने की शक्ति तो तुलसी ने ही दी। विरोधी के सामने छाती अड़ाने का साहस तुलसी ने ही नये सिरे से सँजोया।

ईसा की छठी शताब्दी से लेकर 11वीं शताब्दी तक संसार के प्रत्येक भाग में धार्मिक एवं राजनैतिक क्रांतियों का बाजार गर्म रहा। भारत में बौद्धों और जैनों के झंझा से उखड़ते हुए हिन्दू-धर्म को शंकर और कुमारिल ने पुनः स्थापित किया। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि हिन्दू-धर्म सिर के बल खड़ा था जिसका फल उतना अच्छा नहीं हो सकता था। तब दक्षिण से दूसरी धारा चली जिसने धर्म को हृदय के बल से खड़ा किया, जिसके नेता थे बल्लभाचार्य। इस सम्प्रदाय के कई आचार्यों ने जिनमें मुख्य रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी, निम्बकाचार्य, रामानन्द, चैतन्य महाप्रभु, सन्त नामदेव, जयदेव, शंकराचार्य ने उत्तर और दक्षिण भारत को भक्ति से प्लावित किया। परन्तु इसमें प्रबल धक्का लगा ज्ञान-मार्गी तथा प्रेम-मार्गी सन्तों के द्वारा, जिन्होंने भक्ति तथा ज्ञान के एकांगी तथा छिन्न-भिन्न रूप से एक ऐसा महल खड़ा कर दिया जिसमें कहीं का रोड़ा और कहीं का पत्थर था, जो भारतीय परम्परा के प्रतिकूल-सा प्रतीत होता था, किन्तु समय की मांग के अनुसार उसे थोड़ी देर के लिए स्वीकार किया गया और समझा गया इस छप्पर के नीचे विश्राम करके थकान तो मिटा सकते हैं। परन्तु जिस समय बल्लभाचार्य द्वारा चलाई गई भक्ति की धारा में गोस्वामी जी ने भारतीय परम्परा के अनुकूल सभी मान्यताओं का सुन्दर समन्वय करके राम के धनुर्धर रूप को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया तो जन-मानस में आशा की बिजली चमक उठी और हृदय में उल्लास का पारावार उमड़ पड़ा। इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दू-धर्म के आड़े समय पर काम किया और उसे बचा लिया।

गोस्वामी तुलसीदास जी केवल हिन्दी साहित्याकाश के ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के अनुपम रत्न माने जाते हैं। तुलसीदास का प्रादुर्भाव उस संक्रान्ति काल में हुआ था जिस समय सारे भारत की जनता उद्भ्रान्त थी और महान् परिवर्तनों से गुजरती हुई एक नवीन संस्कृति की रचना में जुटी हुई थी। ऐसी अवस्था में तुलसीदास ने जनता के मानसिक संतुलन को स्थापित करने के लिए भगवान् राम के आदर्श चरित्र को काव्य के रूप में जनता-जनार्दन के समक्ष प्रस्तुत किया। उन्होंने अपनी कल्याणकारी वाणी द्वारा भक्तिरस के पिपासुओं के लिए एक ऐसे अमर महाग्रन्थ की रचना की जो उनकी भक्ति के रसास्वाद के साथ-साथ जीवन के उच्चादर्शों को उपस्थित कर सके, आशा और भक्ति का संदेश दे सके, सुन सके।

यह बड़े खेद की बात है कि हिन्दी-साहित्य के महाकवि तुलसीदास का जीवन-वृत्त अभी भी संदिग्ध है। पंडित रामगुलाम द्विवेदी, शिवसिंह सेंगर, जॉर्ज ग्रियर्सन,

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉक्टर माताप्रसाद गुप्त, डॉक्टर श्यामसुन्दर दास, श्री नन्द-दुलारे वाजपेयी और मिश्रबन्धु जैसे अनेकानेक विद्वानों की खोज के आधार पर यहाँ तुलसीदास जी की जीवनी प्रस्तुत की जा रही है।

तुलसीदास जी के जन्म-काल के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों के अनेक मत हैं। तुलसी-काव्य-मर्मज्ञ रामगुलाम द्विवेदी ने गोस्वामी जी का जन्म-संवत् 1589 निश्चित किया है। 'शिवसिंह सरोज' के रचयिता श्री शिवसिंह सेंगर ने इसे संवत् 1583 बताया। किन्तु ये दोनों सम्वत् जनश्रुति के आधार पर बतलाये गए हैं। डॉक्टर ग्रियर्सन के अनुसार इनका जन्म-सम्वत् 1586 निश्चित किया गया है। किन्तु बेनीमाधव दास कृत 'गोसाईं चरित' के आधार पर इनकी जन्म-तिथि श्रावण शुक्ल सप्तमी सम्वत् 1554 ठहरती है—

"पन्द्रह सौ चौवन विषय, कालिन्दी के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी धर्यो शरीर।"

महात्मा रघुवरदास रचित 'तुलसीचरित' और रामचरितमानस पर की गई टीका भी इसी सम्वत् का समर्थन करती है। गणना के आधार पर यह तिथि बिल्कुल ठीक उतरती है और आज के अधिकांश विद्वान इसी तिथि को ठीक मानते हैं।

जन्म-तिथि की भाँति ही तुलसी के जन्म-स्थान के विषय में अनेक विवाद प्रचलित हैं। लाला सीताराम ने वर्तमान सोरों अथवा सूकर क्षेत्र को स्थित किया है। डॉक्टर भगीरथ मिश्र ने अपने ग्रन्थ 'तुलसी रसायन' में सूकर क्षेत्र से पृथक् उसी के समीप किसी अन्य स्थान की ओर संकेत किया है। कुछ लोगों ने चित्रकूट के निकट हाजीपुर ग्राम को भी तुलसी का जन्म-स्थान बतलाया है, किन्तु डॉक्टर श्यामसुन्दर दास, पंडित रामगुलाम द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गोस्वामी जी का जन्म-स्थान राजापुर, तहसील और परगना मऊ जिला बांदा में निश्चित किया है। राजापुर एक अच्छा कस्बा है। यह यमुना नदी के किनारे करवी रेलवे स्टेशन जी० आई० पी० से 18 मिल पर स्थित है।

गोस्वामी जी ब्राह्मण कुल में जन्मे थे। गोस्वामी जी किस जाति के ब्राह्मण हैं, इसके विषय में मतैक्य नहीं है। कुछ लोग इन्हें सनाढ्य कुछ-कुछ सारस्वत कुछ सरयूपारी कहते हैं। मूल 'गोस्वामी चरित' में पाराशर गोत्र के पत्योजा के दूबे बतलाया गया है—

"तुलसी पाराशर गोत्र दूबे पत्योजा के"

'भक्त कल्पद्रुम' में इन्हें कान्यकुब्ज बतलाया गया है। मिश्रबन्धु और अधिकांश ने भी इन्हें कान्यकुब्ज माना है।

इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे तथा माता का नाम हुलसी था। कवि के समकालीन अब्दुल रहीम खानखाना का प्रसिद्ध दोहा इनकी माता के नाम की पुष्टि करता है। ऐसा कहा जाता है कि एक बार एक व्यक्ति को कुछ रुपये की जरूरत थी। वह तुलसी के पास आया। तुलसी ने यह पंक्ति लिखकर उसे रहीम के पास भेजा—

"सुरतिय, नरतिय, नागतिय सब चाहत अस होय।"

इस पर रहीम ने लिखकर भेजा था—

"गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।"

उपर्युक्त दोहे से माता के नाम का ही सम्बोधन होता है। इसके अतिरिक्त भी उन्होंने रामायण के प्रथम सोपान की राम-कथा महिमा में लिखा है—

"रामहिं प्रिय पावन तुलसी-सी, तुलसीदास हित हिय हुलसी-सी।"

उक्त पंक्ति में हुलसी शब्द से तुलसी की माता का नाम निकलता है। इनके गुरु का नाम नरहरिदास जी था और परम्परा से इनका ही नाम आ रहा है। इस प्रमाण की पुष्टि 'मानस' के प्रारम्भ में वन्दना के सोरठे से होती है—

"बन्दौं गुरुपद-कंज कृपा-सिन्धु नर-रूप हरि"

'भविष्य पुराण' के आधार पर इनके गुरु का नाम राघवानन्द ठहरता है। इस विषय में भी कोई निश्चित मत स्थिर नहीं है।

ऐसा कहा जाता है कि इनका जन्म अभुक्त मूल नक्षत्र में हुआ था। ऐसे का मुँह देखने से मृत्यु हो जाती है। अतः जन्म से ही इनके माता-पिता ने इनको त्याग दिया था। 'कवितावली' में उन्होंने लिखा है—

"जायो कुल मगन बधायो न बजायो सुनि,
भयो परिताप चाप जननि-जनक को।"

दूसरे स्थान पर इन्होंने लिखा है—

"मातु-पिता जग जाहि तज्यो, विधिहु न लिख्यो कीछ भाल भलाई।
नीच बिरादर भाजन का टूकर-टूकन लागि लगाई।"

विनय पत्रिका में कवि ने लिखा है—

"जननि जनक तज्यो, जनामि, करम बिनु विधिहु सृज्यौ अवडेरे।
तम तज्यौ कीट तज्यौ मातु पिताहु।"

उक्त पंक्तियों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि जन्मते ही इनके माता-पिता ने इनका त्याग दिया था।

तुलसीदास का प्रारम्भिक नाम रामबोला था। बचपन में जब ये घर से निकले तो इनकी दशा अत्यन्त दयनीय थी। यदि कोई इन्हें थोड़ा भी अन्न दे देता तो वे उसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के बराबर समझते थे। देखिए—

"बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानेत हों चारि भल चारि ही चनक को।"

पुनश्च—

"जाति के सुजाति के, कुजाति के पेरागिबस
खाय टूट सबके विदित बात दुनिसा।"

अब तुलसीदास जी साधु-सन्तों के संग में आने लगे और विद्या-प्राप्ति करते हुए सूकर क्षेत्र में पहुंचे। वहां पर इन्होंने गुरु के मुख से रामकथा सुनी—

"मैं पुनि निज गुरु सन सुनि, कथा सो सूकर खेत।
समुझि नहीं तस बालपन, अब अति रहे अचेत।"

किन्तु गुरु सुनाते ही रहे और बार-बार सुनाया—

तदपि कहहिं गुरु बारहिं बारा।
समुझि परि कछु मति अनुसारा।।

कुछ दिनों के बाद इनकी शादी दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुई। कहा जाता है कि ये अपनी स्त्री पर बहुत आसक्त थे। एक बार इनकी स्त्री इनसे बिना पूछे ही मायके चली गई। पत्नी-विरह उनसे नहीं सहा गया। वे भी ससुराल चल दिए। वहाँ पर पहुंचने पर उनकी पत्नी रत्नावली ने यह दोहा कहा—

लाज न लागत आपको, दौरे आयहु साथ,
धिक-धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौ मैं नाथ।
अस्थि-चर्ममय देह मम, तामे जैसी प्रीति,
तैसी जो श्री राम महँ, होति न तो भवभीति।।

कहा जाता है कि स्त्री की इस फटकार को सुनकर इनके ज्ञान-चक्षु खुल गए और ये प्रयाग आकर साधु हो गए। इन्होंने लिखा है कि—

"हम तो चाखे प्रेम-रस, पत्नी के उपदेश।"

देशाटन करते हुए काशी से अयोध्या आए। यहीं तुलसी चौरा पर इन्होंने 'रामचरित-मानस की रचना की।

गोस्वामी जी ने अपनी पत्नी से विरक्त होकर देश के विभिन्न तीर्थों का तीर्थाटन किया। कहा जाता है कि उन्होंने आसेतु मानसरोवर तक सहस्रों मील की पैदल यात्रा की। इस प्रकार उन्होंने अनेकों तीर्थों के दर्शन किए। इनकी रचनाओं के आधार पर यही प्रतीत होता है कि उनका चित्त विशेष रूप से चित्रकूट में रमा था। तीर्थ-यात्रा के सिलसिले में वृन्दावन भी पहुँचे। वहाँ पर इन्होंने कृष्ण की मूर्ति देखकर यह दोहा पढ़ा—

"का बरनौं छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष-बाण लेउ हाथ।।"

इस दोहा को सुनकर कृष्ण ने ऐसा ही किया, यह भी संदिग्ध है। चित्रकूट के घाट पर राम का इन्होंने साक्षात्कार भी किया था। इसका प्रमाण इस दोहे में लगता है—

"चित्रकूट के घाट पर, भई सन्तन की भीड़।
तुलसीदास चन्दन घिसैं तिलक लेत रघुबीर।।"

पहले गोस्वामी जी 'हनुमान फाटक' पर रहा करते थे, किन्तु मुसलमानों के उपद्रव से 'गोपाल मन्दिर' में चले गए। वहाँ गोसाइयों से विरोध हो जाने पर 'अस्सी-घाट' आकर रहने लगे थे। जीवन के अन्तिम दिनों में ये वात रोग (गठिया) से पीड़ित रहे। इस क्लेश में इन्होंने 'हनुमान बाहुक' की रचना की। जान पड़ता है इससे इनकी पीड़ा कुछ शान्त हो गयी थी, क्योंकि उन्होंने लिखा है—

"आये हुते तुलसी कुरोग रडढ़ राकसीनी।
केसरी किशोर राखे वीर वरिधाई है।"

इतना होने पर भी इससे रोग की पूर्ण निवृत्ति नहीं हुई। इन्होंने पुनः सात छन्दों

में रोग से निवृत्ति के लिए प्रार्थना की, किन्तु कोई असर न हुआ। मरते समय में उन्होंने यह दोहा कहा था—

"राम नाम जश वरनि के, भया चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अबहीं तुलसी सौन।"

इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा बहुत ख्यात है—

सम्वत् सोलह सो असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यों शरीर।"

तिथि-गणना के अनुसार यह ठीक आती है। टोडर के वंशज भी इसी तिथि को ठीक मानते हैं। अतः तुलसीदास की मृत्यु श्रावण तृतीया, दिन शनिवार, 1680 सम्वत् में हुई।

तुलसीदास की रचनायें—यों तो तुलसीदास जी की अनेकों रचनाएं हैं, लेकिन उनके 13 ग्रन्थ ही प्रामाणिक माने जाते हैं—कवितावली, दोहावली, गीतावली, रामचरितमानस, विनय-पत्रिका, रामलला नहछू, पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली, रामाज्ञा प्रश्नावली और हनुमान बाहुक।

तुलसीदास जी की रामायण—तुलसीदास जी का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'रामचरित-मानस' है। यह हिन्दी-साहित्य-गगन की सर्वोत्कृष्ट कृति है। यदि भारत से 'रामायण' को हटा दिया जाय तो कदाचित यहाँ की सारी पुस्तकें मृतप्राय ही कही जा सकेंगी। इसका महत्त्व, इसका गौरव चिरकाल तक बना रहेगा। तुलसीदास ने हिन्दु-समाज के समक्ष 'रामचरितमानस' को उस समय प्रस्तुत किया, जिस समय यह मुगलों के कठोर अत्याचार के गर्त में गिरता जा रहा था और हिन्दू लोग शनैः-शनैः मुगल सभ्यता को अपनाते जा रहे थे। यदि शंकर के पास विद्वत्ता और पांडित्य एवं रामानुजाचार्य के दर्शन और धर्म ने हिंदू-धर्म को नवचेतना, नवजीवन और नित्य-नूतन प्रेरणा दी तो यह भी कहा जा सकता है कि तुलसी की रामयण ने हिंदू-धर्म को नवयौवन दिया।

तुलसीदास ने 'मानस' की रचना एक महाकाव्य के ढंग पर की है। जीवन के सभी पहलुओं पर कवि ने प्रकाश डालने की भरसक कोशिश की है। भाव और आदर्श आदि में मापदण्ड के अनुसार 'रामचरितमानस' साहित्य-गगन की श्रेष्ठतम रचना कही जा सकती है। कथानक का सौष्ठव कायम रखने के साथ-साथ आदर्श की मुख्यता पर भी उन्होंने पूरा ध्यान दिया है। भाषा में कहीं भी असम्बद्धता नहीं आ पाई है।

'रामचरितमानस' की रचना उन्होंने 1631 में प्रारम्भ की थी—

"सम्वत सोरह के इकतीसा, करउँ कथा हरि-पद धरि सीसा।
नवमी भौम बार मधु मासा, अवधपुरी यह चरित-प्रकासा।"

मानस के रचना-काल के सम्बन्ध में यह तिथि सर्वमान्य है। वेणी माधवदास ने भी लिखा है—

"राम जनम तिथि बार सब, जस तोता यह मास,
तस इकतीसा महजुरे, जोग लगन गरास।

यह विधि भी आरम्भ, रामचरितमानस विमल,
सुनत मिटत मददम्भ, कामादिक सनसै सकल।"

इस प्रकार वही तिथि प्रामाणिक मानी जाती है।

आज 'रामचरितमानस' के पाठकों की संख्या वेद, बाइबिल, कुरान इत्यादि से अधिक है। इस बात से सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ जितना सर्वप्रिय है, कदाचित् अन्य कोई ग्रन्थ नहीं। केवल अक्षर-ज्ञान रखने वाले से लेकर बड़े-बड़े प्रकांड पंडित तक इसका सामदर करते हैं और "निज पौरुष पालन ज्यों, मसक उड़ाहि आकाश" के अनुसार इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। रोचकता में भी यह ग्रन्थ-रत्न अद्वितीय है। अउस साहब ने इसे अंग्रेजी गद्य में और मुन्शी द्वारकाप्रसाद उफ़ुक ने उर्दू पद्य में इसका अनुवाद किया है। सहस्रों मनुष्य इसका पूजा-भाव से पाठ करते हैं। इसकी महत्ता प्रदर्शित करने के लिए सर जार्ज ग्रियर्सन के शब्दों में इतना ही कह देना पर्याप्त है कि रामचरितमानस का हिन्दुओं में वाइबिल से भी अधिक प्रचार है और इसकी पहुँच महलों से लेकर झोंप-ड़ियों तक है।

यही कारण है कि आज रामचरितमानस का बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं से लेकर टूटी-फूटी फूस की झोंपड़ियों तक में पाठ किया जाता है और उसकी पूजा होती है। यह हिन्दी-साहित्य-गगन का ही नहीं वरन् समस्त हिन्दू-समाज का प्रबल प्रकाश-स्तम्भ और सबल कृति-स्तम्भ है। तुलसी की जो रामभक्ति रामायण के रूप में प्रस्फुटित हुई आज वही रामायण घर-घर में रामभक्ति का प्रस्फुटन कर रही है।

तुलसीदास की महत्ता—सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने लिखा है कि बुद्ध के बाद तुलसीदास ही सबसे बड़े लोकनायक थे। इनकी वाणी में एक अद्भूत माधुर्य, विचित्र शक्ति और अलौकिक शान्ति विराजमान थी। वे भारत की मूक और पीड़ित जनता के सच्चे सेवक थे। उनके काव्य और जीवन की सबसे बड़ी महानता है, लोक-धर्म का ग्रहण। उन्होंने सामाजिक जीवन का ही आश्रय ग्रहण किया तथा विच्श्रृंखल सामाजिक व्यवस्था को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया।

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० विसेन्ट स्मिथ ने कहा है—

"वह कवि हिन्दी-कविता-कानन का सबसे बड़ा तरु है। उसका नाम न तो 'आईने अकबरी' में मिलेगा न मुसलमान इतिहासकारों की पुस्तकों में और न फ़ारसी इतिहासकारों के लेखों के आधार पर रची हुई किसी यूरोपियन पुस्तक में। किन्तु यह सब होते हुए भी वह अपने समय का सर्वश्रेष्ठ कवि था। उसको हम इस प्रकार कह सकते हैं कि करोड़ों स्त्री-पुरुषों के हृदय पर जो उसने अटल साम्राज्य स्थापित किया है, वह अकबर के साम्राज्य से अधिक चिरस्थायी है।

लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी-काव्य-गगन के सबसे अधिक दीप्तिमान नक्षत्र हैं। आज उनकी काव्य-प्रतिभा और विद्वत्ता का प्रभाव देश-काल की सीमा का अतिक्रमण कर सार्वकालिक और सार्वभौम होकर सर्वव्याप्त हो गया है। उनकी कृतियाँ उत्कृष्ट कला-कौशल के कारण हिन्दी-काव्य-गगन में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती हैं।

शिक्षाएं—अपने कला-कौशल द्वारा विश्व को प्रभावित, प्रभासित और प्रकाशित करना चाहिए। लोक-सेवक बनकर लोक-कल्याण करना चाहिए। धर्म के मिथ्या भेद-भाव को मिटाना चाहिए। ग़रीबी और दुःख में कभी नहीं घबराना चाहिए और दुःख के निवारण का कारण ढूँढ़ना चाहिए। भगवान् में भक्ति रखनी चाहिए और उस भक्ति के द्वारा अन्य लोगों को भी भक्त बनाने की चेष्टा करनी चाहिए। किसी के साथ दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए। मृदुभाषी एवं सर्वप्रिय बनाने की कोशिश करनी चाहिए।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

जन्म लेते ही हुलसी-सुत ने जब अपना मुख खोला।
राम नाम निकला मुख से, वह कहलाए रामबोला।।
मूल नक्षत्र में पैदा हुए थे, राम के तुलसीदास।
घर से निष्कासित हुए, बीता दुखमय जीवन मधुमास।।

नर हरिदास गुरु तुलसी के, जिनसे उत्तम शिक्षा पाई।
दीनबन्धु की पुत्री रत्नावली से, नव-गृहस्थी रचाई।।
प्रगाढ़ प्यार था पत्नी से, जिस बिन कल नहीं पाते थे।
बिन पत्नी के जीवन वह, सूना सूना पाते थे।।

एक दिन पत्नी बिन पूछे, पीहर अपने चली गई।
तुलसी पहुँचे ससुराल, बात पत्नी से न सही गई।।
पत्नी ने बिगड़ कर झट, तुलसी को फटकार दिया।
इतना प्यार राम से होता, हो जाता उद्धार पिया।।

बात चुभी पत्नी की, फिर निज ध्यान राम में लगा दिया।
राम महिमा से तुलसी ने हिन्दू धर्म को बचा लिया।।
कठिन साधना कर तुलसी ने हिन्दू धर्म को नव मोड़ दिया।
राम नाम का प्याला पीकर, हरि से सम्बन्ध जोड़ लिया।।

रामायण, विनय पत्रिका, कवितावली व गीतावली—
रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्न व दोहावली,
बरवै रामायण, पार्वती मंगल, व कृष्ण गीतावली—
बारहवाँ ग्रन्थ जानकी-मंगल, जीवन की मधुरम कली।

पन्द्रह अगस्त : स्वाधीनता-दिवस

उत्सव की तैयारी

स्वतन्त्र भारत के इतिहास में 'पन्द्रह अगस्त' भारतीय नागरिकों के लिए एक गौरवपूर्ण दिवस रहा है, जिसे सन् 1947 से स्वाधीनता-दिवस के नाम से जाना जाता है। इसीलिए इसे राष्ट्रीय उत्सव का स्थान मिला है।

अत: शालाओं में इसे मनाने हेतु प्रस्तुत विधि साधारणतया उपयुक्त मानकर ही बनायी गई है, किन्तु परिस्थिति व वातावरण अनुकूल न हो तो अन्य विधि भी कार्यान्वित की जा सकती हैं।

1. **प्रभात फेरी**—छात्रों व अध्यापक बन्धुओं के सहयोग से महात्माजी के भजन (हर शहर व गांव में) "उठ जाग मुसाफिर भोर भई" को धुनयुक्त बोला जावे तथा हर एक स्थान पर रुक-रुक कर ऐसे नारे बुलन्द किए जायँ जैसे "स्वतन्त्रता दिवस जिन्दाबाद"। "जय भारत", "स्वतन्त्रता अखण्ड रहे", "भारत माता की जय" जिससे प्रत्येक व्यक्ति इस पर्व से अवगत होकर इसके महत्त्व को समझे।

2. **झण्डा अभिवादन**—किसी प्रतिष्ठित सज्जन द्वारा झण्डा अभिवादन "जन-गण-मन" राष्ट्र-गान के साथ सम्पन्न कराया जाय। विशेष ध्यान यह रक्खा जाय कि झण्डारोहण कराने वाले महानुभाव के सिर पर टोपी या और कुछ होना चाहिए। सम्भव हो तो पी० टी० (व्यायाम प्रदर्शन एवं परेड) आदि का कार्यक्रम भी हो।

3. **पन्द्रह अगस्त का महत्त्व**—पर्व का महत्त्व बताने के साथ-साथ एक-दो राष्ट्रीयता से सम्बन्धित गीत भी गाये जावें तो उत्तम रहेगा। सभा सम्पन्न होने के साथ सभी बालकों को मिठाई वितरण (यदि हो सके) की व्यवस्था की जाय।

4. **स्पोर्ट्स**—परिस्थिति अनुसार छोटे-बड़े सभी बच्चों की खेल-कूद प्रतियोगिताओं के कार्यक्रम रक्खे जायँ जैसे "जलेबी-रेस", "चेयर-रेस", "ऊँची-कूद", "लम्बी-कूद", "दौड़" आदि, जिससे बालकों में जाग्रति उत्पन्न हो। साथ ही सायंकाल शो मैच भी रखे जायँ।

5. **नाटक या शिविर ज्वाला**—कोई-सा एकांकी जो राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत हो, खेला जाय। अन्यथा शिविर ज्वाला का आयोजन हो, जिसमें राष्ट्रीय

भावना उत्पन्न करने वाले आइटम्स का प्रदर्शन किया जाय। इस समय बालकों को उत्साहित करने के लिए सम्भवतया पारितोषिक-वितरण का कार्यक्रम भी किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति द्वारा सम्पन्न कराया जाय।

6. इस दिन बालकों को राष्ट्रीय महत्त्व की पुस्तकों से उनके अच्छे कार्यों के लिए पुरस्कृत भी किया जाना चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

पूर्व की दशा—इस स्वाधीनता-दिवस के पुनीत पर्व से पूर्व भारत अंग्रेजी सल्तनत की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। वैसे भारत में कई विदेशी शासक आये, किन्तु वे लोग इसी देश में बस गए और यहाँ के समाज में मिल गए। अपने असली देश से इनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा, उन्होंने इसी देश को अपनी मातृभूमि मान लिया। इन शासकों द्वारा भारत में किसी प्रकार का प्रतिकूल परिवर्तन नहीं हुआ और न सामाजिक जीवन में ही किसी प्रकार का परिवर्तन हुआ क्योंकि हमारे खान-पान, रीति-रिवाज, पर्व, त्यौहार, व्यवसाय आदि सब धर्म पर ही आधारित हैं। भारत धर्म-प्रधान देश है। भारतीय सामाजिक जीवन में भी धार्मिक भावना मिली हुई है। जिस पर इनसे प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। इसके प्रतिकूल अंग्रेज शासक भारतवासियों से सदा अलग रहे, उनका वास्तविक राष्ट्र इंगलैण्ड था, जो भारत से बहुत दूर है। अंग्रेज कर्मचारी भारत में कुछ समय रहकर स्वदेश लौट जाते थे। इसलिए वे इस देश का शासन इंगलैण्ड के हित की दृष्टि से करते थे। उनको यहाँ के देशवासियों के सुख-दुख की विशेष परवाह नहीं थी। इस अंग्रेज सल्तनत ने हमारे यहां के शासकों को हटाकर उनके राज्य छीन लिए, कुछ शासक नाम मात्र के रक्खे गए, किन्तु उनकी भी सारी शक्ति अंग्रेजी अधिकारियों के हाथ में थी। अनेक भारतीय कर्मचारी बेरोजगार कर दिए गए थे। भूमि के बन्दोबस्त ने अमीर को गरीब बना दिया, देशी राज्यों की समाप्ति से अनेक सैनिक बेकार हो गए, इंगलैण्ड की मशीनों का बना हुआ कपड़ा भारत में बिकने लगा, जिससे चालू हस्त-उद्योग नष्ट हो गए। सैकड़ों बेरोजगार हो गए। ईसाई धर्म का विशेष प्रचार होने लगा। इस प्रकार अनेक प्रकार से भारतीय जनता सन्तप्त थी। अंग्रेजों की इस कूटनीति से विशाल भारत के जर्जरित वासी सब प्रकार से स्वराज्य और स्वाभिमान को खोकर जीवन से निराश हो चुके थे। वास्तव में सन्त तुलसी का यह कथन सार्थक है—

"पराधीन सपनेहुँ सुख नाँई।"

स्वतन्त्रता मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है। अधम से अधम व्यक्ति और छोटे से छोटा बालक भी अपने पर किसी का नियन्त्रण प्रसन्नता से स्वीकार नहीं करता। अंग्रेज भारतवर्ष में आए और भारतीयों को पराधीन बना दिया, दासता की शृंखलाओं में आबद्ध भारतीय उसी दिन से उस पाश को छिन्न-भिन्न करने के लिए अनवरत प्रयास करते रहे। किसी ने कहा है—

सुनो ऐ साकिनाने बज्मे हस्ती,
सदा क्या आ रही आसमाँ से ।
कि आजादी का एक लमहा है बेहत्तर,
गुलामी की हयाते जाबदां से ।।

"आजादी का एक क्षण, गुलामी के अमर जीवन से श्रेष्ठ है।" संसार में कोई व्यक्ति परतन्त्रता स्वीकार नहीं करेगा। हमें स्वाधीनता कितनी अच्छी लगती है। कल-कल करती नदी या झरना देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। सबेरे या शाम के समय वृक्षों पर पक्षियों की चहचहाहट सुनकर जंगल में स्वतन्त्र हिरण या खरगोश को स्वतन्त्र दौड़ते देखकर मन प्रफुल्लित होता है, दृश्य मनोहर व सुहावना मालूम होता है। प्रकृति, पशु और पक्षियों की स्वाधीनता में आनन्द लेने वाला मनुष्य स्वयं भी स्वाधीन होना क्यों न चाहेगा, जिससे उसका चहुँमुखी विकास हो।

भारत का वास्तविक इतिहास बताता है कि भारत न स्वयं पराधीन रहा, न दूसरों को पराधीन बनाने का दुष्कर्म किया है। जो आक्रमणकारी आए उस समय यहाँ का सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन ऐसा ही था कि जो आये वे इसी विचारधारा में सम्मिलित हो गए। भारतीयों से अलग होने का पता नहीं लगता था। किन्तु अंग्रेजों ने छल, बल और कौशलता से अपना यहाँ अड्डा जमाया जिससे भारतीय जनता, महापुरुषों तथा नेताओं में जागृति उत्पन्न होना स्वाभाविक-सा हो गया। क्योंकि हम लोगों के सामने मातृभूमि का विशाल स्वरूप रहा है। परिणामतः भारतीयों में अंग्रेजों के प्रति विद्रोह की भावनाएँ प्रकट हुई, क्योंकि कहा भी है—क्रान्ति होती है विपदा में—

सत्य का सूर्य जब अस्त होता हो,
धर्म की ध्वजा ध्वस्त जब हो।
व्यर्थ निर्दोष त्रस्त जब हो,
न्याय की तुला व्यस्त जब हो।
रहे न आनन्द जनता में क्रान्ति···।।

स्वतन्त्रता-संग्राम

सर्वप्रथम भारत में स्वतन्त्रता-संग्राम सन् 1857 में हुआ जिसमें लक्ष्मीबाई की तलवार चमकी। भगतसिंह और उसके साथी ऐसे ही विरोध में इलाहाबाद में षड्यन्त्र रचकर मरवाए गए। इससे पूर्व जलियाँवाला बाग का भीषण हत्याकाण्ड हुआ। अंग्रेज अफसर गन मशीनों से गोलियाँ बरसा रहा था। आधुनिक भारत के नेता पंजाब केसरी लाला लाजपतराय को देश-निकाला दे दिया गया। महाराष्ट्र का सिंह लोकमान्य तिलक भी माडले जेल में 1 अगस्त 1920 को माँ के चरणों में बलिदान हो गया। सारी जनता ने खिलाफत का नारा बुलन्द किया। गांधीजी ने गले में झोली डाली। मोतीलाल और जवाहर ने ऐशो-आराम त्यागे। पटेल भाइयों ने कमर कसी। कमलादेवी और सरोजिनी नायडू मैदाने-जंग में उतरीं। राजेन्द्र बाबू ने संन्यास लिया। सभी नेताओं, महापुरुषों

ने जेल की रोटियाँ खाईं। 15 अगस्त इसलिए और भी अमूल्य वस्तु हो जाता है क्योंकि जिस पर एक नहीं सैकड़ों महारुपुषों के जीवन बलिदान हुए, हजारों गोदें सूनी हुईं, हजारों माँगों का सिन्दूर पूँछा, हजारों बरबाद हुए, उजड़ गए। भारतीय शेर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज बनाई। परन्तु उनको जेल में बन्द कर दिया गया।

सन् 1930 में कांग्रेस आगामी संघर्ष की तैयारी में लगी। महात्मा गाँधी सत्याग्रह आन्दोलन के नेता थे। आपका ढंग ही निराला था। भारत के हितार्थ इन्होंने 11 माँगें पेश कीं। सत्य के पुजारी बापू का यह संग्राम कैसा अनोखा था ! अपनी बात शत्रु से छिपानी नहीं और कह देना हम कोई रक्तपात नहीं करेंगे। परन्तु शान्ति पूर्वक हमारी मांगों को स्वीकार किया जाए। 12 मार्च 1930 को गांधीजी साबरमती आश्रम में नमक कानून भंग करने हेतु निकल पड़े। जिसमें लाठी चार्ज, गोलीकाण्ड भी हुए। 12 नवम्बर 1930 को लन्दन में होने वाले गोल-मेज सम्मेलन में गांधीजी प्रतिनिधि के रूप में गए। जब दिसम्बर में वापिस आये तो महात्माजी ने भारत की दशा बुरी देखी, जिससे कि उन्होंने सत्याग्रह किया। फलस्वरूप कांग्रेस के सदस्यों के साथ-साथ गांधीजी को भी जेल जाना पड़ा। 1940 में गांधीजी ने वैयक्तिक सत्याग्रह आरम्भ किया। जिससे लगभग कई भयंकर संघर्षों का मुकाबला करने के बाद गुलामी की जंजीरों में जकड़े हुए भारत की, महात्मा गांधी के अहिंसा रूपी शस्त्र से जंजीरें टूट पड़ी तथा 15 अगस्त 1947 को हम लोगों ने स्वतन्त्रता की साँस ली। वास्तव में यह दिन भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में सर्वदा अंकित रहेगा।

हमारा कर्त्तव्य

15 अगस्त स्वतन्त्रता दिवस को प्राप्त करने के लिए कई भारतीय सपूतों ने अपने प्राणों की आहुति दी, उनके कठिन परिश्रम से जो हमको आजादी रूपी धरोहर प्राप्त हुई, उसकी हमको रक्षा करनी है। यह दिन (15 अगस्त, 1947) हमको हर साल यह प्रेरणा देता है कि हे भारतीयो ! अपने देश की स्वतन्त्रता अखण्ड, अक्षुण्ण रखने के लिए आपको अपना तन-मन-धन का बलिदान करना होगा। हमें अपनी कुरीतियाँ छोड़नी होंगी, सामाजिक विषमताओं को नष्ट करना होगा। देश की निरक्षरता और बेकारी को दूर करने के लिए भगीरथ प्रयत्न करने होंगे। केवल हम इस राष्ट्रीय पर्व को मनाते रहें और केवल रस्म अदा करते रहें, इससे हमारे देश का उत्थान सम्भव नहीं है। लेकिन आज के दिन उन शहीदों के गुणगान करें जिन्होंने मरते दम तक अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र बनाने का प्रयास किया। जिन सपूतों ने सुप्रयास से आजादी रूपी पौधा लगाया है, उस पौधे की सिंचाई का भार हम पर ही है जिसको पूरे उत्तरदायित्व से सींचकर हरा-भरा रखना होगा। शहीदों की वाणी है—

सूख न जाये कहीं ये पौधा आजादी का।
खून से अपने इसलिए तर करते हैं॥

कितने उपयुक्त और सुन्दर थे शहीदों के शब्द जो आज भी उत्साह प्रदान करते हैं। अब हमें हमारे राष्ट्र के सर्वांगीण विकास हेतु कठोर प्रयास कर स्वतन्त्रता की जड़ों को सुदृढ़ एवं समृद्ध बनाना है। केवल झण्डे को सलामी दे देने से ही हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती। बल्कि हमारे देश की अखण्डता को बनाए रखने हेतु यहाँ फैली बेरोजगारी, खाद्य समस्या, भ्रष्टाचार, कुप्रथाओं का उन्मूलन करना है। तभी हमारा देश अबाध गति से प्रगति के शिखर पर पहुँच सकेगा। इसमें से ही भारत के भावी कर्णधार हैं, जिनके कन्धों पर देश का भार आने वाला है, जिसको कन्धे से कन्धे मिलाकर इस राष्ट्र का निर्माण करना है। इसे राष्ट्रीय पर्व मानने में हम तब ही अपने को सफल मानें कि हम अपने देश के प्रति सेवा और त्याग को रखकर जीवित रहें। दीन-दुखी भाइयों और बहिनों का दुख दूर करें, देश में राम-राज्य स्थापित करें। इस प्रकार प्रत्येक भारत की सन्तान को स्वतन्त्र भारत के नागरिक कहलाने में गर्व अनुभव कर प्रतिज्ञा करनी है कि हमारा अपने देश के प्रति जो उत्तरदायित्व है उसको पूर्ण रूप से निभाने में अपना जीवन सार्थक समझेंगे। देश में फैली हुई अनैतिकता और अराजकता जो स्वतन्त्रता की जड़ों को खोखला बनाती है, को दूर करें। हमें आज के दिन यह विचार करना है कि हम राष्ट्र के प्रति कितने वफादार हैं। इसमें राष्ट्रीय भावना कितनी निहित है। अगर इस प्रकार हम सभी राष्ट्र को समुन्नत बनाने की प्रतिज्ञा कार्यान्वित करेंगे तो निश्चय ही हमारा राष्ट्र विश्व में एक प्रमुख स्थान प्राप्त करेगा।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

यह उजला-सा पन्द्रह अगस्त, यह वन्दनीय पन्द्रह अगस्त

(1)

सन् सैंतालिस में जब बच्चो, यह दिवस धरा पर आया था।
यह भारत की आजादी की, अनमोल पिटारी लाया था।
परतन्त्र देश के लोगों को, आजाद बनाने आया था।
गोरों के खूनी पंजों से, इसने आ हमें छुड़ाया था।
अंग्रेजों का सौभाग्य-सूर्य, इस दिन भारत में हुआ अस्त।
यह उजला-सा पन्द्रह अगस्त, यह वन्दनीय पन्द्रह अगस्त।

(2)

इस दिन हम लोग सुनो बच्चो, पावन त्यौहार मनाते हैं।
घर में घर की दीवारों पर, घी के शुभ दीप जलाते हैं।
मिलकर सब भाई-बहिन, राष्ट्र का झण्डा हम लहराते हैं।
अभिमान भरे उन्नत स्वर में, आजाद तराने गाते हैं।
भारत की गौरव रक्षा में हमने झेले हैं विविध कष्ट।
यह उजला-सा पन्द्रह अगस्त, यह वन्दनीय पन्द्रह अगस्त।

(3)

यह दिवस बड़ा महँगा बच्चो, धरती पर खून बहाया है।
तुम से ही छोटे बच्चों ने, खूँ से इसको नहलाया है।
शत कोटि जवानों ने बच्चों, प्राणों से मूल्य चुकाया है।
माँ ने सुहाग की लाली की, बलि देकर इसे सजाया है।
इस अभिनव भारत का बच्चो, प्रारम्भ हुआ है नया पृष्ठ।
यह उजला-सा पन्द्रह अगस्त, यह वन्दनीय पन्द्रह अगस्त।

(4)

चिर जियें हमारे नेतागण, हो अमर हमारी आजादी।
इस खुले गगन में आज, राष्ट्र की पूत पताका लहराती।
फहरे यह कीर्ति विमल नभ में, गाथा यह कोटि शहीदों की।
नित ऊपर उठती ही जाये, यह पावन शान शहीदों की।
हम एक सभी हिन्दुस्तानी, हो जाति भाव सब नष्ट-भ्रष्ट।
यह उजला-सा पन्द्रह अगस्त, यह वन्दनीय पन्द्रह अगस्त।

'हुशियार हो जाओ'

वतन की आबरू खतरे में है हुशियार हो जाओ।
हमारे इम्तहाँ का वक्त है तैयार हो जाओ॥
हमारी सरहदों पर खून बहता है जवानों का।
हुआ जाता है दिल छलनी हिमालय की चट्टानों का॥
उठो रुख फेर दो, दुश्मन की तोपों की दहानों का।
वतन की सरहदों पर आहनी दीवार हो जाओ॥
वह जिनको सादगी में हमने आँखों पर बिठाया था।
वह जिनको भाई कहकर हमने सीने से लगाया था॥
वह जिनकी गरदनों में हार बाहों का पिन्हाया था।
अब उनकी गरदनों के वास्ते तलवार हो जाओ॥
न हम इस वक्त हिन्दू हैं न मुस्लिम हैं न ईसाई।
अगर कुछ हैं तो बस इस देश की धरती के शैदाई॥
इसी को जिन्दगी देंगे इसी से जिन्दगी पाई।
लहू के रंग से लिखा हुआ इकरार हो आजो॥
खबर रखना कोई गद्दार साजिश कर नहीं पाये।
नजर रखना कोई जालिम तिजोरी भर नहीं पाये॥
हमारी कौम पर तारीख तोहमत धर नहीं पाए।
वतन-दुश्मन-परिन्दों के लिए ललकार हो जाओ॥

(साहिर लुधियानवी)

'बच्चो तुम तकदीर हो'

बच्चों तुम तकदीर हो कल के हिन्दुस्तान की।
बापू के वरदान की नेहरू के अरमान की।
आज के टूटे खण्डहरों पर तुम कल का देश बसाओगे,
जो हम लोगों से न हुआ वह तुम करके दिखलाओगे।
तुम नन्हीं बुनियाद हो दुनिया के नये विधान की।
बच्चो तुम तकदीर हो कल के हिन्दुस्तान की।
जो सदियों के बाद मिली है वह आजादी खोये ना,
दीन धर्म के नाम पे कोई बीज फूट का बोये ना।
हर मजहब से ऊँची है कीमत इन्सानी जान की।
बच्चो तुम तकदीर हो कल के हिन्दुस्तान की।
फिर कोई 'जयचन्द' न उभरे फिर कोई 'जाफ़र' न उठे
गैर का दिल खुश करने को अपनों पे खंजर न उठे।
धन दौलत के लालच में तौहीन न हो ईमान की,
बच्चो तुम तकदीर हो कल के हिन्दुस्तान की।
बहुत दिनों तक इस दुनिया में रीत रही है जंगों की
लड़ी है धनवानों के खातिर फौजें भूखे नंगों की;
कोई लुटेरा ले न सके अब कुरबानी इन्सान की।
बच्चो तुम तकदीर हो कल के हिन्दुस्तान की।
नारी को उस देश ने देवी कहकर दासी जाना है।
जिसको कुछ अधिकार न हो वह घर की रानी माना है।
तुम ऐसा आदर मत लेना आड़ जो हो अरमान की।
बच्चो तुम तकदीर हो कल के हिन्दुस्तान की।
रह न सके अब इस दुनिया में युग सरमायादारी का।
तुम को झंडा लहराना है अब मेहनत की सरदारी का।
मिल हो मजदूर के और खेती हो दहकान की।
बच्चो तुम तकदीर हो कल के हिन्दुस्तान की।।

(साहिर **लुधियानवी**)

झाँकी हिन्दुस्तान की

आओ बच्चो तुम्हें दिखायें झाँकी हिन्दुस्तान की
इस मिट्टी से तिलक करो ये धरती है बलिदान की
उत्तर में रखवाली करता पर्वतराज विराट है
दक्षिण में चरणों को धोता सागर सम्राट है

जमना जी के तट को देखो गंगा का घाट है
बात बात पे हाट हाट में यहाँ निराला ठाठ है
देखो ये तस्वीर अपनी गौरव की अभिमान की
इस मिट्टी से तिलक करो···

ये है अपना राजपूताना नाज इसे तलवारों पे
इसने सारा जीवन काटा बरछी तीर कटारों पे
ये प्रताप का वतन पला है आजादी के नारों पे
कूद पड़ी थीं यहाँ हजारों पदमिनियाँ अंगारों पे
बोल रही है कण कण से कुर्बानी राजस्थान की
इस मिट्टी से तिलक करो···

देखो मुल्क मराठों का ये यहाँ शिवाजी डोला था
मुगलों की ताकत को जिसने तलवरों पे तोला था
हर पर्वत पे आग जली थी हर पत्थर पे शोला था
बोली हर हर महादेव की बच्चा बच्चा बोला था
यहीं शिवाजी ने रक्खी थी लाज हमारी शान की
इस मिट्टी से तिलक करो···

जलियाँवाला बाग ये देखो यहीं चली थीं गोलियाँ
ये मत पूछो किसने खेली थीं यहाँ खून की होलियाँ
एक तरफ बन्दूक की दनदन एक तरफ थीं टोलियाँ
मरने वाले बोल रहे थे इन्कलाब की बोलियाँ
यहाँ लगा दी बहनों ने बाजी अपनी जान की
इस मिट्टी से तिलक करो···

ये देखो बंगाल यहाँ का हर चप्पा हरियाला है
यहीं का बच्चा-बच्चा अपने देश पे मरने वाला है
ढाल है इसकी बिजलान भूचालों ने पाला है
मुट्ठी में तूफान बंधा है और प्राणों में ज्वाला है
जन्मभूमि है यही हमारे वीर सुभाष महान की
इस मिट्टी से तिलक करो···

'हम एक हैं'

एक है अपनी जमीं, एक है अपना गगन
एक है अपना जहाँ, एक है अपना वतन
अपने सभी सुख एक हैं, अपने सभी गम एक हैं
आवाज दो 'हम एक हैं !'

यह वक्त खोने का नहीं, यह वक्त सोने का नहीं
जागो वतन खतरे में है सारा चमन खतरे में है
फूलों के चेहरे जर्द हैं, जुल्फ फजा की गर्द है
उमड़ा हुआ तूफान है, खतरे में हिफाजत फर्ज है
दुश्मन से नफरत फर्ज है घर की हिफाजत फर्ज है
बेदार हो, बेदार हो आमदाए पुकार हो
आवाज दो 'हम एक हैं !'

यह है हिमालय की जमीं, ताज औ अजंता की जमीं
संगम हमारी आन है, चित्तौड़ अपनी शान है
गुलमर्ग का महकता चमन, जमना का तट गोकुल का बन
गंगा के धारे अपने हैं, ये सब हमारे अपने हैं
कह दो कोई दुश्मन की नजर उठे न भूले से इधर
कह दो कि हम बेदार हैं, कह दो कि हम तैयार हैं
आवाज दो 'हम एक हैं !'

उठो जवानों ए-वतन बाँधे हुए सर पे कफन
उठो दक्खन की ओर से गंगा-ओ-जमना की ओर से
पंजाब के दिल से उठो, सतलज के साहिल से उठो
महाराष्ट्र की खाक से देहली की अर्जेपाक से
बंगाल से गुजरात से कश्मीर से बागात से
नेफा से राजस्थान से कुल खाके हिन्दुस्तान से
आवाज दो, 'हम एक हैं !' 'हम एक हैं !' 'हम एक है !'

(मोहम्मद रफी)

एक्शन सोंग

नौजवानों भारत की तकदीर बना दो।
फूलों के इस गुलशन से, काँटों को हठा दो ।। फूलों से इस•••
छोड़ के सारे भेदभाव को, समझो देश को अपना•••
समझो देश को अपना।
रह ना जाए देखो अधूरा, कोई सुन्दर सपना—
कोई सुन्दर सपना ।।
घर में आग लगाए जो, उस दीप को बुझा दो ।।
फूल के इस गुलशन से, काँटों को हटा दो ।। 1 ।।
हम भारत के वासी क्यों हों, दुनिया में शर्मिन्दा—
दुनिया में शर्मिन्दा।

देश के कारण मौत भी आए. फिर भी रहेंगे जिन्दा—
फिर भी रहेंगे जिन्दा ॥
जय-जय हिन्द के नारों से, धरती को गुंजा दो।
फूलो के इस गुलशन से, काँटों को हटा दो ॥ 2 ॥
अपने साथ हैं कैसे-कैसे, बलवानों की शक्ति—
बलवानों की शक्ति।
वीर जवाहर लाल की हिम्मत, बापूजी की भक्ति—
बापूजी की भक्ति ॥
देश का झंडा जग में ऊँचा करके दिखा दो।
फूलों के इस गुलशन से, काँटों को हटा दो ॥ 3 ॥
देश हमारा धरती अपनी, हम धरती के लाल।
नया संसार बनायेंगे, नया इन्सान बनायेंगे ॥
सौ-सौ स्वर्ग उतर आवेंगे, सूरज सोना बरसायेगा—
सूरज सोना बरसायेगा।
दूध पूत के लिए पहन कर, जीवन की जयमाल।
रोज त्यौहार मनायेंगे, नया इन्सान बनायेंगे ॥ देश

वतन की राह में

वतन की राह में वतन के नौजवाँ शहीद हो
पुकारते हैं यह जमीनो आस्माँ शहीद हो
वतन की लाज जिसको थी अजीज अपनी जान से
वह नौजवान जा रहा है आज कितनी शान से
इस इक जवाँ की खाक पर हर एक जवा शहीद हो
वतन की राह में···
है कौन खुशनसीब माँ की जिसका यह चिराग है
वह खुशनसीब है कहाँ यह जिसके सर का ताज है
अमर वह देश क्यों न हो के तू जहाँ शहीद हो
वतन की राह में···
शहीद तेरी मौत ही तेरे वतन की जिन्दगी
तेरे लहू से जाग उठेगी इस चमन की जिन्दगी
खिलेंगे फूल उस जगह पे तू जहाँ शहीद हो
वतन की राह में वतन के नौजवाँ शहीद हो

शहीद

मेरा रँग दे बसंती चोला
ओ मेरा रँग दे बसंती चोला

बड़ा ही गहरा दाग है यारो जिसका गुलामी नाम है
उसका जीना भी क्या जीना
यारो जिसका गुलामी नाम है
सीने में जो दिल था यारो आज बना वह शोला
मेरा रंग दे बसंती चोला
निकले दम इस देश की खातिर
बस इतना अरमान है
एक बार इस राह में मरना सौ जन्मों के समान है
देश के वीरों की कुरबानी
अपना दिल भी बोला, मेरा रँग दे···
जिस चोले को पहन शिवाजी खेले अपनी जान पे
जिसे पहन झाँसी की रानी मिट गई अपनी आन पे
आज उसी को पहन के निकला
हम मस्तों का टोला, मेरा रँग दे बसंती चोला

अपनी आजादी

अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं
सर कटा सकते हैं लेकिन सर झुका सकते नहीं
हमने सदियों में ये आजादी की नियामत पाई है
सैकड़ों कुरबानियाँ देकर ये दौलत पाई है
मुस्कुराकर खाई हैं सीने पे अपने गोलियाँ
कितने वीरानों से गुज़रे हैं तो ये जन्नत पायी है
खाक में हम अपनी इज्जत को मिला सकते नहीं
अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं
क्या चलेगी जुल्म की अहले वफा के सामने
आ नहीं सकता कोई शोला हवा के सामने
लाख फौजें लेके आये अमन का दुश्मन कोई
रुक नहीं सकता हमारी एकता के सामने
हम वह पत्थर हैं जिसे दुश्मन हिला सकते नहीं
अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं
वक्त की आवाज के हम साथ चलते जायेंगे
हर कदम पर जिंदगी का रुख बदलते जायेंगे
गर वतन में भी मिलेगा कोई गद्दारे वतन
अपनी ताकत से हम उसका सर कुचलते जायेंगे
एक धोखा खा चुके हैं और खा सकते नहीं

अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं
वन्दे मातरम् वन्दे मातरम् वन्दे मातरम्
हम वतन के नौजवाँ हैं हमसे जो टकराएगा
वह हमारी ठोकरों से खाक में मिल जाएगा
वक्त के तूफान में बह जाएगा जुल्मे-सितम
आसमाँ पर यह तिरंगा उम्र भर लहराएगा
जो सबक बापू ने सिखलाया भुला सकते नहीं
सर कटा सकते हैं लेकिन सर झुका सकते नहीं
वन्दे मातरम् वन्दे मातरम्···

दुश्मनों के हम हैं दुश्मन, यार के हम यार हैं
अमन में फूलों की डाली जंग में तलवार हैं
जिस किसी में हौसला हो आजमा कर देख ले
जिंदगी के वास्ते हम मरने को तैयार हैं
बढ़ चुके हैं जो कदम पीछे हटा सकते नहीं
अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं
यह हमारे ऊँचे पर्वत यह हमारी नदियाँ
यह हमारी मुस्कराती लहलहाती खेतियाँ
उनपे डालेगा कोई दुश्मन अगर नजरें बुरी
हम तो उस जालिम की रख देंगे उड़ा के धज्जियाँ
आबरू अपने वतन की हम गँवा सकते नहीं
अपनी आजादी को हम···

कृष्ण-जन्माष्टमी

उत्सव की तैयारी

(1) उत्सव-दिवस के दो दिन पूर्व सभी छात्रों व शिक्षकों को उत्सव के कार्यक्रम की सूचना देनी चाहिए जिससे वे उत्सव में बोली जाने वाली सामग्री का संकलन व बोलने की तैयारी कर सकें।

(2) उत्सव सम्बन्धित महापुरुष। पर्व पर छात्रों को प्रेरित करने हेतु सभा-स्थल पर आदर्श वाक्य लिखने व महापुरुष का चित्र लगाना चाहिए।

(3) उत्सव में बोली जाने वाली सामग्री का संकलन कर विद्यालय पत्रिका में उसे स्थान देना चाहिए।

(4) कार्यक्रम का समायोजन छात्रों की एक कार्यक्रम समिति द्वारा करवाया जाना चाहिए।

(5) योगेश्वर कृष्ण की झाँकी का भी आयोजन करना चाहिए।

(6) भगवान श्रीकृष्ण के भजनों व कीर्तन का रात्रि को कार्यक्रम रखना चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

भारत भूमि में जन्मा कौन ऐसा व्यक्ति होगा जिसने योगेश्वर कृष्ण का नाम न सुना हो? "कृष्णं वन्दे जगद्गुरुं" कह कर देश की सर्वश्रेष्ठ विभूतियों ने उनके प्रति अपना आदर प्रकट किया है। कृष्ण की विविध कथाओं को अपनी काव्य रचनाओं का आधार बनाकर न जाने कितने कवियों ने अपनी कवित्व-शक्ति को सफल बनाया है! जाने कितने कलाकारों ने कृष्ण की विविध लीलाओं के सुन्दर चित्र बनाकर अपनी तूलिका को धन्य किया है!

रामचन्द्र के समान श्रीकृष्ण भी करोड़ों भारतवासियों के श्रद्धा और भक्ति के पात्र रहे हैं। इसलिए उनके जीवन की वास्तविक घटनाओं का पता लगाना अत्यन्त कठिन है। उनके जीवन के सम्बन्ध में जो कहानियाँ प्रचलित हैं, उनमें बचपन से लगाकर अन्त तक आश्चर्यजनक घटनाएँ भरी पड़ी हैं। कृष्ण-जन्म के बाद वसुदेव का कारागार

से निकलना तथा बाढ़ से उफनती यमुना की जलधारा को तैरकर पार करना, कृष्ण का कालियादह में नाग से लड़ना तथा शकटासुर आदि भयानक शक्तिशाली मनुष्यों का संहार करना आदि कोई साधारण घटनाएँ नहीं हैं। वास्तव में कृष्ण की सम्पूर्ण जीवन-लीला, उनका दुष्टों से लड़ना और सज्जनों की रक्षा करना, उनकी राजनीतिक क्षमता और सबसे अधिक उनका गीता के द्वारा दिया हुआ कर्मयोग का संदेश भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है और इस कारण प्रत्येक विद्यार्थी के लिए श्रीकृष्ण का जीवन-चरित्र एक महान् प्रेरणादायक हो सकता है।

जन्मे कहाँ कृष्ण ? मथुरा के एक कारागार में। उनके पिता वसुदेव और माता देवकी कृष्ण के मामा कंस के बंदीगृह में क़ैद थे। किसी ने भविष्यवाणी की थी कि "देवकी के गर्भ से उत्पन्न आठवीं सन्तान के हाथों कंस की मृत्यु होगी।" इसी आशंका से अत्याचारी कंस ने अपनी बहिन देवकी और उसके पति वसुदेव को कारागार में डाल दिया था। वह एक-एक कर उसके सात पुत्रों का जन्मते ही वध कर चुका था। जब आठवीं सन्तान के जन्म का समय निकट आया तब तो उसकी दुश्चिन्ता की कोई सीमा तक न रही। उधर वसुदेव-देवकी के हृदय पर क्या बीत रही थी, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। ज्यों-ज्यों प्रसव का समय निकट आ रहा था, उनके प्राण सूखे जा रहे थे। वे अपनी इस अन्तिम सन्तान की रक्षा के लिए सब कुछ करने को तैयार थे। किन्तु क्या करें ? सोचते-सोचते अन्ततः उन्हें एक मार्ग सूझ पड़ा।

भाद्र-पद कृष्ण अष्टमी बुधवार की अर्ध-रात्रि का समय था। देवकी ने आठवीं सन्तान के रूप में कृष्ण को जन्म दिया। वसुदेव चुपचाप उठे और शिशु को लिए किसी तरह कारागार से बाहर हो गये और जमुना के किनारे आ पहुंचे। पर जमुना को पार करना कोई सहज बात न थी। अँधेरी रात और निरन्तर वृष्टि के परिणामस्वरूप उफन-उफन कर बहती हुई यमुना की वह जल-धारा ! कहीं थाह का नाम नहीं। किन्तु ठिठकने का अवकाश कहाँ ? वसुदेव जल में धँस पड़े। पैरते-पारते किसी तरह उस पार लगे और शीघ्रता से गोकुल की ओर चल दिये। गोकुल में सन्नाटा छाया था। वसुदेव अपने मित्र के द्वार पर पहुंचे। नन्द ने बड़े स्नेह और उत्साह के साथ अपने बालबन्धु का स्वागत किया। वसुदेव ने अपना प्रयोजन कहा, नन्द ने सहर्ष कृष्ण के लालन-पालन का भार अपने ऊपर ले लिया। किन्तु तभी उन्होंने सोचा कि यदि वसुदेव खाली हाथ लौटेंगे और सवेरा होने पर कंस को ज्ञात होगा कि देवकी अपनी आठवीं सन्तान को जन्म दे चुकी, किन्तु वह सन्तान वहाँ नहीं है, तो वह वसुदेव-देवकी को भी जीवित नहीं छोड़ेगा। वे भीतर गए और शिशु कृष्ण को अपनी पत्नी की शय्या पर लिटा कर, उसी दिन उसने भी जिस कन्या को जन्म दिया था, उसे अपनी बाँहों में लिए बाहर आ गये। उसे वसुदेव को देकर उन्होंने कहा कि इसे ही तुम अपनी आठवीं सन्तान के नाम से घोषित कर देना। वसुदेव झिझके, किन्तु यह सोचकर कि शायद पुत्र के स्थान पर पुत्री को देखकर कंस का विचार बदल जाये, वे उसे लेकर उल्टे पाँव मथुरा लौट आये। कंस को देवकी के गर्भ से आठवीं सन्तान के जन्म का समाचार मिला। वह तुरन्त भागा हुआ

आया। देवकी ने रो-रो कर उसे जो उसका सगा भाई था, बहुत-बहुत रोका, मनाया समझाया कि यह तो कन्या मात्र है, इससे भला तुम्हारा क्या अहित हो सकता है ? वसुदेव ने भी उससे बहुत-बहुत विनती की, किन्तु उसने एक न मानी। उस फूल-सी सुकुमार कन्या को उसने उठाया और पत्थर पर दे मारा। वसुदेव और देवकी वज्राहत से देखते रह गये। कंश ने एक पैशाचिक अट्टहास किया। बोला—"देखें, अब मेरा कौन क्या बिगाड़ सकता है ! अपने परम शत्रु को मैंने पहले ही समाप्त कर दिया है।" किन्तु न जाने कैसे, उसे मन ही मन ऐसा लगा कि दाल में कुछ काला है और हो न हो, उसका संहारक कहीं न कहीं जन्म ले चुका है। अपनी अस्त-व्यस्त मानसिक अवस्था में उसे यह भी प्रतीत हुआ जैसे उस नवजात कन्या की आत्मा शरीर से मुक्त होकर उसे यह कहती गयी कि "दुष्ट मुझे मारकर तुझे कोई लाभ नहीं होने का, तेरा शत्रु तो जीवित और सकुशल है।" कंस की विचित्र दशा थी। किन्तु उपाय क्या था ? जो कुछ वह कर सकता था, कर चुका था। उसका दुर्भाग्य कि एक नहीं, दो नहीं, आठ-आठ शिशुओं की हत्या करने के बाद भी उसकी मानसिक चिन्ता नहीं मिट सकी।

उधर कृष्ण नन्द के यहाँ बड़े लाड़-प्यार से पलने लगे। नन्द-यशोदा के कोई और सन्तान थी नहीं। अपने हृदय के दुलार का सारा कोष उस दम्पति ने कृष्ण पर ही उँडेल दिया। कृष्ण भी कोई साधारण बालक न थे। उनका रूप, उनकी चेष्टाएँ, उनकी बाल-क्रीड़ाएँ, न केवल स्वजनों को वरन् समस्त ग्राम-वासियों को मोह रही थीं। सारा गोकुल गाँव उन पर रीझ पड़ा था। वे सबकी आँखों के तारे थे। ज्यों-ज्यों वे बड़े होते गये, ग्रामवासियों का उनके प्रति अनुराग भी बढ़ता गया। आयु पाकर रूप के साथ-साथ उनके बल-पराक्रम तथा अद्भुत कार्य-कौशल का भी विकास होने लगा। अपने पराक्रम से वे गोकुल के गोप-समाज के अग्रणी माने जाने लगे।

बाल्यकाल में ही कृष्ण द्वारा किये गये साहसी कार्यों के समाचार कंस के पास भी पहुंच रहे थे। इन समाचारों ने उसे कृष्ण की ओर से बहुत सशंक बना दिया। उसने छल या बल किसी भी युक्ति से उन्हें मरवा डालने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। शकटासुर, तृणावर्त तथा बकासुर जैसे अपने दुर्दमनीय साथियों को उसने भेष बदलवा कर गोकुल भेजा। अपने साथी ग्वाल-बालों के साथ वन में विचरते हुए बालकृष्ण पर उन्होंने घात लगा-लगाकर आक्रमण किये, किन्तु कृष्ण की चातुरी और पराक्रम के आगे उनकी एक न चली। इतना ही नहीं, एक-एक करके वे सभी कृष्ण के हाथों मारे गये। अपने सभी प्रयत्नों को इस प्रकार निष्फल होते देखकर कंस की चिन्ता और व्यग्रता का कोई ठिकाना न रहा। इसी बीच कृष्ण की निर्भीकता और वीरता की एक और कहानी उसे सुनने को मिली। यमुना-तट के समीप ही जहाँ गोकुल के ग्वालबाल अपनी गौएं चराने जाया करते थे, एक भयंकर 'दह' था, जो 'कालियादह' के नाम से प्रसिद्ध था। उसमें रहते एक भयंकर विषधर सर्प से सभी आतंकित थे। एक दिन ग्वाल-बालों के साथ खेलते-खेलते कृष्ण के हाथ से उनकी गेंद उस दह में जा पड़ी। किसमें सामर्थ्य थी कि उस दह में कूद कर गेंद निकाल लाये ? किन्तु कृष्ण को ऐसा करते एक क्षण भी नहीं लगा।

वे तुरन्त उस दह में कूद पड़े। सर्प के लिए यह बड़ी भारी चुनौती थी। वह फुफकारता हुआ उनकी ओर दौड़ा। पर वाह रे कृष्ण ! उन्होंने उसे पकड़ कर ऐसी-ऐसी पटकियाँ दीं कि सर्पदेव चीं बोल गये। उनका सारा अहंकार और क्रोध काफूर हो गया। जबड़ों से रक्त की धार बह निकली। उधर कृष्ण के कालियादह में कूदते ही ग्वाल-बालों में हाहाकार मच गया। कुछ ग्वाल-बाल गाँव में दौड़े गए। समाचार सुनते ही नन्द-यशोदा और उनके पीछे सैकड़ों व्रजवासी कृष्ण से प्रेम के कारण वहाँ खिचे चले आये। कोई रो रहा था, तो कोई चिल्ला रहा था।

सब लोग तो क्रन्दन करते रहे, किन्तु बलराम जो कृष्ण की सौतेली माँ के पुत्र थे और आयु में उनसे कुछ बड़े भी थे, साहस करके आगे बढ़े और दह में झाँककर देखने लगे। उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने देखा कि कृष्ण ने उस महासर्प के फन पर आघात पर आघात कर उसे बिलकुल ठण्डा कर दिया है। उन्होंने यह संवाद सभी व्रजवासियों को सुना दिया। हर्ष का पारावार उमड़ पड़ा। दोनों भाइयों को आगे कर सब व्रजवासी गाते और हर्ष से नाचते हुए अपने-अपने घर लौट आये।

उधर कृष्ण के बढ़ते हुए प्रभाव के सम्बन्ध में सुन-सुन कर कंस के देवता कूच कर रहे थे। कृष्ण को नीचा दिखाने अथवा उन्हें समाप्त करा डालने के अपने सभी प्रयत्नों में वह अब तक पूरी तरह असफल रहा था। अब उसने और भी निकृष्ट कोटि की कूटनीति का आश्रय लिया। उसने अक्रूर को अपना प्रतिनिधि बनाकर गोकुल भेजा और एक यज्ञ में सम्मिलित होने के बहाने कृष्ण और बलराम को मथुरा लिवा लाने के लिए कहा। अक्रूर कंस की प्रकृति भली प्रकार जानता था, किन्तु कंस के आदेश की अवज्ञा करना भी सहज न था। निरुपाय होकर वह गोकुल गया और नन्द बाबा को कंस का सन्देश कह सुनाया। कृष्ण और बलराम ने तो तनिक भी संकोच प्रकट नहीं किया। वे निर्भयतापूर्वक तुरन्त मथुरा के लिए प्रस्थान करने को उद्यत हो गए। किन्तु नन्द-यशोदा तथा अन्य व्रजवासियों के हृदय आशंका से धड़क उठे। कंस की आज्ञा भंग करने का साहस तो वे कैसे करते ? अस्तु, कृष्ण-बलराम के साथ कई गोकुलवासी स्वयं भी मथुरा के लिए चल पड़े।

कृष्ण के आने के पूर्व ही कंस ने अपना षड्यन्त्र पक्का कर लिया था। जिस सभा-भवन में जाकर कृष्ण-बलराम को कंस से भेंट करनी थी, उसके द्वार पर उसका प्रसिद्ध हाथी कुवलियापीड़ आक्रमण के लिए तैयार खड़ा था। कंस ने उसके महावत को गुप्त रूप से कहला दिया था कि यदि उसका हाथी दोनों कुमारों को जान से मार डालेगा तो उसे खूब पारितोषिक मिलेगा और यदि न मार सका तो हाथी और महावत दोनों को मृत्यु-दण्ड मिलेगा। उधर सभा-भवन में चाणूर, मुष्टिक और शत-तोशल नाम के प्रचण्ड पहलवान उपस्थित थे। उन्हें भी कंस द्वारा यह गुप्त संकेत मिला हुआ था कि यदि कृष्ण-बलराम कुवलियापीड़ से किसी प्रकार बच जावें, तो वे उन्हें मल्ल-युद्ध में पछाड़कर सदा के लिए सुला दें। कंस ने तो अपनी समझ में यह व्यवस्था कर ली थी, किन्तु होना कुछ और ही था।

कंस की कपट-नीति से कृष्ण-बलराम भी अपरिचित तो थे नहीं, पर उन्हें अपने साहस, बुद्धि और पराक्रम पर भरोसा था। अत: वे निश्चिन्त होकर कंस के सभा-भवन की ओर चल पड़े। द्वार पर पहुँचे ही थे कि महावत की प्रेरणा पाकर दुष्ट हाथी ने उन पर आक्रमण कर दिया। कृष्ण ने तुरन्त स्थिति को समझा और पैंतरा बदलकर हाथी की सूंड पर प्रहार किया। हाथी ने अपना पूरा बल लगाया, किन्तु कृष्ण और बलराम की मार के आगे उसकी एक न चली। चिंघाड़ते हुए वह पृथ्वी पर बैठ गया और कुछ देर तड़प कर मर गया।

अब कृष्ण-बलराम सभा-भवन में पहुँचे। उन्हें यह भली प्रकार विदित हो चुका था कि यज्ञ के नाम पर आमन्त्रण केवल धोखा था। कंस ने उन्हें वहाँ केवल इसलिए बुलवाया था कि किसी प्रकार वह उनकी जीवन-लीला समाप्त कर डाले। वे चौकन्ने किन्तु निर्भय भाव से कंस के सामने जा खड़े हुए। कंस ने उनसे कहा कि तुम दोनों अपने बल के लिए बहुत प्रसिद्धि पा चुके हो। आज इस सभा के सामने हमारे पहलवानों के साथ तुम्हारा मल्ल-युद्ध होगा। चाणूर, मुष्टिक और शत-तोशल नामक कंस के पहलवान वहाँ उपस्थित थे ही। कृष्ण चाणूर से बलराम मुष्टिक से जा भिड़े। कंस आशा से, यादव भय से और अन्य दर्शक आश्चर्य से यह संघर्ष देखने लगे। चाणूर और मुष्टिक नामी पहलवान थे, किन्तु कृष्ण और बलराम के सामने वे टिक न सके। थोड़ी ही देर के संघर्ष में वे ढीले पड़ने लगे और दोनों ही कृष्ण-बलराम के प्रबल पराक्रम के आगे दम तोड़ते दिखायी दिये। चाणूर और मुष्टिक के पश्चात् कृष्ण-बलराम शत-तोशल से जा जूझे और शीघ्र ही उन्होंने उन दोनों को भी यमलोक का मार्ग दिखा दिया।

अपनी समस्त आशाओं पर पानी फिरा देखकर अब तो कंस काँप उठा। उधर वसुदेव और देवकी कुछ समय पहले तक तो भय के मारे कांप रहे थे, पर अब उनकी आँखों से आनन्दाश्रु बरसने लगे। कंस की धूर्तता, दुष्टता और निष्ठुरता की अति हो चुकी थी। उसे अब और अवसर देना कृष्ण को उचित नहीं लगा। भय और निराशा में डूबा कंस भी अपने होश-हवास खो रहा था। जब उससे और कुछ न बन पड़ा तो वह कृष्ण और बलराम का नाम ले-लेकर गालियाँ बकने लगा। कृष्ण कुछ क्षण खड़े यह कौतुक देखते रहे। फिर कूदकर सिंहासन पर बैठे हुए कंस के लम्बे-लम्बे केशों को हाथ से पकड़कर उन्होंने ऐसा झटका दिया कि वह बल का अभिमानी राजा लोथ की तरह लुढ़क कर भूमि पर आ गिरा। केश फिर से पकड़कर घसीटते हुए कृष्ण ने उस अत्याचारी को रंगमंच में कई चक्कर दिये और अन्त में उसके रक्त और धूल से सने हुए शरीर को उठाकर मंच के मध्य फेंक दिया।

कंस के वध का समाचार दावानल की भाँति बड़ी शीघ्रता से चारों दिशाओं में फैल गया। योद्धाओं की प्रचलित पद्धति के अनुसार यही समझा गया कि कंस को मार कर अब कृष्ण स्वयं मथुरा के राजसिंहासन पर आसीन हो जायेंगे। किन्तु यदि मथुरा तीन लोक से न्यारी थी तो कृष्ण की लीला उससे कहीं न्यारी थी। कंस के पिता उग्रसेन ने आँखों में आँसू भरकर श्रीकृष्ण से प्रार्थना भी कि "हे वीर, आप अपने बाहुबल से

जीते हुए मथुरा के राज्य का सुखपूर्वक उपभोग करो। मैं तो केवल इतना चाहता हूँ कि मुझे अपने पुत्र की अन्तिम क्रिया करने का अवसर दे दिया जाय।" उग्रसेन की इस प्रार्थना का कृष्ण ने जो उत्तर दिया वह उनके निस्पृह जीवन का एक उज्ज्वल उदाहरण है। उन्होंने नम्रतापूर्वक उग्रसेन से कहा, "मैंने राज्य की इच्छा से कंस को नहीं मारा, मैंने तो उसे केवल लोकहित के लिए मारा है। मथुरा का राज्य आपका है, मैं उसे आपको ही सौंपता हूँ।"

इस घटना के बाद कृष्ण अपने पिता वसुदेव और माता देवकी से मिले। जन्म के बाद ही जिस पुत्र से उन्हें बिछुड़ जाना पड़ा था, उससे आज इस रूप में मिलकर उनके हृदय में कैसे भाव उठे होंगे, इसकी तो कल्पना ही की जा सकती है।

कंस-वध के साथ श्रीकृष्ण के जीवन का एक अध्याय समाप्त हुआ। उग्रसेन के पुत्र लोकपीड़क कंस को समाप्त कर कृष्ण ने मथुरा का राज्य पुनः उग्रसेन को ही सौंप दिया। इस समय तक वे तथा उनके बड़े भाई बलराम किशोरावस्था में पदार्पण कर चुके थे।

यमुना-तट पर प्रकृति के विश्वविद्यालय में स्वच्छन्द वायु और आकाश के साथ मिलकर ग्वाल-बालों के बीच उन्होंने एक तरह से तो जीवन की काफी बड़ी तैयारी कर ली थी, परन्तु बौद्धिक विकास का पर्याप्त अवसर अभी उन्हें नहीं मिला था। इस कमी की पूर्ति के लिए वे सान्दीपनि मुनि के गुरुकुल में प्रविष्ट हुए। इन्हीं गुरु के आश्रम में रहते हुए श्रीकृष्ण का अपने एक गुरुभाई सुदामा के साथ वह चिर-मित्रभाव स्थापित हुआ जो कि युग-युग के लिए सच्ची मित्रता का एक अनुकरणीय उदाहरण बन गया।

विद्याध्ययन समाप्त होते न होते कृष्ण को पुनः अनेकानेक राजनीतिक समस्याओं में उलझना पड़ा। मगध का राजा जरासन्ध कंस का साला था। उसने जब यह सुना कि कृष्ण ने कंस को मार दिया है तो उनसे बदला लेने के लिए उसने मथुरा पर चढ़ाई कर दी। बलराम और कृष्ण की सेना से जरासन्ध की विशाल वाहिनियों का घमासान युद्ध हुआ। अन्त में जरासन्ध को पराजित होकर रणक्षेत्र से हट जाना पड़ा। वह अपनी घायल और हारी हुई सेना को घसीटता हुआ मगध देश को वापस चला गया। यहीं से कृष्ण के लोक-हित में किये गये युद्धों की वह शृंखला प्रारम्भ होती है, जिसने उन्हें असुरारि, मुरारि आदि वीरता-सूचक नामों से प्रसिद्ध किया।

इस आशंका से कि मथुरा के समीप रहने से कहीं व्यर्थ के राजनीतिक संघर्षों में और न फँस जाना पड़े, कृष्ण अपने साथियों को लेकर पश्चिमी समुद्र के किनारे एक सुन्दर द्वीप में जा बसे, जहाँ अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रयोग कर उन्होंने संसार को चकित करने वाली द्वारकापुरी का निर्माण किया। परन्तु वहाँ जाकर भी वे संसार की ओर से निश्चिन्त नहीं हो गये। देश के किसी भी भाग में किसी भी आततायी द्वारा किन्हीं सज्जनों को या वहाँ की प्रजा को कष्ट दिये जाने की सूचना पाते ही वे कभी अकेले और कभी सेना सहित वहाँ चढ़ाई कर देते और अत्याचारी का संहार कर उसके किसी योग्य सम्बन्धी को राजगद्दी पर बिठा देते। उन्होंने इस प्रकार कई आततायियों

का संहार किया और अनेक राजसिंहासन रिक्त किये, परन्तु कभी किसी के राज्य अथवा वैभव का एक कण भी उन्होंने अपने पास नहीं रखा। जिन आततायी शत्रुओं के सिर उन्होंने अपने सुदर्शन चक्र से काट-काटकर गिराये, उनकी सूची बहुत लम्बी है। शृगाल, कालयवन, रुक्मी, नरक, निकुम्भ, वज्रनाथ आदि कई प्रचण्ड अत्याचारियों तथा लोक-शत्रुओं का नाश करने के अतिरिक्त वाणासुर जैसे अनेक अजेय समझे जाने वाले योद्धाओं को भी उन्होंने परास्त किया।

कृष्ण मित्रता निभाने के लिए भी बड़े प्रसिद्ध थे। उनकी अर्जुन की मित्रता आज भी आदर्श मानी जाती है। उनके निरहंकार स्वभाव तथा निस्वार्थ मैत्री-भाव का दूसरा उदाहरण हमें कविवर नरोत्तमदास रचित 'सुदामाचरित' में मिलता है। सान्दीपनि गुरु के पास सुदामा और श्रीकृष्ण साथ-साथ पढ़े थे। श्रीकृष्ण अपने अद्भुत पराक्रम तथा बुद्धिबल से द्वारकाधीश की स्थिति तक जा पहुँचे। उधर सुदामा सात्विक ब्राह्मण-वृत्ति से अपना जीवन-यापन करते रहे। परिस्थितियों की मार कुछ ऐसी रही कि सुदामा को बहुत ही गरीबी के दिन देखने पड़े। उनकी पत्नी को ज्ञात था कि सुदामा श्रीकृष्ण सहपाठी रहे हैं। अतः वह प्रायः उन्हें कृष्ण के पास जाने के लिए कहती रहती थीं। स्वभाव से संकोची सुदामा को यह बात नहीं जंचती थी। किन्तु अन्ततः प्रेमपूर्ण आग्रह की विजय हुई और सुदामा द्वारका के लिए चल पड़े। सोचते जाते थे कि बदली हुई परिस्थितियों में न जाने श्रीकृष्ण मुझसे कैसा व्यवहार करेंगे। यों ही संकल्प-विकल्प करते-कराते किसी प्रकार वे द्वारकापुरी जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस पुरी का जो ठाठ-बाट देखा उससे रहा-सहा साहस भी जाता रहा। न जाने कैसे साहस बटोरकर वे कृष्ण के द्वार तक पहुँच पाये। किन्तु यह क्या? सुदामा के आगमन का समाचार पाकर कृष्ण तो ऐसे दौड़े जैसे वे न जाने कब से इसी संवाद की प्रतीक्षा कर रहे थे। कविवर नरोत्तमदास के शब्दों में—

"बोल्यो द्वारपाल सुदामा नाम पाँडे सुनि
छोड़े राज-काज ऐसे जी की गति जाने को ?
द्वारका के नाथ हाथ जोरि, दौरि गहे पायँ,
भेंटे लपटाय करि, ऐसे दुख सानै को ?
नैन दोउ जल भरि, पूँछत कुसल हरि,
विप्र बोल्यो—"विपदा में मोहिं पहिचाने को ?
जैसी तुम कीनी तैसी करै को कृपा के सिन्धु,
ऐसी प्रीति; दीनबन्धु, दीनन सौं मानै को ?"

उच्च पद पाकर मद किसे नहीं आ जाता ? किन्तु संसार में कृष्ण जैसे कुछ महापुरुष निकल ही आते हैं, जिन पर पद, धन, शक्तियां, विद्या आदि किसी का भी मदोन्मत्तकारी प्रभाव नहीं पड़ पाता। सुदामा जैसे अकिंचन ब्राह्मण के साथ भी श्रीकृष्ण ने अपने मैत्री-भाव को जिस सच्चाई और निष्ठा के साथ निभाया, वह अपने आप में सच्ची मित्रता का एक अप्रतिम उदाहरण है और इसीलिए श्रीकृष्ण के उस परम उदात्त

चरित्र को जानने और समझने वाले व्यक्ति को तनिक भी आश्चर्य नहीं होता जब वह उसी कवि (नरोत्तमदास) के शब्दों में सुदामा की दीनदशा पर उन्हें इस प्रकार आठ-आठ आँसू बहाते देखता है—

"ऐसे बिहाल बिवाइन सौं पग, कंटकजाल लगे पुनि जोये—
हाय ! महादुख पाये सखा तुम आए इतै न कितै दिन खोए ?
देखि सुदामा की दीन दसा, करुना करिके करुनानिधि रोए।
पानी परात को हाथ छुयौ नहिं, नैनन के जल सौं पग धोए ।।"

किस प्रयोजन से सुदामा द्वारकापुरी आए थे, यह श्रीकृष्ण भली प्रकार जानते थे, किन्तु कोई भी सहायता-रूप भेंट सीधे ही सुदामा के हाथों में रखने पर उन्हें स्वभावतः संकोच होता, अतः श्रीकृष्ण ने जान-बूझ कर वैसा नहीं किया। प्रेम से ही मिले और प्रेम से विदा कर दिया; किन्तु जब तक सुदामा लौटकर घर पहुंचे, तब तक वहाँ उन्होंने सभी व्यवस्था करा डाली। सुदामा ने घर आकर क्या पाया, इसकी एक संक्षिप्त झलक एक बार पुनः कविवर नरोत्तमदास के शब्दों में देखिए—

"कै वह टूटी-सी छानी हुती कहँ कंचन के सब धाम सुहावत।
कै पग में पनही न हुती कहँ लै गजराजहु ठाढ़े महावत ।।
भूमि कठोर पै रात कटे कहँ कोमल सेज पै नींद न आवत।
कै जुरतो नहिं कोदों सवाँ प्रभु के परताप तें दाख न भावत ।।"

दीनावस्था में भी मित्र के साथ पूर्ववत् समभाव से बरतने वाले, उसकी संकटापन्न अवस्था से इस प्रकार द्रवित और मर्माहत हो जाने वाले, तथा उसके आत्मसम्मान और आत्मगौरव की भावना को तनिक भी ठेस लगाए बिना उसकी यथोचित सेवा-सहायता कर देने वाले श्रीकृष्ण की उस महान् मैत्री जैसा उदाहरण और कहाँ मिलेगा ?

आगे चलकर स्वकुल की विविध राजनीतिक उलझनों को सुलझाने के साथ-साथ श्रीकृष्ण को हस्तिनापुर तथा इन्द्रप्रस्थ की राजनीति में भी सक्रिय भाग लेना पड़ा। एक बार वसुदेव और उग्रसेन कृष्ण-बलदेव को लेकर स्नान के लिए कुरुक्षेत्र गए। उन्हीं दिनों वहाँ पाण्डवों की माता कुन्ती भी अपने पुत्रों सहित आई हुई थीं। बस, यहीं कृष्ण और पाण्डवों के बीच उस घनिष्ठ सम्वन्ध का सूत्रपात हुआ कि जिसके कारण आज तक हम योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर पार्थ का एक साथ स्मरण करते हैं। कृष्ण की राजनीतिक बुद्धि निस्सन्देह अद्भुत थी। महाभारत युद्ध का निश्चय हो जाने पर जब पाण्डवों की ओर से अर्जुन और कौरवों की ओर से दुर्योधन उनके पास सहायता मांगने पहुँचे तो जहाँ दुर्योधन ने उनकी विशाल सेना को सहायता के रूप में प्राप्त कर अपने-आपको अधिक बलशाली माना, वहाँ अर्जुन केवल निश्शस्त्र श्रीकृष्ण को पाकर ही संतुष्ट और प्रसन्न थे। अपने इस चुनाव की चर्चा करते हुए अर्जुन ने ठीक ही कहा था कि "युद्ध न करने पर भी कृष्ण मन से जिसका अभिनन्दन करें, वह सब शत्रुओं पर विजयी होगा। अतः यदि मुझे वज्रधारी इन्द्र और कृष्ण में से एक को लेना पड़े, तो मैं कृष्ण को ही लूँगा।" कारण स्पष्ट था। कृष्ण की बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता अनुपम थी। उनकी पारदर्शिनी

राजनीतिक बुद्धि को लक्ष्य में रखकर ही एक बार धृतराष्ट्र ने भी यह मत व्यक्त किया था कि "जब तक रथ पर कृष्ण, अर्जुन और गाण्डीव धनुष—ये तीन तेज एक साथ हैं, तब तक ग्यारह अक्षौहिणी सेना होने पर भी कौरवों की विजय असम्भव है।"

महाभारत का युद्ध भारतीय इतिहास की एक अति दारुण घटना है। इस युद्ध में दोनों ही पक्षों के भारत के श्रेष्ठतम वीर खेत रहे। देश की सर्वोत्तम प्रतिभा का व्यापक संहार इस युद्ध के कारण हुआ। कृष्ण इस युद्ध के भीषण परिणाम को जानते थे। अतः उन्होंने इस युद्ध को रोकने के लिए जो कुछ सम्भव था, वह सब किया। और तो और, वे स्वयं पाण्डवों की ओर से दूत बनकर कौरवों की सभा में गए और उन्हें सन्धि के लिए तैयार करने का भरसक प्रयत्न किया। इतना ही नहीं, उन्होंने पाण्डवों को केवल पाँच गाँव प्राप्त करके ही सन्तोष कर लेने तक के लिए तैयार कर लिया।

उधर धृतराष्ट्र भी समझौता चाहते थे, पर दुर्योधन के आगे चल न सकी। कृष्ण ने दुर्योधन से बहुत-बहुत कहा, "हे तात! शान्ति से ही तुम्हारा तथा जगत का कल्याण होगा।" पर दुर्भाग्य से दुर्योधन को शांति या संधि की कोई भी बात पसन्द नहीं आई। उसका दो टूक उत्तर था, "केशव, मैं एक सूई की नोंक जितनी भूमि भी बिना युद्ध के नहीं दूँगा।" कृष्ण के सत्परामर्श का धृतराष्ट्र के अतिरिक्त भीष्म और द्रोण ने भी समर्थन किया, किन्तु दुर्योधन के हठ के आगे उनकी भी कुछ नहीं चली। दुर्योधन ने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा, और अन्त में महाभारत का वह संहारकारी महायुद्ध होके रहा।

पूरे युद्ध में कृष्ण निश्शस्त्र ही रहे। हाँ, अपने बालसखा अर्जुन के रथ का सारथीत्व उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। यह उनकी निरहंकार वृत्ति का सुन्दर उदाहरण है। उन्होंने सम्पूर्ण निष्ठा और निश्चय के साथ पाण्डवों की सहायता की। भीष्म ने तो युधिष्ठिर को आशीर्वाद देते हुए कह ही दिया था कि—

"यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः"

अर्थात् जिधर धर्म होगा, उधर कृष्ण होंगे और जिधर कृष्ण होंगे, उधर विजय अवश्य होगी।

युद्ध के प्रारम्भ में अपने गुरुजनों इष्टमित्रों एवं बन्धुओं के संहार की कल्पना से खिन्न तथा अवसन्नमन अर्जुन को उत्साहित कर कर्त्तव्य पालन में तत्पर करने की दृष्टि से योगेश्वर कृष्ण ने जो उपदेश दिया था, वह महाभारत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना कही जा सकती है। इस अमर उपदेश को महाभारत के रचयिता व्यास मुनि ने भगवद्-गीता के रूप में ग्रथित किया है। गीता में उन सिद्धान्तों की व्याख्या है, जिनके अनुसार स्वयं कृष्ण ने अपना लोक-हितकारी जीवन व्यतीत किया। योग और कर्म की जो व्याख्या कृष्ण ने गीता में की है, वह युग-युग तक मनुष्य-जाति का पथ-प्रदर्शन करती रहेगी—इस प्रकार के संकल्प-विकल्प में पड़े मानव के लिए श्रीकृष्ण के मुख से निकले अमर शब्द—"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" अन्धकार में ठोकरें खाते हुए पथिक को सहसा बिजली की कौंध से प्राप्त पथ-प्रदर्शन की भाँति प्रेरणादायी और

उत्साहवर्धक हैं। फल की चिंता से मुक्त होकर कर्त्तव्य-पालन को ही सुखी और सफल जीवन की कुंजी कहा जा सकता है। गीता में श्रीकृष्ण ने सारपूर्वक कहा है यदि मनुष्य अनासक्त होकर निःस्वार्थ भाव से अपना कर्त्तव्य करे तो कर्म आत्मा के लिए बन्धन का कारण नहीं होता। मनुष्य के बन्धन और दुःख का कारण कर्म नहीं, वल्कि आसक्ति है। अतः मनुष्यों को सुख-दुःख या हानि-लाभ की चिन्ता किए बिना निःस्वार्थ भाव से अपना कर्त्तव्य करते रहना चाहिए। गीता का कर्मयोग श्रीकृष्ण की मानव-जाति को महती देन है। कई महान् सन्तों और प्रकाण्ड विद्वानों ने गीता पर भाष्य या टीकाएँ लिखी हैं और उसके श्लोकों के नये-नये अर्थ निकाले हैं। संसार के महान् दर्शन-ग्रन्थों में गीता का विशिष्ट स्थान है।

इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अपने बचपन में निःस्वार्थ स्नेह और बाल्योचित क्रीड़ा, युवावस्था में वीरता और साहस तथा परिपक्व आयु में राजनीति और गहन दार्शनिकता का सुन्दर उदाहरण हमारे सामने रखा। भारत के नर-नारियों ने उनके जीवन को आदर्श माना और इस प्रकार उनके हृदय में उस महामानव के प्रति जो श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न हुई, वह भी मिट नहीं सकती।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव

ब्रजमंडल की शुभ धरणी में, भादों की काली रजनी में
उस जन्म रहित का जन्मोत्सव;
भगवान कृष्ण का जन्मोत्सव!
यह योगेश्वर का जन्म दिवस; यह गोपेश्वर का जन्म दिवस।
इतिहास-लिखित मिट-मिट जाता यह व्रत से पूजित अमर दिवस॥
है अर्ध-चन्द्र का चिर गौरव;
उस जन्म रहित का जन्मोत्सव!
भादों की रजनी वह काली; कारा की भीषण अँधियाली।
पहरे की दुर्गम रखवाली, तालों में रक्षित थी ताली।
हो गया असंभव भी संभव;
उस जन्म रहित का जन्मोत्सव!
जननी ने जगत-जनक देखे, जन जन के दुःख मोचन देखे।
भय-भंजन मन-रंजन देखे, शिशु-वेशी शेष-शयन देखे॥
देखा वह अजर-अमर वैभव।
उस जन्म रहित का जन्मोत्सव!
प्रहरी सोये, फिर द्वार खुले, नभ से जल के भंडार खुले।
यमुना-लहरें भीषण गति से, करती थीं तट पर वार खुले॥

छिप छिप चलता था इक मानव।
उस जन्म रहित का जन्मोत्सव !

पग से छू यमुना शान्त हुई, माया मानो निर्भ्रान्ति हुई।
ब्रज भू पीड़ा-आक्रान्त हुई—गोरस पीकर विश्रान्त हुई॥
सुख-सागर में बहता 'विप्लव';
उस जन्म रहित का जन्मोत्सव !

ब्रज ने पाया उल्लास नया, सूने नयनों ने हास नया।
कुंठित प्राणों ने श्वास नया, नव निधियों ने आवास नया॥
रज कण में लुटता था वैभव।
उस जन्म रहित का जन्मोत्सव !

ग्वालों में अद्भुत लीलाएँ, संगठन-शास्त्र की रचनाएँ।
कमनीय-कुसुम अरु कलिकाएँ, चुन-चुन कर गूँथीं मालाएँ॥
सागर मंथन था वह शैशव।
उस जन्म रहित का जन्मोत्सव !

कालिय-मर्दन, वह कंस दमन, इंगित पर नाचा गोवंधन;
क्षण क्षण है अमृत का मानस, है नेति-नेति ही वर-वर्णन;
है मूक गिरा, चकृत अवयव;
उस जन्म रहित का जन्मोत्सव।

मुरली-मोहन, माखन-चाखन दावा-भक्षण, दारुण-दहन।
गीता गायक, ध्रुव-नीति-अयन, योगेश्वर, नटवर, स्नेह सदन।
घनश्याम, दया-घन, श्याम, प्रणय।
उस जन्म रहित का जन्मोत्सव !

जन्माष्टमी

भादों बदी अष्टमी को, यह जन्म अष्टमी आई।
वसुदेव के नन्दन, जन्मे देवकी ने कन्हाई॥
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे !!

द्वापर युग में धरती पर, पाप घनघोर छाया था।
पाप से दुखिया धरा ने—गाय का रूप बनाया था॥
धरती की व्यथा ब्रह्मा ने—सब देवताओं को सुनाई।
भादों बदी अष्टमी को, यह जन्म-अष्टमी आई॥
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे !!

गाय को साथ ले ब्रह्मा गए विष्णु के दरबार में।
विष्णु से ब्रह्मा जी बोले—पाप बहुत हैं संसार में॥

पापाचार धरा पर सुन फिर, विष्णु ने धीर बँधाई।
भादों बदी अष्टमी को, यह जन्म-अष्टमी आई ॥
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे ! !

कंस की बहन देवकी के—गर्भ से जन्म मैं लूँगा।
बनकर वासुदेव नंदन—धरा से पाप हर लूँगा ॥
अंतर्धान हुए विष्णु जी—देवों ने ली विदाई।
भादों बदी अष्टमी को, यह जन्म-अष्टमी आई ॥
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे ! !

कंस ने वसुदेव को—बहन देवकी परणाई।
राजसी ठाठ-बाट से—कर दो बहना की विदाई ॥
आकाशवाणी से ये फिर आवाज कंस को आई।
भादों बदी अष्टमी को, यह जन्म-अष्टमी आई ॥
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे ! !

आठवीं सन्तान देवकी की, कंस के प्राण हर डाले।
संकट सारी धरती के—पल में दूर कर डाले ॥
यह वाणी सुनी कंस ने—फिर झट तलवार उठाई।
भादों बदी अष्टमी को, यह जन्म-अष्टमी आई ॥
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे ! !

कंस आकाशवाणी सुन—डर से काँपने लगा।
फिर अपनी तलवार खींच, देवकी का सिर काटने लगा ॥
विनय से हाथ जोड़ कर, वसुदेव ने अरज सुनाई।
भादों बदी अष्टमी को यह जन्म-अष्टमी आई ॥
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे ! !

प्राण देवकी के मत लो ! सभी सन्तान ले लेना।
अपनी ही देख-रेख में हमें कुछ शरण दे देना ॥
वसुदेव की विनय सुन—कंस ने जोड़ी जेल भिजाई।
भादों बदी अष्टमी को, यह जन्म-अष्टमी आई ॥
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे ! !

कारावास में रहे बन्द—वसुदेव और देवकी।
अपने पुत्रों की देते रहे ये भेंट कंस की ॥
निज भाञ्जों की पापी ने—निर्मम हत्या करवाई।
भादों बदी अष्टमी को, यह जन्म-अष्टमी आई ॥
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे ! !

वसुदेव-देवकी के दुःखों की अन्त घड़ी आई।
अष्टमी रोहिणी नक्षत्र में, जन्मे कृष्ण कन्हाई।

ताले टूटे जेल के—पहरेदारों को नींद आई।
भादों बंदी अष्टमी को, यह जन्म-अष्टमी आई ।।
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे ! !

वसुदेव कृष्ण को लेकर, गोकुल में नन्द घर गए।
रात अँधियारी थी लेकिन, वो यमुना पार कर गए ।।
यमुना उमड़ी उमंग में ली हरि चरणों की बलाई।
भादों बदी अष्टमी को, यह जन्म-अष्टमी आई ।।
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्ण हरे ! !

इसी रात्रि को गोकुल में, नन्द घर कन्या रतन आया।
इसी कन्या को वसुदेव, लेकर कारागृह आया ।।
बन्द हुए जेल के ताले नहीं खबर कंस ने पाई।
भादों बदी अष्टमी को, यह जन्म-अष्टमी आई ।।
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे ! !

सुना फिर पहरेदारों ने—जेल में कन्या का रोना।
खबर फिर कंस को दे दी—घिरा जेल का हर कोना ।।
कन्या के पाँव पकड़ पापी ने, वह पत्थर से टकराई।
भादों बदी अष्टमी को—यह जन्म-अष्टमी आई ।।
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे ! !

कंस के हाथों से छुटकर—कन्या गई नीलगगन में।
उड़ गए होश पापी के, अन्त देखा मन-दर्पण में ।।
नील अम्बर से उसने कंस को आवाज लगाई।
भादों बदी अष्टमी को, यह जन्म-अष्टमी आई ।।
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे ! !

तेरा संहारक है जिन्दा, नाम है कृष्ण कन्हाई।
पापाचारियों की अब, अरे लो अन्त घड़ी आई ।।
तू मुझको क्या मारेगा—तेरी मौत स्वयं ही आई।
भादों बदी अष्टमी को, यह जन्म-अष्टमी आई ।।
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे ! !

बड़े होकर भगवान् ने, किया दुष्टों का सफाया।
कंस का अन्त फिर करके, धरा पर अमृत बरसाया ।।
पापाचारियों की धरती से, हस्ती ही मिटाई।
भादों बदी अष्टमी को, यह जन्म-अष्टमी आई ।।
हरे श्यामा ! हरे श्यामा ! हरे श्याम-श्याम कृष्णा हरे ! !

शिक्षक-दिवस 5 सितम्बर

उत्सव की तैयारी

शिक्षक-दिवस का शिक्षण संस्थाओं में बहुत महत्त्व है। यह दिन भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् के जन्म-दिवस पर शिक्षक-दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस दिन राष्ट्र के निर्माता शिक्षकों को स्थानीय नागरिकों द्वारा व छात्रों द्वारा सम्मानित कर उन्हें उनकी सेवाओं के लिए पुरस्कृत किया जाना चाहिए। शाला में निम्न प्रकार से उत्सव मनाने की व्यवस्था की जानी चाहिए—

○ इस दिन छात्रों व नागरिकों द्वारा 'शिक्षक कल्याण कोष' के लिए धन-राशि एकत्रित की जानी चाहिए।

○ निर्धारित समय पर उत्सव के लिए शाला में एक सभा का आयोजन होना चाहिए, जिसमें विद्वान शिक्षक डा० राधाकृष्णन् के जीवन पर शिक्षकों व छात्रों द्वारा भाषण दिए जाने चाहिए।

○ इस अवसर पर शाला के शिक्षकों को उनकी विशेष सेवाओं के लिए नागरिकों द्वारा पुरस्कृत करना चाहिए।

○ छात्रों द्वारा शिक्षकों को माला पहनाकर उनके लिए सम्मान प्रदर्शित करना चाहिए।

○ शिक्षकों का दायित्व, शिक्षा का जीवन में महत्त्व, कुछ वन्दनीय शिक्षक आदि विषयों पर उत्सव-सभा में प्रवचन होने चाहिए।

○ सभास्थल पर आदर्श शिक्षक डा० राधाकृष्णन् का चित्र लगाना चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

डा० राधाकृष्णन् का जीवन-परिचय—विश्वप्रसिद्ध डा० राधाकृष्णन भारतीय गणराज्य के दूसरे राष्ट्रपति रहे हैं। 5 सितम्बर 1888 को मद्रास जिले के तिन्नी गाँव में इनका जन्म हुआ। एक सामान्य परिवार में जन्म लेकर भी डा० राधाकृष्णन् आज जो कुछ भी दिखाई देते हैं, उनके पुरुषार्थ और भगीरथ प्रयत्नों का फल है। इसे यों कहा जा सकता है कि उन्होंने अपना निर्माण स्वयं ने ही किया। बचपन से ही संकोची

और लजीले स्वभाव के डा० राधाकृष्णन् शास्त्रियों की अपेक्षा पुस्तकों को साथ रखते आए हैं। इन्होंने विदेश में जाकर शिक्षा नहीं पाई, वे भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए ही गौरव की वस्तु हैं। इन्होंने भारत का निर्माण भारतीय तत्त्वों से ही किया है।

विद्यार्थी-जीवन से ही डा० राधाकृष्णन् विद्यार्थियों की ट्यूशन किया करते थे। 1908 में युवा राधाकृष्णन् केवल 20 साल की आयु में मद्रास के कॉलेज में दर्शन और तर्कशास्त्र के शिक्षक नियुक्त हुए। उनकी वाणी में इतना ओज था कि छात्र मन्त्रमुग्ध रहते थे। विषय की गहराई, शब्दों का सुन्दर चुनाव व भाषण की विषद परिष्कृत शैली राधाकृष्णन् की अपनी विशेषता है। इनके व्याख्यानों में श्रोता को शब्दों की लहर धारा-प्रवाह चलती दिखाई देती है और श्रोताओं पर इसकी अमिट छाप दिखाई देती है। शिक्षक के रूप में युवक राधाकृष्णन् की ख्याति शीघ्र ही कॉलेज की दीवारें पार करके फैल गयी। उनके व्याख्यान देने की शक्ति, तर्क और भावना का अपूव संग्रह दर्शन और तर्कशास्त्र का विषय राधाकृष्णन् के हाथ में पहुंच कर आकर्षक बन गया था। डा० राधाकृष्णन् अपनी कक्षा के प्रत्येक छात्र को अच्छी तरह जानते थे। विनम्रता और निश्चलता रखते हुए स्वाध्यायियों की मदद करने से वे कभी नहीं चूके ; छात्रों के लिए उनके द्वार हमेशा खुले रहे। छात्रों की यथाशक्ति सहायता करना उनका स्वभाव ही नहीं उनका धर्म हो गया था। प्रेसीडेंसी कॉलेज में डा० राधाकृष्णन् 1908 से 1917 तक रहे तदुपरान्त 1918 से 1921 तक डा० राधाकृष्णन् मैसूर में महाराजा कॉलेज में दर्शन के प्रोफेसर रहे। मैसूर में रहते हुए डा० राधाकृष्णन् की ख्याति भारत भर में फैल गई।

गुरु और शिष्यों के बीच सम्बन्ध कैसे होने चाहिए और कैसा होना उसका एक ही उदाहरण डा० राधाकृष्णन् के जीवन से लिया जाना पर्याप्त होगा। जब डा० राधा-कृष्णन् ने मैसूर से कलकत्ता जाने का निश्चय किया और छात्रों को जब इसका पता लगा तो उन्होंने अपने आपको असहाय महसूस किया। युवा विद्वान् प्रोफेसर के प्रति उनकी श्रद्धा उनका अगाध प्रेम मोह-सागर की तरह उमड़ पड़ा। उन्होंने आग्रह किया कि उनका प्रोफेसर गाड़ी पर अवश्य बैठे और उस गाड़ी को खींचने के लिए छात्रों में होड़ लग गई। प्रोफेसर राधाकृष्णन् का जीवन में यह अपूर्व क्षण था। श्रद्धा का सागर उनके चरणों में लोट रहा था, विदा से दु:खी छात्र अपने प्रोफेसर को श्रद्धा से भरी विदाई दे रहे थे। आँसू देखकर लोग विस्मृत रह गए। कलकत्ता विश्वविद्यालय में जितने वर्ष डा० राधा-कृष्णन् रहे उनकी प्रतिभा से न सिर्फ भारतवर्ष को बल्कि विश्व को भी लाभ मिला। इसके बाद मई 1931 में श्री राधाकृष्णन् आन्ध्र विश्वविद्यालय के कुलपति चुने गए। वहाँ के शिक्षकों ने यह अनुभव किया कि डा० राधाकृष्णन् वस्तुत: यथार्थ अर्थों में प्राचीन समय के एक कुलपति हैं। शिक्षा-जगत में आन्ध्र विश्वविद्यालय का स्थान ऊँचा करने में इनका विशेष हाथ रहा। 1939 ई० में डा० राधाकृष्णन् ने महामना मालवीय जी के आग्रह पर हिन्दू विश्वविद्यालय का कुलपति पद स्वीकार कर लिया। 1939 से 1948 तक इन्होंने इस विश्वविद्यालय की अन्यतम सेवा की।

शिक्षक सदा शिक्षक ही रहता है। यह बात डा० राधाकृष्णन् के बारे में सत्य

न हों परन्तु वे मूलत: शिक्षक ही हैं और यह उनके प्रत्येक कार्य से प्रगट होता है। जीवन के चालीस वर्ष (1908 से 1948) उन्होंने शिक्षा देने या शिक्षा संस्था का प्रबन्ध करने के लिए बिताये। भारत में ऐसे शिक्षक बहुत कम हैं जिनका दोनों का अन्तर आपके समान हो। जैसे एक सैनिक बढ़ते-बढ़ते एक सेनापति होता है वैसे ही आप तर्कशास्त्र के सहायक प्रोफेसर से बढ़ते हुए पहले विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, फिर कुलपति हुए। कुलपति होते हुए भी आप पढ़ते रहे। यहाँ तक कि राजदूत होते हुए भी आप अध्ययन का काम करते रहे। पढ़ाने का, शिक्षा देने का इतना व्यापक अनुभव इस देश में कम लोगों को ही है।

विदेशों में राजदूत और भारतीय गणराज्य के प्रथम उपराष्ट्रपति और राष्ट्रपति पद पर कार्य कर रहे डा० राधाकृष्णन् सही मायने में ऐसे शिक्षक हैं जिनका अनुकरण हर शिक्षक अपने जीवन को उज्ज्वल और आदर्शमय बनाने के लिए कर सकता है और यही वजह है कि डा० राधाकृष्णन् के जन्मदिवस को ही शिक्षक-दिवस के रूप में मनाया जाता है।

समाज में शिक्षक का स्थान बहुत बड़ा है। बालक या विद्यार्थी जो राष्ट्र की नींव होते हैं उन्हें नींव योग्य बनाने का पूरा दायित्व शिक्षकों पर होता है। शिक्षकों का उज्ज्वल चरित्र, शिक्षकों का आदर्श जीवन-चरित्र और उसका सद्व्यवहार विद्यार्थियों के लिए अनुकरणीय होता है। और यदि शिक्षक इनसे वंचित रहें तो विद्यार्थी उससे क्या ग्रहण करेंगे। सोचने की बात है। अतएव शिक्षकों के दयित्व की बात डा० राधाकृष्णन् जैसे महान शिक्षक के जीवन से ली जानी चाहिये। शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच जो सम्बन्ध रहना चाहिए उसकी जानकारी भी उनके जीवन-चरित्र से प्राप्त की जानी चाहिए।

शिक्षाएं—एक मामूली शिक्षक भी अपनी प्रतिभा व अपने व्यवहार से भारत के राष्ट्रपति जैसे पद पर आसीन हो सकता है, यह डा० राधाकृष्णन् के जीवन से ग्रहण की जाने वाली सबसे अच्छी शिक्षा है। शिक्षक को कभी भी हेय दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिये, उसका आदर और सम्मान किसी भी बड़े राजनैतिक और सामाजिक नेता से कहीं अधिक किया जाना चाहिये।

आज इस बात की समाज द्वारा नितान्त आवश्यकता है। नेताओं और नागरिकों द्वारा शिक्षकों को पूर्ण सम्मान दिया जाना चाहिए। तभी जाकर देश के शिक्षक भावी संतति के प्रति न्याय कर सकेंगे। उन्हें सभी प्रकार की सुविधा दी जानी चाहिए तथा उनके वेतनमान उन्नत स्तर के हों।

शिक्षक-दिवस का महत्त्व—भारत की शिक्षा और समाज के लिए यह गौरव का विषय है कि प्रति वर्ष 5 सितम्बर को राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् का जन्म शिक्षक-दिवस के रूप में मनाया जाता है। आज का वह दिन शिक्षकों को उनके कर्त्तव्य एवं समस्याओं का स्मरण कराता है। हमारे राष्ट्रपति की शिक्षक के रूप में प्रसिद्धि देश की सीमा लाँघकर विदेशों तक पहुंची। ऐसे ख्यातिप्राप्त शिक्षक का जन्म-दिन शिक्षक-

दिवस के रूप में मनाया जाना उचित है। इससे राष्ट्र अपने शिक्षकों का सम्मान करके गुरु-ऋण से मुक्त होता है। जो राष्ट्र अपने देश के शिक्षकों का सम्मान करता है उसका भविष्य सदैव उज्ज्वल रहता है।

प्राचीन भारत में महत्त्व—प्राचीन काल से भारत गुरुजनों का सम्मान करता आ रहा है। आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा का दिन हजारों साल से गुरु पूर्णिमा के रूप में मनाया जाता रहा है किन्तु वर्तमान समाज ने राष्ट्रपति का जन्मदिन शिक्षक-दिवस के रूप में मान कर एक ओर तो प्राचीन परिपाटी को निभाया है और उसमें अधुनिकता का पुट दिया है।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

शिक्षक-दिवस

'गुरुवर विष्णु, गुरुवर ब्रह्मा' भोला कहे नादान तुझे।
शिक्षक शिक्षक-दिवस मनाएँ, लगता है अपमान मुझे॥

गुरुजनों की महिमा का, सुनाता हूँ तराना।
ये देश के निर्माता हैं, सब जाने जमाना॥

हिमालय से ऊँचा है इनका हरा हिया।
अपमानित होने पर भी शिकवा नहीं किया॥
हर देश के कर्णधारों का निर्माण ही किया।
और राष्ट्र-धर्म मानव को विधान ही दिया॥

पर अपने वतन में रहा सदा ही बेगाना।
गुरुजनों की महिमा का सुनाता हूँ तराना॥

नर नारायण बना दिए गुरुजनों की दया ने।
देवता ललचाए गुरुजनों की दया ने॥
है कौन ऐसा जो गुरुमहिमा नहीं जानता।
बिना गुरु अपने आपको महान मानता॥

मियाँ मिट्ठू होने का नहीं करता बहाना।
गुरुजनों की महिमा का सुनाता हूँ तराना॥

गुरु ने हर कदम समाज का उत्थान किया।
हरदम जलाया तन का राष्ट्र के लिए दिया॥
ज्योति-पुंज बनकर गुरु वसुन्धरा पै आया।
अज्ञान के अंधकार से जगती को बचाया॥

सतियों को सिखाया गुरु ने अमर बनाना।
गुरुजनों की महिमा का सुनाता हूँ तराना॥

हिन्दी-दिवस 14 सितम्बर

उत्सव की तैयारी

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने के पश्चात् भी व्यावहारिक रूप से अनेक कठिनाइयाँ आ रही हैं। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर गौरवपूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करने के लिए अनेक महान व्यक्तियों ने योगदान दिया है। आज देश की एकता के लिए हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार की महती आवश्यकता है। आज हमारा कर्त्तव्य है कि हम हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार के लिए मिशन की भावना से काम करें।

विद्यालय में भावी पीढ़ी अध्ययन करती है। उनको हिन्दी में रुचि पैदा हो एवं वे अपना सारा काम हिन्दी में ही कर सकें इसके लिए उन्हें प्रेरित करने की आवश्यकता है। इस दिन हिन्दी के साहित्यकारों के प्रति जानकारी देना अपेक्षित है। विद्यालय में वाद-विवाद प्रतियोगिता निबन्ध प्रतियोगिता, कवि-सम्मेलन, सुन्दर लेखन प्रतियोगिता एवं विविध प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया जाना चाहिये। साक्षरता अभियान एवं प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से भी चेतना पैदा करने का कार्य किया जाना चाहिए। अध्यापकों को भी चाहिए कि वे ऐसी कोई प्रायोजना लें जिससे हिन्दी के विकास में सहयोग मिल सके।

उत्सव के पूर्व उसकी सम्पूर्ण योजना बनायी जानी चाहिए। इसमें शिक्षक, अभिभावक व छात्रों का पूर्ण सहयोग लेना चाहिए। अ-हिन्दी क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्तियों पर और भी गम्भीर दायित्व आ जाता है कि वे उन लोगों को हिन्दी जानने के लिए प्रेरित करें।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

जिसको न निज भाषा तथा देश का अभिमान है
मानव नहीं वह तो मुझे लगता मृतक समान है

(मैथलीशरण गुप्त)

जिस व्यक्ति को अपनी भाषा और अपने देश के प्रति गौरव की अनुभूति नहीं होती वह व्यक्ति वास्तव में मृतक के समान है! 'साहित्य संगीत कला विहीन,' कहकर भी इसी तथ्य की ओर ही संकेत किया गया है मनुष्य को भाषा के द्वारा ही समस्त प्रगति का श्रेय मिला है। मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है उनके पास भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से वह ज्ञान का संकलन-सृजन और संरक्षण कर सकता है।

व्यक्ति अपनी मातृभाषा में ही चिन्तन करता है और उसकी श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति भी मातृभाषा में ही हो सकती है। आजादी पूर्व हम राजनीतिक, शारीरिक, एवं मानसिक रूप से गुलाम थे। सत्ता पक्ष द्वारा अंग्रेजी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था। राजभाषा का प्रभाव-क्षेत्र शिक्षित वर्ग में बढ़ता जा रहा था। नौकजी का लोभ इस भाषा के प्रति आकर्षण पैदा कर रहा था। लार्ड मेकाले की शिक्षा व्यवस्था से लेकर आगे इसी भाषा को शिक्षण का माध्यम बनाया गया।

विज्ञान की प्रगति से अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। संसार के बीच की दूरी कम हो गयी तथा आपसी सम्पर्क के अधिक अवसर उपलब्ध होने लगे। धर्म-सुधार आन्दोलन व समाज-सुधार आन्दोलन का भी गहरा प्रभाव पड़ा। भाषा और साहित्य के क्षेत्र में परिवर्तन आया। धार्मिक व सामाजिक चेतना के साथ राजनीतिक जागृति का भी लोक-मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा। अपने देश व अपनी भाषा के प्रति दायित्व की भावना जागृत हुई और निज भाषा उन्नति के प्रयास किये जाने लगे।

स्वतन्त्रता के पूर्व ही हिन्दी साहित्य तेज गति से विकास की ओर अग्रसर हो रहा था। हिन्दी को राजकीय संरक्षण तो प्राप्त नहीं था; पर भारतीय जनता की उसके प्रति रुचि बढ़ती जा रही थी। 15 अगस्त 1947 को भारत को राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। उस समय तक देश की अधिकांश शिक्षण संस्थाओं में अंग्रेजी माध्यम ही था। आज भी विज्ञान व तकनीक के क्षेत्रों में अंग्रेजी भाषा का ही प्रभुत्व है, फिर भी हिन्दी के प्रति लोगों का ध्यान जा रहा है।

हिन्दी-दिवस का महत्व—हिन्दी को हमारे देश की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृति मिली है। हिन्दी इस देश की भाषा है और इसको देश के अधिकांश व्यक्ति बोल सकते हैं तथा समझ सकते हैं। देश को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए इस भाषा का सही माध्यम बनाया जा सकता है। वर्षों से हिन्दी का प्रचार देश के सम्पूर्ण भू-भाग पर किसी न किसी रूप में होता रहा। हिन्दी की लिपि (देवनागरी) भी वैज्ञानिक एवं सरल है।

भारत ने एक लम्बे संघर्ष के पश्चात् स्वतन्त्रता प्राप्त की। उस स्वतन्त्रता को स्थायित्व प्रदान करने के लिए और नागरिकों के अधिकार-क्षेत्र की व्याख्या के लिए संविधान का निर्माण किया गया। 14 सितम्बर को भारत की संविधान-सभा ने हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया था, उसी दिन से इस देश की भाषाओं को उनका सही स्थान देने की बात को स्वीकार किया गया।

भारत में हिन्दी-भाषिओं की संख्या अधिक है। हिन्दी में विपुल साहित्य-सामग्री उपलब्ध है और उससे हम इस भाषा की साहित्यिक महत्ता को प्रतिष्ठित करते हैं। हिन्दी में हमारे समाज व संस्कृति का रूप दिखाई देता है। हिन्दी भाषा का वाक्य-विन्यास और शब्द-भण्डार पूर्ण वैज्ञानिक है। व्याकरण की दृष्टि से भी हिन्दी समृद्ध भाषा है। हिन्दी अब किसी एक प्रान्त अथवा वर्ग की भाषा नहीं रही है वह सारे भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा है।

राष्ट्रभाषा का स्थान वही भाषा ग्रहण कर सकती है जो राष्ट्रीय गौरव को विश्व के सामने रखने में सक्षम हो। हिन्दी ही एक ऐसी भारतीय भाषा है जो हमारे राष्ट्रीय गौरव का प्रतिनिधित्व करती है। हिन्दी को बोलना और समझना प्रत्येक भारतीय के लिए बहुत सरल है। देश की एकता, देश के नवनिर्माण की प्रगति एवं समृद्धि के लिए राष्ट्रभाषा का प्रयोग होना आवश्यक है। हिन्दी के विकास के मार्ग में कुछ बाधाएँ आरम्भ से ही आती रही हैं। कुछ लोग अंग्रेजी भाषा की समृद्धि में ही अपना हित देखते हैं। ऐसे लोग हिन्दी का विरोध कर रहे हैं। संविधान में 1965 तक सभी राजकीय कार्य हिन्दी में होने की बात कागजों में ही दबकर रह गयी है। दक्षिण भारत में हिन्दी के विरुद्ध दूषित प्रचार किया जा रहा है। भाषा के प्रश्न को राजनीतिक रंग दिया जा रहा है। कुछ हिन्दी को इतनी दुरूह रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं जिससे लोगों की रुचि उसके प्रति कम होती जाती है।

संघर्ष के इस समय में हिन्दी के प्रचार व प्रसार की नितान्त आवश्यकता है। किसी भाषा को लोकप्रिय बनाने के लिए उसके सरल स्वरूप को ही प्रस्तुत करना होगा। भाषा के प्रचार का कार्य सामाजिक एवं राष्ट्रीय कार्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। जब सरकारी सहयोग राजनीति के मायाजाल में उलझ जाए तो हमारे पास लोक-चेतना ही एक आधार रह जाता है। हमें लोगों के अंग्रेजी के प्रति मोह को बदलना होगा। जब हम व्यावहारिक रूप से हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए काम करेंगे तभी हमारे उद्देश्य में हमें सफलता मिलेगी। अतः हम सभी मिलकर हिन्दी दिवस मनाते हुए इस बात पर विचार करें कि हम किसी प्रकार हिन्दी को उसका सही स्थान दिलवा सकते हैं। हिन्दी-दिवस को मनाने की सही उपलब्धि इसमें छिपी हुई है कि हिन्दी को उसका सही स्थान व गौरव मिले।

युवा पीढ़ी का दायित्व

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल ॥

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

व्यक्ति की उन्नति के लिए भाषा ही सही माध्यम है। भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति का सही रूप से विकास हो सकता है। अभिव्यक्ति एवं चिन्तन के लिए भाषा ही आधार प्रदान करती है। हम हिन्दी के माध्यम से ही सोचते हैं एवं उसी के माध्यम से अपने विचारों को सही और प्रभावी रूप से प्रकट कर सकते हैं। हमें अपनी भाषा के प्रति प्रेम और सम्मान होना चाहिए।

हमें हिन्दी भाषा में ही अपने कार्यों का निष्पादन करना चाहिए। राज कार्य में हिन्दी को सही स्थान मिले इसके लिए अपना सहयोग देना चाहिए। राजस्थान उच्च न्यायालय ने भी अपने फैसले हिन्दी में लिखने का प्रशंसनीय कार्य किया है।

आज हमारा कर्त्तव्य है कि हम साक्षरता अभियान में गति लायें। हिन्दी भाषी क्षे. व अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के लिए योजनायें बनायें, एवं उसको क्रियान्वित करने के

लिए दृढ़-संकल्प हों। हम सब मिलकर जब ठोस कार्य करेंगे तभी हिन्दी को उसका सही स्थान मिल पायेगा।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

(राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति)

तुम वही तो हो, जिसे रसखान ने
छछिया भर छाछ पिलाकर पाला,
तुम वही तो हो जिस पर रहीम ने—
सर्वस्व निछावर कर डाला।

तुम वही तो हो जिसको तुलसी ने
अपने मानस में बिठा प्रारूप रचा,
तुम वही तो हो जिसे श्रृंगारते वक्त
सूर की अन्धी आंखों से कुछ न बचा।

मैं कहाँ तक कहूँ तू वन्दनीया है
तू हर अधर पर घुली माधुरी है,
तू भूमिजा है, राधा है, मीरा है,
तू कृष्ण की लाडली बाँसुरी है।

तू है तो लगता है मेरा बचपन
अभी-अभी तुतला कर गले झूम गया।
लगता है मेरा यौवन बादल बन कर
चातक की प्यास को अभी-अभी चूम गया।

तू है तो मेरे देश की रक्तशिराओं में
अपने पूर्वजों की आन की ललाई है।
तू है तो लगता है शाम जो रूठ गई,
वही किरन उषा बन आज मुस्कुराई है।

ये खेत, ये खलिहान, ये कारखाने
ये विद्यालय, जहाँ इन्सान ढलते हैं,
जब कभी हिमालय आवाज देता है
सभी एक आवाज में बोल उठते हैं।

तू मेरी संस्कृति है, सभ्यता है
मुँह बोलता हुआ शब्दचित्र है तू।
दोस्त और दुश्मन की परख तू है
कसौटी है, सच्ची मित्र है तू।

मगर ये कौन हैं जो नक़ाब डाले हैं?
तेरे अपने होने का दम भरते हैं।

तेरे विकास की दुहाई दे-दे कर
अंग्रेजी के विकास का कर्म करते हैं।
ये कौन हैं जो तुझे कमजोर कहते हैं
और सशक्त बनाने को विष पिलाते हैं
तेरी जय बोलते हैं खुद की रक्षा के लिए
तेरे खिलाफ साजिश कर तेरी जड़ें हिलाते हैं।
ये वही गुलाम तो नहीं जिन्हें जाते-जाते
इन के प्रभुओं ने यहाँ छोड़ा था ?
मेरे देश के भोलेपन से खेलने के लिए
जिन्हें सिंहासनों पर गोद से जोड़ा था ?
तो क्या मेरे देश में स्वाभिमान नहीं
जो चन्द गद्दारों ने देशभक्ति को मिटा डाला।
लाश को दफनाते हैं सुना था लेकिन
इन्होंने जीते-जी देश को कब्र में लिटा डाला।
नहीं ! नहीं ! ! ए वक्त ठहर अभी करवट लेनी है
देख कि ये उठते हुए जवान क्या करते हैं ?
देख कि 'नई उम्र की नई फसल' क्या करती है ?
ये गुलाम मरते हैं कि नहीं मरते हैं ?

(चन्द्रकुमार 'सुकुमार')

अग्नि-परीक्षा को तत्पर

किस दिन प्राण प्रतिष्ठा होगी प्रतिमा की
किस दिन भवन देव-मन्दिर कहलायेगा।
किस दिन अपने गो-धन को धन समझेंगे,
वेद-ऋचाओं को कब्र कण्ठ सराहेगा ?
स्वाभिमान बन्धक बन भरता उदर अभी,
अभी दिशायें गीत दासता के गातीं।
रुका न अब तक द्रुपद-सुता का चीर-हरण,
धरती की उन्मुक्त शिरायें सकुचातीं।
आज पार्थ बन क्लीव कन्दरा में पैठा,
आज धनञ्जय मौन सभी अन्याय सहे—
स्नेह-सूत्र भाई-भाई का टूट रहा,
क्यों अतीत की गाथायें आ टकरातीं;
करो नहीं आह्वान महाभारत का फिर,
पासों में खुद शकुनी कब बँध पायेगा।

2 अक्टूबर : गांधी-जयन्ती

उत्सव की तैयारी

2 अक्टूबर का हमारे राष्ट्रीय जीवन में बहुत महत्त्व है। इस दिन राष्ट्रपिता बापू का जन्म हुआ था। इस दिवस को पूरे उल्लास और उत्साह के साथ मनाना चाहिए। इस दिन निम्न प्रकार से कार्यक्रम रखा जाना चाहिए—

○ प्रातः 'रघुपति राघव राजा राम' की धुन के साथ प्रभात-फेरी की व्यवस्था की जानी चाहिए।

○ शाला में उत्सव मनाने हेतु निर्धारित समय पर सभा का आयोजन किया जावे, जिसमें सूत कातने, भजन, कीर्तन, गांधी-जीवन पर प्रवचन, एकांकी आदि के विभिन्न कार्यक्रम रखे जावें।

○ गांधीजी के जीवन से प्रेरणा लेने हेतु उत्सव-स्थल पर उनके जीवन के विविध प्रसंगों को शिक्षकों द्वारा समझाना चाहिए।

○ उत्सव-स्थल पर महात्मा जी का चित्र भी रखना चाहिए तथा हो सके तो इस दिन गांधी-साहित्य के वितरण की भी (छात्रों को) व्यवस्था करनी चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

महात्मा गांधी का जीवन-परिचय—भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के प्राण, विश्व-बन्धु महात्मा गांधी का नाम आज भारत के आबाल-वृद्ध सभी जानते हैं। उन्होंने जिस असहयोग आन्दोलन के द्वारा भारतीय स्वाधीनता का संग्राम छेड़ा, वह संसार के इतिहास में अभूतपूर्व है। विश्व चकित है कि उस दुर्बल शरीर में इतनी महान् आत्मा ज्योति किस प्रकार विकसित हो सकी, परन्तु भारतीयों के लिए तो सबसे अधिक दुःख का विषय यह है कि जिस महापुरुष को अंग्रेजी सरकार का दमन-चक्र स्पर्श भी न कर सका उसे देश के एक क्षुद्र मानव ने बिल्कुल समीप पहुँचकर गोली से मार दिया। आज वह साबरमती के सन्त इस संसार में नहीं हैं किन्तु युग-युग तक भारतीय जनता उससे अनुप्राणित होती रहेगी।

महात्मा गांधी का जन्म काठियावाड़ प्रान्त के पोरबन्दर (सुदामापुरी) नामक स्थान में 2 अक्टूबर सन् 1869 ई० को हुआ था। उस समम गांधीजी के पिता

श्री करमचन्दजी पोरबन्दर रियासत में दीवान थे। गांधीजी के पिता अत्यन्त सरल धर्मात्मा और निर्लोभी व्यक्ति थे। रियासत के उच्चपदस्थ कर्मचारी होते हुए भी उन्होंने कभी उत्कोच स्वीकार नहीं किया। महात्माजी की पूज्य माता पुतलीबाई भी आदर्श रमणी थीं। वे सच्चरित्र, धार्मिक, उपवास और व्रतादि करने वाली, गृहकार्य में कुशल माता थीं। माता-पिता के यही गुण महात्माजी में आगे चल कर विशेष रूप से विकसित हुए, इसमें सन्देह नहीं।

महात्माजी की प्रारम्भिक शिक्षा में एक विशेष बात निर्विवाद रूप से यह थी कि अन्य विद्यार्थियों की भांति वे असत्य-भाषी न थे। यदि कोई कार्य वे न कर पाते थे तो दण्ड से भयभीत न होकर, उसके सम्बन्ध में सत्य कह दिया करते थे। वैसे वे पढ़ने-लिखने में इस अवस्था में अधिक तेज न थे। पोरबन्दर से उनके पिता ने उन्हें राजकोट भेज दिया। वहाँ वे एक पाठशाला में भरती हो गए। इसी काल में उन्होंने 'श्रवण-पितृ-भक्ति' नाटक पढ़ा और 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक देखा। महात्माजी ने उसी समय शिक्षा ग्रहण की कि माता-पिता की सेवा करना और सत्य पर दृढ़ रहना प्रत्येक बालक का कर्त्तव्य है, जिसे पालन करने का मैं भी प्राणपण से प्रयत्न करूँगा। महात्माजी की महानता का रहस्य उनके एक इसी सद्गुण में निहित है कि वे किसी बात को पढ़कर उस पर मनन भी करते थे और तदनुकुल आचरण करने का व्रत भी ले लेते थे।

विद्यार्थी-जीवन में ही 13 वर्ष की अपरिपक्व अवस्था में महात्माजी का विवाह, उनके पिता ने सामाजिक रूढ़ियों के अनुसार कर दिया दिया। इस समय गांधीजी हाई स्कूल में पढ़ते थे। सदाचारी होने के कारण वे अपने सहपाठियों और मित्रों के प्रीतिपात्र थे। पढ़ने-लिखने में भी उन्होंने अब पर्याप्त उन्नति कर ली थी। वे अपनी 'आत्मकथा' से खेद के साथ स्वीकार करते हैं कि वे खेल-कूद में भाग न लेते थे, जिसका उन्हें आजीवन दुःख रहा। यद्यपि गांधीजी ने खेल-कूद में भाग न लिया तथापि उनका स्वास्थ्य वृद्धावस्था तक अच्छा ही रहा, क्योंकि वे सदाचारी रहे थे और आजीवन खुली हवा में भ्रमण करने नियमपूर्वक जाते रहे।

यद्यपि महात्माजी किशोरावस्था में भी सदाचारशील थे, तो भी कुसंग के कुप्रभाव से न वच सके। अध्ययन काल में उन्हें कुछ ऐसे साथी मिल ही गए जिनके साथ उन्होंने पाँच-छह बार मांसाहार भी किया। ऐसा वे अत्यन्त गुप्त रूप से करते थे। अन्त में उन्हें अपने आचरण पर लज्जा हुई, अपने माता-पिता से छिपाकर मांसाहार करने के कारण वे दुःखी हुए और उन्होंने सदा के लिए उसे छोड़ दिया। विवाह के कुछ दिन बाद वे सिगरेट भी पीने लगे थे, किन्तु माता-पिता की अगाध भक्ति ने यहाँ भी उन्हें सहारा दिया और उन्होंने एक बार इस आदत को छोड़कर जीवन भर सिगरेट पीने वाले मन-चले युवकों का साथ नहीं किया। एक बार उन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता का कर्जा चुकता करने के लिए अपने हाथ के सोने के कड़े से एक तोला सोना भी निकाल कर वेच दिया था। अन्त में रह-रह कर उनके हृदय में इस अनर्थ के लिए घोर वेदना होने लगी। उन्होंने एक पत्र लिख कर सारी बातें अपने पिता को प्रकट कर दीं, और क्षमा-याचना

की पिता ने पुत्र की महत्ता को पहचाना, उनकी आंखों से आंसू टपकने लगे और उन्होंने गांधीजी को शुद्ध अन्त:करण से आशीर्वाद देकर उनका अपराध क्षमा कर दिया।

पोरबन्दर रियासत की दीवानगिरी उनके परिवार में पीढ़ियों से चली आ रही थी। उस पद को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि महात्माजी विलायत जाकर शिक्षा प्राप्त करें। परन्तु महात्माजी की आर्थिक अवस्था ऐसी न थी कि वे विलायत यात्रा कर सकें। बड़ी कठिनाई से उनके ज्येष्ठ भ्राता ने रुपये की व्यवस्था की और वे इंगलैण्ड जाने की तैयार करने लगे। गांधीजी की माता पुतलीबाई ने इंग्लैण्ड यात्रा करते समय उनसे प्रतिज्ञा ले ली थी कि वे वहां मांसाहार न करेंगे, शराब न पियेंगे तथा अन्य किसी दुर्व्यसन में लिप्त न होंगे। महात्माजी ने इस प्रतिज्ञा का इंगलैण्ड में अक्षरश: पालन किया।

सिद्धान्त रूप में, वे सब धर्मों का समान रूप से आदर करते थे और उनकी दृष्टि में जैन, ईसाई और फारसी, सभी धर्म मानव-कल्याण को लेकर चलने वाले धर्म थे। वे किसी धर्म के देवताओं की निन्दा न करते थे और न सुनते थे। तीन वर्ष विलायत में रह कर उन्होंने बैरिस्टरी पास की और वे स्वदेश लौटे।

महात्माजी ने बम्बई में रहकर वकालत प्रारम्भ की किन्तु वे अपनी संकोच और लज्जाशील प्रकृति के कारण असफल वकील सिद्ध हुए। निराश होकर उन्होंने किसी पाठशाला में अध्यापन कार्य करना चाहा, किन्तु दुर्भाग्यवश उनकी कहीं नियुक्ति न हो सकी। अन्ततोगत्वा राजकोट में आकर अर्जी, दावा लिखने का कार्य करने लगे जिससे उन्हें लगभग 300 रु० प्रति मास की आय होने लगी। इसी अवसर पर उनका पोर-बन्दर के अंग्रेज पोलिटिकल ऐजेण्ट से झगड़ा हो गया, जिससे, वे एक पूर्व परिचय के आधार पर एक अंग्रेज की सिफारिश लेकर मिलने गये थे। उसने गांधीजी को बंगले से बाहर निकलवा दिया। अब तो गांधीजी को राजकोट में रह कर वकालत करना भी असंभव हो गया।

इसी समय उन्हें दक्षिण अफ्रीका से एक अभियोग में कार्यवाही करने का निमन्त्रण प्राप्त हुआ। वेतन भी अच्छा था, अत: गांधीजी ने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया और सन् 1893 ई० के अप्रैल मास में वे दक्षिण अफ्रीका को रवाना हुए। मई में ये नैटाल के डरबन बन्दरगाह पर उतरे। वहां के एक धनीमानी सेठ अब्दुल्ला के यहां वे अतिथि बन कर रहे। महात्माजी ने अल्पकाल में ही वहां यह अनुभव किया कि अफ्रीका-निवासी भारतीयों का जीवन बड़ा संकटमय और अपमानपूर्ण है। अभी अफ्रीका में आये हुए महात्माजी को केवल तीन दिन ही हुए थे कि उन्हें सेठ अब्दुल्ला डरबन न्यायालय दिखलाने ले गए। न्यायाधीश ने उन्हें बड़ी कड़ी दृष्टि से देखा और अपनी पगड़ी उतारने को कहा। भारतीयों के लिए वहां शिष्टाचार निर्वाह का यह साधारण नियम था। गांधीजी ने निष्कारण पगड़ी उतारने से इन्कार कर दिया, परिणामत: उन्हें न्यायालय से बाहर निकलना पड़ा। इसके विरुद्ध उन्होंने समाचार-पत्रों में कुछ लेख भी लिखे। लोगों में प्रथम बार गांधीजी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। उन्होंने समझा कि यह दुबला-

पतला भारतीय बैरिस्टर कुछ स्वाभिमान भी रखता है।

कुछ समय के पश्चात् एक अन्य अभियोग में कार्यवाही करने के लिए सेठ अब्दुल्ला ने उन्हें प्रिटोरिया भेजा। वे प्रथम श्रेणी के यात्री थे। रात को 9 बजे गाड़ी नैटाल की राजधानी मेरीत्सवर्ग पहुंची। उसी समय एक गोरा यात्री भी उस डिब्बे में यात्रा के लिए प्रविष्ट हुआ। उसने एक भारतीय को इस प्रकार सम्मानपूर्वक यात्रा करते देख अपना अपमान समझा। उसने स्टेशन के अधिकारियों से स्थान रिक्त कराने के लिए कहा। जब गांधीजी ने अधिकारियों की बात न मानी तो एक पुलिस के सिपाही ने उन्हें धक्का देकर नीचे उतार दिया, उनका सामान भी फेंक दिया गया। गांधीजी रात-भर शीत में ठिठुरते वेटिंग रूम में बैठे रहे। गांधीजी ने रेलवे के उच्च अधिकारियों को तार द्वारा इस दुर्घटना की सूचना दी किन्तु कोई परिणाम न निकला। आगे चलकर जब गांधीजी चार्ल्स टाउन पर उतरे तो वहाँ भी उन्हें एक कटु अनुभव हुआ। वहाँ के एक अंग्रेज कोचवान ने गांधीजी का अकारण अपमान किया और उन्हें पीटा। इस प्रकार निरन्तर अपमानित होकर गांधीजी की आहत आत्मा विद्रोही बन बैठी।

इसी समय भारतीय श्रमिकों पर अफ्रीका की सरकार के द्वारा 25 पौण्ड प्रतिवर्ष कर लगाया गया। भारतीय सरकार के सम्मुख जब यह नियम आया तो उसने उक्त कर को घटा कर 3 पौण्ड प्रतिवर्ष कर दिया, किन्तु यह भी अन्याय था। गांधीजी ने नैटाल की भारतीय कांग्रेस की ओर से इसका विरोध किया और श्रमिक वर्ग में भी इसके विरुद्ध प्रचार करने लगे। इस प्रकार प्रथम बार गांधीजी सार्वजनिक नेता के रूप में आए। इस समय वे विचार-विमर्श करने के लिए भारत में आकर कई भारतीय नेताओं से भी मिले। इस प्रकार वे अपना निश्चित मत बनाकर फिर दक्षिण अफ्रीका जाने की तैयारी करने लगे।

गांधीजी सपरिवार अफ्रीका को रवाना हुए, किन्तु गोरी जनता उनसे अत्यधिक आतंकित हो गई थी, वह नहीं चाहती थी कि गांधीजी आवें। अत: प्रथम तो उन्होंने उनके मार्ग में ही बाधा डाल दी, किन्तु जब वे असफल हुए तो अफ्रीका में उन्होंने गांधीजी को खूब पीटा। यह दुर्घटना अखबार में छपी तो इंगलैण्ड की सरकार के प्रधानमन्त्री श्री चैम्बरलेन ने नैटाल को तार दिया कि इस दुर्घटना की जाँच की जावे और अपराधियों को दण्डित किया जाय। किन्तु गांधीजी ने उन पर किसी प्रकार का अभियोग चलाना अस्वीकार कर दिया। गांधीजी के शत्रु उनकी इस क्षमाशीलता के कारण अपने कुकृत्यों पर लज्जित हुए। इस प्रकार महात्मा गांधीजी ने प्रथम बार संसार के सम्मुख प्रेम और क्षमाशीलता का एक विचित्र उदाहरण रखा।

कुछ काल के पश्चात् अफ्रीका में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध वहाँ के बोअर लोगों ने विद्रोह किया। युद्ध के अवसर पर भारतीयों की एक टुकड़ी लेकर गांधीजी आहतों की सेवा करने लगे। उन्होंने घायल अंग्रेजों की सब प्रकार से मदद की। इसका प्रभाव उन पर बहुत पड़ा। गांधीजी एक बार फिर प्रवासी भारतीयों के प्रीतिपात्र बनकर स्वदेश लौटे।

किन्तु गांधीजी को एक बार फिर अफ्रीका में जाकर सत्याग्रह आन्दोलन करना पड़ा। यह सत्याग्रह आन्दोलन संसार के इतिहास में विचित्र था। एक ओर प्यारे प्राणों की बलि देकर भी काले कानूनों को न मानने के दृढ़ प्रतिज्ञ भारतीय थे और दूसरी ओर नौकरशाही का दमन-चक्र। सहस्रों भारतीय संगठित होकर इस आन्दोलन में भाग लेने लगे। सरकार ने निरीह भारतीयों पर गोलियाँ बरसाईं और अनेक प्रकार की घोर यन्त्रणाएँ दीं। महात्माजी और उनकी धर्मपत्नी कस्तूरबा को प्रथम बार जेल जाना पड़ा। उन्हें भी बन्दी जीवन में तरह-तरह की यातनाएँ दी गईं किन्तु अन्त में इतनी बड़ी सुसंगठित शक्ति के आगे सरकार को झुकना पड़ा। महात्माजी के साथ एक समझौता हुआ जिसमें प्रवासी भारतीयों के कष्टों का कुछ शासन किया गया। इस सत्याग्रह में गांधीजी के साथ कुछ भलेमानस गोरे भी थे।

दक्षिण अफ्रीका में शान्ति हो जाने पर गांधीजी भारत आए। बम्बई में उनका शानदार स्वागत हुआ। फिर बे पूना पहुँचकर गोखले जी के पास रहने लगे। इसी समय पूना से राजकोट जाते समय उन्होंने सुना कि वीरम गाँव की जनता बड़े कष्ट में है। वे इस सम्बन्ध में वाइसराय से मिले और उनके कष्टों का निवारण हो गया। महात्मा जी का भारत में यह सर्वप्रथम सार्वजनिक कार्य था।

इसके पश्चात् महात्मा जी एक के बाद एक सार्वजनिक कार्य करते गये। चम्पारन में पहुँचकर उन्होंने देखा कि वहाँ के गोरे भूस्वामी कृषकों को बड़ा कष्ट देते हैं। उन्होंने वहाँ के गोरों को समझाने का प्रयत्न किया किन्तु जब वे न माने तो महात्मा जी सत्याग्रह-आन्दोलन के लिए तैयार हो गए। पहले तो महात्मा जी को चम्पारन छोड़ने की आज्ञा मिली, किन्तु जब वे इस आज्ञा को भंग करने के लिए कटिबद्ध हो गए तो सरकार का साहस उन्हें बन्दी बनाने का न हुआ। अन्त में कृषकों का कष्ट हरण हुआ और वे प्राचीन नियम जिनके अनुसार कृषकों पर अत्याचार किया जाता था, रद्द कर दिये गये।

महात्मा जी ने अहमदाबाद मिलों के मजदूरों की वेतन-वृद्धि की भी माँग की। यद्यपि अहमदाबाद के कई मिल अधिकारियों के साथ उनका मित्रतापूर्ण सम्बन्ध था परन्तु सार्वजनिक कार्यों में व्यक्तिगत मैत्री के लिए कोई स्थान नहीं। जब महात्मा जी ने देखा कि अधिकारी लोग श्रमिक वर्ग की मनावोचित माँगों पर भी ध्यान नहीं देना चाहते तो उन्होंने मजदूरों को हड़ताल करने का परामर्श दिया। मजदूरों ने हड़ताल कर दी और लगभग दो सप्ताह तक दृढ़तापूर्वक अपनी माँग पर डटे रहे, किन्तु अन्त में भूख-प्यास के दारुण कष्ट से श्रमिकों का सहारा टूटने लगा। इस पर गांधीजी ने स्वयं तीन दिन का उपवास किया। चौथे दिन समझौता हो गया, मजदूरों की अधिकांश माँगें स्वीकार कर ली गईं। महात्मा जी ने वहाँ एक मजदूर दल की स्थापना की जो आज भी उनके न्यायोचित अधिकारों की रक्षा करने में तत्पर है।

गांधीजी ने गुजरात के खेड़ा जिले में भी अकाल-पीड़ितों की रक्षा और सरकार को वहाँ आर्थिक सहायता देने को विवश किया। इस प्रकार भारत आते ही महात्मा जी

ने सत्याग्रह का प्रयोग भारतीय सरकार पर करना प्रारम्भ कर दिया। उन्हें निरन्तर सफलताएँ मिलती गईं और भारतीय उन्हें सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखने लगे।

प्रथम यूरोपीय महासमर की ज्वाला से सम्पूर्ण संसार त्रस्त था। महात्मा जी ने बड़े धैर्यपूर्वक विवेक के साथ जर्मन अत्याचारियों को पराजित करने में भारतीय सरकार की धन-जन से सहायता की। युद्ध की समाप्ति पर भारतीयों को उनकी सेवा के बदले रौलट एक्ट नामक एक काला कानून पुरस्कार रूप में मिला। इससे भारत में ब्रिटिश शासन और भी दृढ़ हो गया। महात्मा जी ने इसके विरोध में एक विज्ञप्ति निकाली और भारतीयों को सारे देश में हड़ताल करने, उपवास करने तथा सभाएँ और प्रदर्शन करने का आदेश दिया। सम्पूर्ण देश ने तदनुकूल आचरण किया। देश के सभी हिन्दू-मुसलमान नेता सभी गांधीजी के साथ थे। सरकार ने भी दमन करने में अपनी शक्ति का पूरा परिचय दिया। निरपराध प्रदर्शनों पर एवं सभाओं में गोलियाँ बरसा कर भीड़ को तितर-बितर किया गया। इसी समय पंजाब का सुप्रसिद्ध हत्याकाण्ड हुआ, जिसमें एकत्रित भीड़ पर जनरल-ओ-डायर ने बड़ी नृशंसता के साथ आक्रमण किया। निरीह और भोले बालक भून डाले गए, स्त्रियों और वृद्धों पर भीषण प्रहार हुए, और कांग्रेसी नेताओं को बन्दी बनाकर अनेक प्रकार के कष्ट दिये गये। महात्मा जी पंजाब की ओर चले तो उन्हें गिरफ्तार कर बम्बई छोड़ दिया गया। अन्त में गांधीजी ने रौलट-एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन को स्थगित कर दिया। जनता धन-जन की हानि और अपमानों की अभूतपूर्व वेदना से तड़प रही थी, महात्मा जी के इस नये आदेश से क्षुब्ध हो उठी। उसने अपने प्यारे नेता का तिरस्कार किया; परन्तु महात्मा जी ने तो केवल सरकार को भूल सुधार करने का अवसर भर दिया था।

महात्माजी ने जब देखा कि ब्रिटिश सरकार अत्याचार से विमुख नहीं होती तो उन्होंने सितम्बर सन् 1920 ई० में, कांग्रेस के एक विशेष अधिवेशन के अवसर पर, कलकत्ते में, असहयोग का प्रस्ताव रखा। यह प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत हुआ। इसके अनुसार महात्माजी ने एक विज्ञप्ति निकाली कि देशभक्त भारतीय ब्रिटिश सरकार के साथ किसी प्रकार का सहयोग न करें। वकील वकालत करना छोड़ दें। उपाधिधारी अपनी उपाधियाँ लौटा दें और स्कूल तथा कालेज बन्द कर दिये जायें। महात्माजी ने इसके साथ ही बारडोली से सत्याग्रह आरम्भ करने की सूचना सरकार को दे दी। महामना मालवीय जी ने प्रयत्न किया कि सरकार के साथ समझौता हो जाय, किन्तु वे असफल रहे।

बारडोली सत्याग्रह के आरम्भ होते ही, देश में सर्वत्र उपद्रव होने लगे। चौरी-चौरा ग्राम (गोरखपुर) में जनता की एक क्षुब्ध भीड़ ने बाईस पुलिस वालों को जीवित जला दिया। गांधीजी ने जनता की अनुशासनहीनता से खिन्न होकर सत्याग्रह स्थगित कर दिया, जिससे एक बार फिर उनके विरुद्ध वातावरण की सृष्टि हुई, किन्तु महात्मा जी पर्वत के समान अटल थे। इस प्रकार आन्दोलन स्थगित होने पर सरकार ने उन्हें बन्दी बना लिया और उन्हें इस बार छः वर्ष के लिए कारावास भेज दिया।

सन् 1924 ई० में, गांधीजी के पेट में फोड़ा हुआ। सरकार ने भयभीत होकर उन्हें कारावास से मुक्त कर दिया। बाहर आकर उन्होंने देखा कि अंग्रेज महाप्रभुओं की भेद-नीति के कारण देश में सर्वत्र साम्प्रदायिक उपद्रव हो रहे हैं। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयत्न में अपने प्राणों की बाजी लगा दी और 21 दिन का उपवास किया। देश में सर्वत्र हिन्दू-मुसलमान गले मिलने लगे।

सितम्बर सन् 1924 में गांधीजी, वेलग्राम में कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उन्होंने सम्पूर्ण देश का दौरा किया। उसी वर्ष कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता चितरंजनदास का स्वर्गवास हुआ। गांधीजी ने उनका स्मारक बनवाने के लिए दस लाख रुपये की राशि एकत्रित की।

लगभग 6 वर्ष तक मौन रहने के बाद, साबरमती का यह सन्त अब की बार नमक कानून तोड़ने को सन् 1930 ई० में बड़े ही प्रभावशाली रूप में बाहर निकला। कांग्रेस ने इस वर्ष पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया। गांधीजी ने वायसराय के पास 11 शर्तें लिखकर भेज दीं। एक साल के सत्याग्रह के बाद, गांधी-इरविन समझौता हुआ, जिसके अनुसार भारतीय नेताओं को इंगलैण्ड में गोलमेज संभा में आमंत्रित किया गया। भारत के बड़े-बड़े नेता गोलमेज कान्फ्रेंस में सम्मिलित हुए, उन्होंने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव सरकार के सम्मुख रखा। किन्तु गांधीजी को निराश होना पड़ा। वे इंगलैण्ड से भारत लौट आए और पुनः सत्याग्रह का विचार करने लगे। इस समय सरकार ने भीषण दमन किया और गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया।

जेल से मुक्त होकर महात्मा जी ने देखा कि सरकार भारतीय हिन्दू-समाज के अभिन्न अंग अछूतों को उनसे अलग करने का प्रयत्न कर रही है। सरकार ने एक नियम के अनुसार सवर्ण हिन्दूओं और अछूतों के अलग-अलग निर्वाचन स्वीकार किए थे। यह ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की एक महान चाल थी, जो महात्मा जी ने सफल न होने दी। उन्होंने आजीवन अनशन करने का निश्चय किया, त्योंही देश के कोने-कोने से अछूतों के असंख्य तार भारतीय सरकार के पास पहुंचे जिससे उन्होंने अपने को हिन्दू-समाज का ही अभिन्न अंग घोषित किया। महात्मा गांधीजी ने 21 दिन का उपवास किया। तदनन्तर उन्होंने सवर्ण देशवासी हिन्दुओं से अछूतोद्धार की अपील की। इस समय उन्होंने हरिजन संघ नामक संस्था की भी स्थापना की। इस प्रकार समाज की बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित कर अछूतों को उनके अधिकार दिलाने के प्रयत्न महात्माजी ने यावज्जीवन किए। वे स्वयं अपने को 'सबसे बड़ा भंगी' कहते थे। महात्माजी की अछूत-सेवा भारतीय इतिहास में चिरस्मणीय रहेगी। सन् 1942 में, द्वितीय महासमर के बाद महात्माजी ने फिर पूर्ण स्वाधीनता का संग्राम छेड़ा। यही उनके जीवन का अन्तिम महान् आन्दोलन था। यह 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके परिणामस्वरूप 9 अगस्त सन् 1942 को गांधीजी तथा देश के सभी सम्मानित नेता गिरफ्तार कर लिए गये। सरकार की इस अदूरदर्शी नीति से सर्वत्र अराजकता फैल गई। देश में महा भयानक क्रांति का सूत्रपात हुआ। सरकार ने इसका दोष महात्माजी के मत्थे मढ़ा। अपनी

निर्दोषता प्रमाणित करने के लिए महात्माजी ने आगाखाँ महल में एक लम्बा उपवास किया जिससे उनके प्राण संकट में पड़ गए।

अंग्रेज जान चुके थे कि इस प्रकार भारत पर मनमाना शासन नहीं लादा जा सकता, अस्तु उन्होंने भारत को छोड़ जाने का निश्चय कर लिया। 15 अगस्त 1947 को भारत की पूर्ण स्वाधीनता घोषित कर दी गई और इस प्रकार महात्माजी का चिर-स्वप्न सत्य हुआ।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

1. गांधीजी का भजन

वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीड़ पराई जाणे रे।
पर दुखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे ॥
सकल लोक माँ सहनु बन्दे, निन्दा न करे केनी रे।
वाच, काछ, मन निश्चल राखे, धन-धन जननी तेरी रे ॥
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झाले हाथ रे ॥
मोह माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मन माँ रे।
राम धाम सूँ ताली लागी, सकल तीर्थ तेरा मन माँ रे ॥
वण लोभी ने कपट रहित छे, काम क्रोध निर्वाया रे।
भणे नरसैया तेनु दरसन करताँ, कुल एको तेरे तार्यो रे ॥

2. गांधी बाबा को प्रणाम

धन्य-धन्य गांधी बाबा, प्रणाम तुम्हें हम करते हैं।
अफ्रीका में हिन्दुन पर, गोरों ने अत्याचार किया ॥
बापू ने अपने साहस से, जुल्मों से उद्धार किया।
निःस्वार्थ, त्याग व सेवा का, मान सभी जन करते हैं ॥
चीज विदेशी मत बरतो, बापू ने नारा बुलन्द किया।
देशी माल है धन अपना, सब ने इस पर अमल किया ॥
घर-घर में चरखे चलने लगे, जिससे निर्धन भी पनपते हैं।
धन्य-धन्य गांधी बाबा, प्रणाम तुम्हें हम करते हैं ॥
तेरी ताकत अंग्रेजों ने, झुक करके स्वीकार करी।
सत्य-अहिंसा शक्ति से, दुनिया की हर कौम डरी ॥
सूरज स्वराज्य का तू ही है, नमन तुझे सब करते हैं।
धन्य-धन्य गांधी बाबा, प्रणाम तुम्हें हम करते हैं ॥

(श्रीमती गुलेन्द्र दुबे)

3. युगपुरुष गांधी

चल पड़े जिधर दो डग, मग में,
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि,
पड़ गए कोटि दृग उसी ओर।

जिसके सिर पर निज धरा हाथ,
उसके सिर-रक्षक कोटि हाथ,
जिस पर निज मस्तक झुका दिया,
झुक गए उसी पर कोटि माथ।

हे कोटि चरण, हे कोटि बाहु !
हे कोटि रूप, हे कोटि नाम !
तुम एक मूर्ति, प्रति मूर्ति कोटि !
हे कोटि मूर्ति तुमको प्रणाम !

युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख,
युग हटा तुम्हारी भृकुटी देख,
तुम अचल मेखला बन भू की,
खींचते काल पर अमिट रेख।

तुम बोल उठे, युग बोल उठा,
तुम मौन बने, युग मौन बना,
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर,
युग कर्म जगा, युग धर्म तना।

युग-परिवर्तन युग संस्थापक,
युग संचालक, हे युगाधार,
युग-निर्माता, युग मूर्ति ! तुम्हें,
युग-युग तक युग का नमस्कार।

तुम युग-युग की रूढ़ियाँ तोड़,
रचते रहते नित नई सृष्टि,
उठतीं नव जीवन की नींवें,
ले नव चेतन की दिव्य दृष्टि।

धर्माडंबर के खण्डहर पर
कर पद-प्रहार, कर धराध्वस्त,
मानव का पावन मन्दिर
निर्माण कर रहे सृजनव्यस्त।

बढ़ते ही जाते दिग्विजयी :
गढ़ते तुम अपना रामराज,
आत्माहुति के मणिमाणिक से,
मढ़ते जननी का स्वर्णताज।

तुम काल चक्र के रक्त सने
दशनों को कर से पकड़ सुदृढ़,
मानव को दानव के मुँह से
ला रहे खींच बाहर बढ़ चढ़।

पिसती कराहती जगती के
प्राणों में भरते अभय दान,
अधमरे देखते हैं तुमको,
किसने आकर यह किया त्राण ?

दृढ़ चरण, सुदृढ़ कर संपुट से
तुम काल चक्र की चाल रोक,
नित महाकाल की छाती पर
लिखते करुणा से पुण्य श्लोक।

कँपता असत्य, कँपती मिथ्या,
बर्बरता कँपती है थर-थर।
कँपते सिंहासन, राजमुकुट
कँपते, खिसके आते भू पर।

हैं अस्त्र-शस्त्र कुण्ठित लुण्ठित,
सेनायें करतीं गृह-प्रयाण।
रण भेरी तेरी बजती है,
उठता है तेरा ध्वज निशान।

हे युग-द्रष्टा, हे युग-स्रष्टा,
पढ़ते कैसा यह मोक्ष मन्त्र।
इस राजतन्त्र के खण्डहर में,
उगता अभिनव भारत स्वतन्त्र।

4. साबरमती का सन्त

दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल,
साबरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल।
आँधी में भी जलती रही गांधी तेरी मशाल।
धरती पर लड़ी तूने अजब ढंग की लड़ाई,
दागी न कहीं तोप, न बन्दूक चलाई।

दुश्मन के किले पर न की तूने चढ़ाई;
वाह रे फकीर खूब कारामात दिखाई।
चुटकी में दिया दुश्मन को देश से निकाल,
शतरंज बिछा कर बैठा था जमाना।
लगता था मुश्किल है फिरंगी को भगाना,
टक्कर थी बड़े जोर की दुश्मन था दाना।
पर तू भी था बापू उस्ताद पुराना।।
मारा वो कसके दाव उल्टी सभी की चाल। साबरमती···

जब-जब बिगुल बजा जवान चल पड़े,
मजदूर चल पड़े किसान चल पड़े।
हिन्दू मुसलमान सिख पठान चल पड़े,
कदमों पे कोटि-कोटि प्रणाम चल पड़े।
फूलों की सेज छोड़कर चल पड़े जवाहरलाल,
मन में थी अहिंसा की लगन तन पे थी लँगोटी
लाखों में लिए घूमता था सत्य की सोटी,
देखने में थी हस्ती तेरी छोटी।
लेकिन तुमसे झुकती थी हिमालय की भी चोटी।।

दुनिया में था तू बेमिसाल,
जग से कोई जिया है, तो बापू ही जिया,
तूने वतन की राह परसब कुछ लुटा दिया।।
माँगा न तख्त ताज ही लिया,
अमृत दिया सबको खुद जहर पी लिया।
जिस दिन तेरी चिता जली रोया था महाकाल।।

5. धरती पर था हुआ देव का एक नया अवतार

(1)

बच्चों ! बहुत से वर्षों पहले, एक सूर्य चमका था,
पोरबन्दर के गांधी कुल, एक चाँद धमका था।
सहसा हुई ज्योति भारत में, आशा के दीपक की,
दूर हुई थी उदासीनता, भारत माँ के मुख की।।

सदियों से शोषित जन-जन के मन में चमकी आशा,
आजादी को पाने की उनमें जाग्रत हुई नव अभिलाषा।
बच्चों ! बजने लगे हृदय में आशा के मृदु तार,
धरती पर था हुआ देव का नया अवतार।।

(2)

अपने बालपने में ही, बापू ने जोड़ा पाया,
'कस्तूरी गुडिया' ने जिसका वर्षों साथ निभाया।
होकर दसवीं पास विलायत कूच कर गया बापू,
बैरिस्टर हो आये अपने घर पर फिर से बापू ॥
जात-पाँत वालों ने इस पर काफी शोर मचाया,
तोड़े बन्धन जात-पाँत के उसे न बन्धन भाया,
खोली उसने भवसागर में जीवन की पतवार,
धरती पर था हुआ देव का एक नया अवतार।

(3)

अफ्रीका में पहुँचा बापू एक नौकरी लेकर,
वहाँ मानवी जाते थे, निज स्वाभिमान को खोकर।
शत-सहस्र काले पुरुषों को रोते वहाँ निहारा,
देखा उसने उन लोगों का कोई नहीं सहारा ॥
सहसा ही करुणा की उसमें फूट गई द्रुत धारा,
स्वयं प्रतिज्ञाबद्ध हो गया, जैसे हो ध्रुवतारा।
मुक्त करूँगा मैं मानव को, यह जीवन का सार,
धरती पर था हुआ देव का एक नया अवतार ॥

(4)

लड़ा स्वयं वर्षों तक बापू, रंग का भेद मिटाने,
सड़ा जेल में, नर से नर को सब अधिकार दिलाने।
अपमानित भी हुआ, मगर कब उसने हिम्मत छोड़ी,
पिटा मगर कब कायर बनकर 'वीर प्रतिज्ञा' तोड़ी ॥
उसने आखिर उन कालों के जीवन सुखद बनाये,
अफ्रीका से लौट, देश में अपने बापू आये।
यही देश के भव्य भाग्य का था केवल आधार,
धरती पर था हुआ देव का एक नया अवतार ॥

(5)

भूखों की भूख बुलाने लगी, अरे ! बापू आओ,
शोषित का संसार बुलाने लगा, अरे ! बापू आओ।
दशों दिशाएँ आतुरता से बुला रही थीं 'उसको',
'गंगा-यमुना' भारत माँ की, बुला रही थीं उसको ॥
सभी ओर तब बढ़ा, आँख में भरकर बापू पानी,
बढ़ा दिये पीड़ित जनता हित, अपने कर कल्याणी।

बापू के उस नेह-सिन्धु का, मिला सभी को प्यार,
धरती पर था हुआ देव का एक नया अवतार ।।

(6)

उसने देखा 'पीसी जा रही है' भारत की किस्मत,
सहते हैं अत्याचारों को, मूक और हो अवनत ।
कोटि-कोटि इन्सानों को, शासन का चक्र कुचलता,
मृत्यु नाचती है चेहरों पर, छाई गहन विकलता ।।
देखा गया न उससे बच्चो ! भारत का यह हाल,
परदेशी के हाथों नर का यों पिसना बेहाल ।
आग भरी आँखों से, उसने तब की थी ललकार,
धरती पर था हुआ देव का एक नया अवतार ।।

(7)

फिर तो उसने विद्रोह का ऐसा शंख बजाया,
तख्त उलटने अंग्रेजों का ऐसा साज सजाया ।
देने उसका साथ स्वयं तूफान आ गये भू पर,
देने उसका साथ प्रलय का काल आ गया भू पर ।।
मेघ-गर्जना के समान तब जनता गर्जी भाई,
अंग्रेजों पर प्रलय-मेघ सी तब यह जनता छाई ।
काँपा दुश्मन, यह थी बच्चों ! बापू की हुंकार,
धरती पर था हुआ देव का एक नया अवतार ।।

(8)

याद रखो उसके इस रण में कुछ भी शस्त्र नहीं थे,
खाली थे सब हाथ, हृदय में भी कुछ भेद नही थे ।
थी केवल तलवार सत्य की जिससे बापू जीते,
थी केवल बस ढाल शान्ति की, जिससे बापू जीते ।।
मौन और उपवास तोप से बढ़कर बाजी खेले,
आघातों को धीर व्रती ने हँसते-हँसते झेले ।
द्रोणाचार्य से कर्मवीर पर विफल हुए सब वार,
धरती पर था हुआ देव का एक नया अवतार ।।

(9)

जीता 'सत्य' अन्त में लाखों आघातों को सहकर,
आखिर विजय 'शान्ति' ने पायी अपना सब कुछ खोकर ।
टूटे आखिर माँ के कर के सदियों के कटु-बन्धन'
यह बापू का चर्खा ही था, जो लाया परिवर्तन ।।

बुझी आग शोषण की, काले शासन की वह ज्वाला,
गिरी दीवारें परदेशी की, नूतन हुआ उजाला।
चमका सूरज आजादी का, भारत में साकार,
धरती पर था हुआ देव का एक नया अवतार॥

(10)

उसने हिन्दू-मुसलमान का बिल्कुल भेद मिटाया,
ठुकराये हरिजन को, उसने फिर से गले लगाया।
आजादी के पीछे मजहब की सुलगी थी ज्वाला,
बच्चो ! भारत की छाती पर चिता जली विकराला॥

बापू ने बढ़कर के बच्चो ! लपटों को पी डाला,
फिर से हिन्दू-मुसलमान के, अन्तर को सी डाला।
हिन्दू-मुसलिम उसे दीखते, 'प्रभु' के ही आकार,
धरती पर था हुआ देव का एक नया अवतार॥

(11)

छिपा अचानक ही, वह 'सूरज' दे प्रकाश वसुधा को,
दीप हुआ निर्वाण अचानक यहाँ मिटा कर तम को।
छोड़ विश्व की इस सीमा को चला गया वह योगी,
मिटती माँ को रामबाण से जिला गया वह जोगी॥

बच्चो ! उसको नमन करो वह अपना राष्ट्र-पिता था,
करो आरती उसकी 'जय हे भारत भाग्य-विधाता'।
पा करके उस देव-दूत को, धन्य हुआ संसार,
धरती पर था हुआ देव का एक नया अवतार॥

शास्त्री-जयन्ती : 2 अक्टूबर

उत्सव की तैयारी

2 अक्टूबर के दिन गांधी-जयन्ती के साथ शास्त्री-जयन्ती मनाने की भी व्यवस्था की जाती है। अतः यह संयोजक पर निर्भर करता है कि वह समय-निर्धारण व सभा-व्यवस्था किस प्रकार आयोजित करे। शास्त्री के कार्य व व्यक्तित्व पर विचार व्यक्त के लिए विद्वानों को आमन्त्रित करना चाहिए। उनके समय की उपलब्धियों को विस्तार से समस्त छात्रों के सामने प्रस्तुत करना चाहिये। छात्रों को भी निर्देश देना चाहिये जिससे शास्त्रीजी के प्रेरक प्रसंगों की चर्चा करें एवं उसे जीवन के व्यवहार में स्वीकार करें।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

यह युग ऐसा युग था जब राष्ट्रीय चेतना की लहर सारे भारत में फैल रही थी। युवा पीढ़ी ने समस्त सुख-सुविधाओं को त्याग कर देश-सेवा का व्रत लिया था। आजादी की इस लहर से कोई भी नहीं बचा। शास्त्री बचपन से ही आजादी के रंग में रंगे हुए थे और उन्होंने अपना सारा जीवन देश के लिए समर्पित कर दिया।

जीवन-परिचय—लालबहादुर शास्त्री का जन्म 2 अक्टूबर 1904 ई० को मुगलसराय में हुआ। इनके पिता श्री शारदाप्रसाद एक साधारण अध्यापक थे। जब ये डेढ़ वर्ष के थे तो इनके पिता का देहान्त हो गया। इनकी माता रामदुलारी देवी ने इनका पालन-पोषण किया। बचपन में इन्हें 'नन्हे' नाम से ही घर में पुकारा जाता था। ये बचपन से ही कठोर परिश्रमी एवं धुनी व्यक्ति थे। वे छठी कक्षा पास करके आगे पढ़ने के लिए बनारस गये। वहीं उनके मन में राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ।

इन्होंने 16 वर्ष की अवस्था में ही राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। इन्हें शीघ्र ही वन्दी बना लिया गया और इनके एक नये जीवन का सूत्रपात हुआ।

जेल से छूटने के बाद उन्होंने 'काशी विद्यापीठ' में शिक्षा ग्रहण की। इस विद्यापीठ से उन्हें सन् 1925 में शास्त्री की उपाधि मिली और उसी दिन 'शास्त्रीजी'

के नाम से प्रसिद्ध हुए। ललितादेवी से इनका विवाह 1927 ई० में हुआ। ललिताजी धर्मपरायण आदर्श हिन्दू नारी हैं। शास्त्री का अधिकांश समय जेल में ही बीता जहां उन्होंने अपना समय गहन अध्ययन में लगाया। वे अपने सिद्धान्तों के पक्के थे और सभी प्रकार के संकटों को पूर्ण शान्ति से सहन करते थे। अविचल इच्छाशक्ति और आत्म-संयम का ऐसा उदाहरण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

1951 में इन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का महामंत्री बनाया गया। सन् 1952 में शास्त्री को भारत का रेलमंत्री नियुक्त किया गया। सन् 1956 में भीषण रेल दुर्घटना के कारण इन्होंने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। 1957 में उन्हें संचार एवं परिवहन मंत्री नियुक्त किया गया। सन् 1958 में शास्त्री वाणिज्य और उद्योग मंत्री बने। जनवरी 1964 में निर्विभागीय मंत्री का पद ग्रहण किया। 9 जून 1964 को उन्होंने प्रधानमंत्री का पद ग्रहण किया। 15 अगस्त 1965 में राष्ट्र के नाम संदेश देते हुए उन्होंने कहा, "हम रहें या न रहें, लेकिन यह तिरंगा झण्डा रहना चाहिए और मुझे विश्वास है कि यह झण्डा रहेगा। हम और आप रहें या न रहें, लेकिन भारत का सिर ऊँचा रहेगा।"

पाकिस्तान ने जब भारत पर आक्रमण किया तो शास्त्रीजी ने अपनी सूझ-बूझ से उसे पराजित कर दिया। भारत की इस विजय ने विश्व में भारत की शान स्थापित कर दी। शास्त्री की नीति व साहस की सभी क्षेत्रों में प्रशंसा की जाने लगी। 'जय जवान जय किसान' शास्त्री का नारा था और यही वह रहस्य था जिससे वे अपनी नीतियों को क्रियान्वित करने में सफल रहे। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इनसे शान्ति और युद्ध-विराम की अपील की जिसे इन्होंने आदर्श पुरुष के रूप में स्वीकार कर लिया।

शास्त्री ने ताशकंद में पाकिस्तान के साथ शान्ति की सन्धि पर 10 जनवरी 1066 को हस्ताक्षर करके सारे विश्व के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया। कुछ घंटों बाद अचानक हृदयगति रुक जाने के कारण शास्त्रीजी का देहान्त हो गया। 18 महीने के छोटे शासनकाल में शास्त्री ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया।

जीवन-दर्शन—शास्त्री बचपन से ही जीवन की विषम परिस्थितियों से संघर्ष करते रहे। अर्थाभाव को इन्होंने साहस से सहन किया। पैसों के अभाव में बचपन में गंगा नदी को तैर कर पार किया। उन्होंने निजी स्वार्थ को छोड़कर राष्ट्र की सेवा में जीवन समर्पित कर दिया। 'निष्काम कर्म' में उनकी पूर्ण आस्था थी। इनमें सरलता, सहजता, सादगी, ईमानदारी, सेवा और त्याग की भावना थी। शास्त्री कठोर परिश्रमी एवं चिंतनशील पुरुष थे। दहेज-प्रथा का उन्होंने प्रारम्भ से ही विरोध किया। साहित्य के प्रति इन्हें विशेष रुचि थी। शास्त्री स्वाभिमानी थे। इन्होंने देश के उत्थान के लिए सदैव प्रयत्न किया। रेल-मंत्री पद से त्याग-पत्र देकर उन्होंने सभी के सामने आदर्श प्रस्तुत किया। विभिन्न पदों पर रह इन्होंने जो कार्य किये हैं वे प्रशंसनीय हैं। उनकी छोटी-सी काया में विशाल आत्मा का निवास था।

प्रेरणा—शास्त्री का जीवन सभी के लिए प्रेरणा का स्रोत है। उन्होंने जीवन-भर विषम परिस्थितियों से संघर्ष किया और अपने आत्मविश्वास एवं दृढ़ निश्चय शक्ति से उसमें सफलता प्राप्त की। शास्त्रीजी देश-प्रेम को सर्वोपरि समझते थे। वे अपने सिद्धान्तों का जीवन-पर्यन्त निर्वाह करते रहे। सादा जीवन और उच्च विचार उनके जीवन का मूल मंत्र था। वे जनता के सच्चे प्रतिनिधि थे और सेवा की भावना से ही कार्य करते थे। उनको पद का मोह कभी नहीं रहा। अपने कर्तव्य के प्रति वे पूर्ण निष्ठावान थे। रेल-मंत्री के पद से त्यागपत्र देकर उन्होंने सभी राजनीतिज्ञों के सामने आदर्श प्रस्तुत किया था। अर्थाभाव उनकी सफलता में कभी भी बाधक नहीं हो सका। आज देश की युवा पीढ़ी को ऐसे महान पुरुषों से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए एवं जीवन में सफलता के लिए निरन्तर संघर्ष करना चाहिए।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

शास्त्री-जयन्ती

दो अक्टूबर उन्नीस सौ चार में, जन्म हुआ श्री लाल का।
छोटा-सा तन—हिया हिमालय, लालबहादुर लाल का॥

छोटी काया दूर गाँव था, पैदल आते-जाते थे।
सावन-भादों नदी पार कर, प्रतिदिन पढ़ने जाते थे॥
भारी बस्ता हालत खस्ता, पाँवों छाले पड़ जाते थे।
खुद पानी में सिर पर बस्ता नदी पार कर जाते थे॥

संघर्षों से रहा जूझता, जीवन प्यारे लाल का।
छोटा-सा तन—हिया हिमालय, लालबहादुर लाल का॥

लालबहादुर वीर बालक का भावी पथ प्रधान था।
संघर्षों ने पाला उसको, वह तपा हुआ इन्सान था॥
कर्त्तव्यनिष्ठ, कर्मठ, कर्मयोगी, निष्ठावान महान था।
मानवता, स्नेह का पुतला, सात्विक तपस्वी समान था॥

अमन चैन शान्ति का पुजारी, योगी लाल कमाल का।
छोटा-सा तन—हिया हिमालय, लालबहादुर लाल का॥

युग-निर्माता, भाग्य-विधाता, राष्ट्र-निर्माता था।
शौर्य-शक्ति का पुजारी, साक्षात् दुर्गा के समान था॥
शान्ति-दूत अहिंसा-पूजक, नर-शिरोमणि सुजान था।
सब धर्मों के मधुर मिलन का, ज्योतित दीप आह्वान था॥

कोटि-कोटि वन्दन अर्चन करूँ, मा भारती के लाल का।
छोटा-सा तन—हिया हिमालय, लालबहादुर लाल का॥

गाओ सभी

गाओ सभी ऐ प्यारो, देश अपना महान है।
लालबहादुर के सपनों का प्यारा जहान है।।

जय जवान ! जय किसान !!

नवल धवल है हिमगिरि, जिस पर हिम की वर्षा रहती है।
प्यारा देश हमारा है, जहाँ पावन गंगा बहती है।।
नारायण खुद नर बन आए, ऐसी पुनीत यह धरती है।
देवलोक यह भारत धरा, देवताओं की धरती है।।

कौन ऐसा देश है जो भारत से महान है ?
गोद में पला हुआ जिसके यह सारा जहान है ?

जय जवान ! जय किसान !!

मस्त पवन ने हमें निरन्तर हँस कर जीना सिखलाया।
लहराती सरिताओं ने नित, झूम के चलना सिखलाया।।
शस्य श्यामला भारत भू हम इस पर नित बलि जाते हैं।
कण-कण इसका पावन है हम शीश पै इसे चढ़ाते हैं।।

धर्मों का मधुर मिलन, यह भारत की पहचान है।
गोद में पला हुआ इसके, यह सारा जहान है।।

जय जवान ! जय किसान !!

सती सावित्री, सीता माता, अनसूया ने यहाँ जन्म लिया।
व्यास मुनि, ऋषि वाल्मीकि कवि कालिदास ने जन्म लिया।।
राम, कृष्ण, अर्जुन, भीम हुई लक्ष्मी-सी महारानी यहाँ।
ऋषि दधीचि, हरिश्चन्द्र, हुए भामाशाह से दानी यहाँ।।

ओ जननी भारत माँ ! तेरी यह कथा महान है।।
गोद में पला हुआ तेरे ही सारा जहान है।।

जय जवान ! जय किसान !!

शरद पूर्णिमा

उत्सव की तैयारी

शरद् उत्सव एक महत्त्वपूर्ण उत्सव है। इस दिन विद्यालय में शरद् उत्सव की महत्ता के बारे में चर्चा करनी चाहिए। शिक्षक बन्धु छात्रों को उत्सव के धार्मिक, सामाजिक, भौगोलिक व सांस्कृतिक पक्ष के सम्बन्ध में बतायें। इस दिन कवि-सम्मेलन का आयोजन किया जाय तो उत्तम रहता है। स्काउटिंग आदि द्वारा रात्रि-भ्रमण आदि का आयोजन भी किया जा सकता है।

इस दिन कवि-सम्मेलन का आयोजन भी किया जाना चाहिए तथा उत्सव हेतु रोचक एवं आनन्दकारी वातावरण तैयार करना चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

इस उत्सव का हमारे धर्म और संस्कृति से गहरा सम्बन्ध है। प्राचीन काल से सूर्य, चन्द्रमा और इन्द्र आदि को देवताओं के रूप में स्वीकार करके उनकी पूजा की जाती रही है। चन्द्रमा शांति एवं शीतलता का प्रतीक भी माना गया है। वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में चन्द्रमा के सम्बन्ध में अनेक प्रसंग एवं कथाएँ संकलित हैं, जिनसे लोक-विश्वास की जानकारी प्राप्त होती है।

चन्द्रमा अपने सौन्दर्य एवं निर्मलता के लिए साहित्यिक उपमाओं का आधार रहा है। संस्कृत साहित्य में चन्द्रमा एवं उससे सम्बन्धित साहित्य हमें विशद रूप में उपलब्ध होता है। कालिदास एवं अन्य संस्कृत कवियों की रचनाओं में चन्द्रमा एवं उसके विविध प्रभावों का भी वर्णन मिलता है। प्रकृति-वर्णन और उसका मानवीय मन पर प्रभाव चित्रित करने में संस्कृत कवियों को कमाल हासिल था।

चन्द्रमा के प्रति धार्मिक भावनाएँ भी उच्चकोटि की हैं। आज भी अनेक उत्सव एवं व्रत चन्द्रमा से सम्बन्धित किए जाते हैं और चन्द्रमा की पूजा करके नारियाँ अपनी मनोकामनाओं के पूर्ण होने की आशा करती हैं। चन्द्रमा प्रेम व पूजा का आधार रहा है।

शरद् पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा अपनी पूर्ण कलाओं के साथ-साथ अवतरित होता है। ऐसी मान्यता है कि इस दिन वह रात्रि में अमृत वर्षा करता है। विविध स्थानों पर

रात्रि-जागरणों का भी आयोजन किया जाता है और हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की जाती है।

शरद् पूर्णिमा ऋतु-परिवर्तन का प्रतीक है। इस दिन से वर्षा ऋतु की समाप्ति और शरद् का प्रारम्भ माना जाता है। इसका सम्वन्ध हमारे कृषक जीवन से बहुत गहरा है।

शरद् पूर्णिमा का त्यौहार एक महत्त्वपूर्ण त्यौहार है और इसे सभी क्षेत्रों में मनाया जाता है। बिना किसी भेद-भाव के सभी इस दिन उत्सव मनाते हैं।

आयोजन—उत्सव को सुव्यवस्थित ढंग से मनाना चाहिए। प्राचीन संस्कृत व हिन्दी कवियों के काव्य से उदाहरण छांटकर उनको सस्वर सभा में सुनाना चाहिए। शरद् के सम्वन्ध में लिखित कविताओं का वाचन भी कवि-सम्मेलन में करना चाहिए। रात्रि-भ्रमण का आयोजन भी करना चाहिए। विद्यालय स्तर पर और संगम स्तर पर भी इसे मनाया जा सकता है। इस दिन मीराँ जयन्ती भी मनायी जाती है।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

शरद्-पूर्णिमा

हर क्वार के सुदी पक्ष में, यह शरद् पूर्णिमा आती।
हर माता सन्तान की खातिर, मंगलमयी गीत गाती।।

स्नान और व्रत जितने हैं, इस दिन आरम्भ होते हैं।
धर्म कर्म माँ-बहनों के, इस दिन से गति पाते हैं।।
रात्रि को चन्द्रमा की किरणें, धरा पर अमृत बरसातीं।
हर क्वार सुदी पक्ष में, यह शरद् पूर्णिमा आती।।

चन्द्र धरा के निकट आकर, आत्मिक शीतलता देता है।
छत पर ठण्डी की खुई खीर में, अमृत भर देता है।।
खीर खाण्ड घृतमय भोजन से, आत्मिक शान्ति आती।
हर क्वार सुदी पक्ष में, यह शरद् पूर्णिमा आती।

पूर्णिमा का व्रत कर दिन में कहानी सुनते हैं।
कृष्ण-गोपी रासलीला की सुन्दर लीला करते हैं।।
शिव सुत कार्त्तिकेय की पूजा, सुख-शान्ति बरसाती।
हर क्वार सुदी पक्ष में, यह शरद् पूर्णिमा आती।।

हर क्वार सुदी पक्ष में, यह शरद् पूर्णिमा आती।
हर माता सन्तान की खातिर मंगलमयी गीत गाती।।

संयुक्त राष्ट्र दिवस : 24 अक्टूबर

उत्सव की तैयारी

अतीत के पृष्ठ उलटने पर ज्ञात होता है कि मानव सदैव से युद्धप्रिय रहा है। उसमें दो विरोधी भावनाएं एक साथ पनपती हैं। जहाँ प्रेम, दया, शान्ति की भावना मानव में स्वाभाविक है वहाँ संघर्ष, शत्रुता एवं लड़ाई-झगड़े की भावना का भी उसमें अभाव नहीं। मनुष्य के निजी झगड़े, राष्ट्रों के भीषण युद्ध—इसी भावना के परिणाम हैं किन्तु वह सदैव से शान्ति की स्थापना में प्रयत्नशील रहा है। मैत्रीपूर्ण जीवन के अतुल अह्लाद ने उसे सदा के लिए कलह का विरोध करने की प्रेरणा दी है।

इस उत्सव को अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव हेतु मनाना आवश्यक है तथा उत्सव में छात्रों को विज्ञान और विश्व की एकता पर जानकारी देनी चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

आज का युग युद्ध का युग है। बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों को निगल जाने के लिए आतुर बैठे हैं। विश्व के चारों ओर अशान्ति का आतंक छाया हुआ है। आज का सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन संघर्षों का केन्द्र बना हुआ है। युद्ध से अनन्त धन-जन-शक्ति का विनाश होता है, यह सभी जानते हैं और मानते भी हैं, परन्तु मानव की सवार्थलिप्सा उसे सब कुछ भुलाकर पथभ्रष्ट कर देती है।

विश्व-बन्धुत्व की भावना तथा मानवता का पुनीत सम्बन्ध गूलर के फूल हो गये हैं। इस प्रकार जब बड़े-बड़े युद्ध मानव को थका देते हैं तो वह शान्ति की खोज करने लगता है। महायुद्धों के पश्चात् शान्ति-संस्थाएं स्थापित करता है और यह प्रयत्न करता है कि भविष्य में युद्ध न हो। प्रथम महायुद्ध के भीषण संहार के पश्चात् 1919 में जिनेवा में 'लीग आफ नेशन्स' की स्थापना हुई किन्तु इस लीग आफ नेशन्स की अकाल-मृत्यु हो गई क्योंकि दूसरे महायुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ। इस द्वितीय महायुद्ध के भीषण नर-संहार को देखकर संसार की आँखें खुलीं और 26 जून, 1945 को फ्रांसिस्को में संयुक्त राष्ट्र-संघ की स्थापना हुई। संसार के 51 से अधिक देशों ने इस संघ की सदस्यता स्वीकार की। सबने यही स्वीकार किया कि हम आपसी झगड़ों को युद्ध द्वारा निश्चय न करके

संयुक्त राष्ट्र संघ में शान्तिपूर्ण वार्तालाप द्वारा सुलझाने को तैयार हैं। हम युद्ध का घोर विरोध करते हैं। युद्ध से समस्त विश्व को संयुक्त राष्ट्र संघ के रूप में मानो कोई शरण मिल गई हो। विश्व के देशों की सम्मिलित पंचायत का नाम ही संयुक्त राष्ट्र संघ रख दिया गया।

वर्तमान कार्य—संयुक्त राष्ट्र संघ इस समय एक सुसंगठित और शक्तिशाली संस्था है। इस समय सदस्यों की संख्या 154 है। संघ का उद्देश्य विश्व के सभी राष्ट्रों में पारस्परिक सहयोग, सहानुभूति, सद्भावना, सहिष्णुता और सम्वेदन की भावना की वृद्धि करना है। वह अपने उद्देश्यों में बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त कर चुका है। संयुक्त राष्ट्र संघ का कार्यक्षेत्र सर्वतोन्मुखी है और अधिक विस्तृत है। कोई भी राष्ट्र हो उसकी सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक, कृषि सम्बन्धी कोई भी लोकोपकारी कार्य हो, उसमें संघ पूरी दिलचस्पी से कार्य करता है। इसके कई अंग हैं। इसकी सबसे अधिक शक्तिशाली और प्रभुत्व-सम्पन्न सभा जनरल एसेम्बली है। किसी भी विषय में जनरल एसेम्बली का निर्णय अन्तिम समझा जाता है। वैसे इसका अधिवेशन वर्ष में एक बार होता है; परन्तु आवश्यकता पड़ने पर कभी भी बुलाया जा सकता है। सुरक्षा परिषद् भी एक महत्त्वपूर्ण शाखा है। इसका काम संसार में शान्ति रखना है। यदि कहीं भी आक्रमण होता है तो सुरक्षा परिषद् सामूहिक सुरक्षा के आधार पर उस आक्रमण का प्रतिरोध करती है। इसमें 15 सदस्य हैं, इनका अध्यक्ष भी क्रम से उन्हीं 15 सदस्यों में से चुना जाता है।

शाखायें—इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ की और भी अनेकों महत्त्वपूर्ण शाखायें हैं जिनमें विश्व बैंक, विश्व स्वास्थ्य संगठन, अन्न एवं कृषि संगठन, संयुक्त राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संगठन आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पिछड़े राष्ट्रों की आर्थिक सहायता के लिए विश्व बैंक से ऋण रूप में धनराशि प्राप्त की जा सकती है। ऐसे देशों के लिए विशेष औद्योगिक उन्नति हेतु कुशल वैज्ञानिक भेजे जाते हैं। स्वास्थ्य चिकित्सालय शिक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ विशेष रूप से प्रयत्न कर रहा है। संक्रामक भयानक रोगों को नष्ट करने के लिए औषधियों के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ मानव समाज की बहुमूल्य सेवा कर रहा है। अतर्राष्ट्रीय न्यायालय संसार के आपसी झगड़ों को समाप्त करके अपना अन्तिम निर्णय देता है। ट्रस्टीशिप कौंसिल पराजित राष्ट्रों की देखभाल करती है। इस कौंसिल का एक भाग न्यूयार्क में भी है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने विगत वर्षों में कई महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। उत्तर कोरिया के बन्धन ने दक्षिण कोरिया को मुक्त कराया। डच, इण्डोनेशिया, अरब यहूदियों, मिस्र के झगड़ों का बड़ी सरलतापूर्वक निर्णय किया है। अफ्रीका में भारतीयों के प्रति दुर्व्यवहार भी इसके द्वारा समाप्त किया गया। विश्व के अविकसित देशों को प्रगतिशील देशों के समक्ष बनाने के लिए निम्नलिखित संस्थायें महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं—

(1) इण्टरनेशनल एटामिक एनर्जी एजेन्सी

(2) इण्टरनेशनल लेबर ऑर्गेनाइजेशन

(3) फूड एण्ड एग्रीकल्चर आॅर्गनाईजेशन
(4) यूनाइटेड नेशन्स एजूकेशन साइण्टीफिक एण्ड कल्चरल आर्गनाइजेशन
(5) इण्टरनेशनल सर्विस एविएशन आर्गनाइजेशन
(6) वर्ल्ड हैल्थ आर्गनाइजेशन
(7) इण्टरनेशनल टेलीकम्युनिकेशन यूनियन
(8) वर्ल्ड मैटीरियलाजिकल आर्गनाइजेशन
(9) यूनिवरसल पोस्टल यूनियन

अकाल सहायता—इसके सिवाय जरूरतमन्द देशों के लिए तकनीकी महायता देने के लिए संघ के तत्त्वावधान में एक कोष की स्थापना की गई है जिससे अकाल, भूकम्प, बाढ़ आदि के समय सम्बन्धित देशों की सहायता की जाती है। उपर्युक्त संगठन के अतिरिक्त कुछ ऐसे संगठन भी हैं जो विशिष्ट प्रयोजनों से स्थाई तौर पर स्थापित किये गये हैं। इनमें यूनाइटेड नेशन्स चिल्डरेन फण्ड, हाईकमिश्नर्स फॉर रिफ्यूजीज़ तथा रिलीफ एण्ड वर्क्स ऐजेन्सी का नाम विशेष तौर से लिया जाता है।

अस्पृश्यता निवारण—मानव अधिकारों की समुचित मान्यता और प्रशस्ति के लिए संघ ने विशेष व्यवस्था रखी है। सन् 1948 में वृहत् सभा में इस विषय पर एक व्यापक प्रस्ताव पास किया गया जिसके अन्तर्गत विश्व के विभिन्न जातियों के बिना किसी भेद-भाव के मानवी अधिकारों एवं मूल-भूत स्वतन्त्रता के लिए शपथ ली गई थी। इस विश्वव्यापी घोषणा में नागरिक राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक तथा सांस्कृतिक सुरक्षा की बात कही गई थी। इस घोषणा को कानूनी रूप देने के लिए मानव अधिकार कमीशन द्वारा दो अन्तर्राष्ट्रीय मसविदे बनाये गये जो कि वृहत सभा के विचाराधीन हैं। इनमें से एक नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों तथा दूसरा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के सम्बन्ध में है, सदस्य राष्ट्रों की सरकारों द्वारा स्वीकार किये जाने पर इन प्रस्तावों को कानूनी रूप दे दिया जावेगा।

इसके अतिरिक्त राष्ट्र संघ स्त्रियों और बच्चों के अधिकारों को सुरक्षित करने के सम्बन्ध में प्रयत्न कर रहा है। स्त्रियों के राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए सन् 1954 में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बनाया गया था जिसे सन् 1964 तक 39 राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया है।

इसके अतिरिक्त 1963 में सब प्रकार के जाति सम्बन्धी भेद-भावों को दूर करने के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये गये हैं। इस सम्बन्ध में सबसे जटिल प्रश्न दक्षिण अफ्रीका में होने वाले जाति-भेद के सम्बन्ध में था। सन् 1952 से 1960 तक वृहत्सभा ने दक्षिणी अफ्रीका सरकार को अपनी नीति बदलने की अपील की; किन्तु दक्षिण अफ्रिका की सरकार यही कहती रही कि यह उसका निजी प्रश्न है। किन्तु सुरक्षा परिषद् ने यह सोच लिया यदि इस प्रश्न को यों ही छोड़ दिया जाय तो विश्व-शान्ति के लिए खतरा पैदा हो सकता है, अतः 1960 में निश्चयात्मक शब्दों में दक्षिण सरकार से इस जाति भेद की नीति को त्याग देने की अपील की।

बाद में 1962 में वृहत-सभा में एक प्रस्ताव पास हुआ जिसमें दक्षिण अफ्रीका की तत्सम्बन्धी सरकार की नीति की जोरदार भर्त्सना की गई और इस समस्या को हल करने का निश्चित सुझाव प्रस्तावित किया।

इसके अतिरिक्त ग्यारह सदस्यों की एक समिति बनाई गई जिसे स्थिति का अवलोकन करते रहने तथा इस सम्बन्ध में समय-समय पर सभा का निश्चित रूप से सूचित करते रहने का कार्य सौंपा। इसी समिति की रिपोर्ट के अनुसार सन् 1963 से सदस्य राष्ट्रों को यह सलाह दी कि वे दक्षिण अफ्रीका को कोई सामग्री न भेजें, यह प्रश्न अभी विचाराधीन है।

अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन भी महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इस कमीशन में 25 सदस्य हैं जो पाँच वर्ष के लिए चुने जाते हैं। सन् 1949 में स्थापित होने के बाद 15 अधिवेशन हो चुके हैं जिनमें विभिन्न विषयों पर अन्तर्राष्ट्रीय विधान बनाने का विचार किया गया। इसमें कुछ विषय तो स्वयं कमीशन ने चुने, शेष वृहत्-सभा तथा आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् द्वारा प्रेषित किये गये हैं। आजकल यह कमीशन संधियों तथा राज्यों के हस्तान्तरण एवं शासन के उत्तर दायित्वों के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय विधान बनाने में संलग्न है। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्य निःसन्देह सराहनीय हैं।

कर्त्तव्य—संयुक्त राष्ट्र संघ यदि निष्पक्ष होकर कार्य करता रहा तो वास्तव में विश्व का कल्याण होता रहेगा। परन्तु यह लक्ष्य कुछ सन्दिग्ध प्रतीत हो रहा है क्योंकि संसार इस समय पूंजीवादी और साम्यवादी गुटों में विभक्त हैं। दोनों पक्ष एक-दूसरे के विरोधी हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ में सदैव एक-दूसरे से टक्कर रहती है। संघ में जो प्रतिनिधि लिए जाते हैं वे जनसंख्या के आधार पर न होकर देशों के आधार पर लिए जाते हैं। इसलिए संयुक्त राष्ट्र संघ में अमेरिका के समर्थक देशों की संख्या अधिक है। वीटो के बल पर अमेरिका अपनी गलत बात भी मनवा लेता है। यदि यह गुटबन्दी समाप्त न हुई तो एक समय वह आयेगा कि संयुक्त राष्ट्र संघ एक दिन लीग ऑफ नेशन्स की तरह स्वयं समाप्त हो जावेगा।

परन्तु अब तक संयुक्त राष्ट्र संघ ने संसार को युद्ध की विभीषिकाओं से बचाकर सत्कार्य किया है। जब तक विश्व के भाग्याकाश पर युद्ध के काले जलद इठलाते हुए आये उससे तब-तब इस संघ ने अपने अद्वितीय कौशल और सद्प्रयत्नों से उन्हें दूर करके मानव जाति को विनाश के मुख में जाते-जाते बचा लिया। हमें विश्वास है कि संयुक्त राष्ट्र संघ इसी प्रकार मानव जाति की सेवा करता रहा तो विश्व-शान्ति स्थापित करने में समर्थ रहेगा। सम्भव है विश्व के महान् विचारकों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के सत्प्रयासों से एक दिन ऐसा भी आ सकेगा। जबकि विश्व के राष्ट्र परस्पर भाई-भाई की तरह व्यवहार करके एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहगामी हो सकेंगे।

सारांश—अन्त में आज के इस संयुक्त राष्ट्र दिवस 24 अक्टूबर को आपसे मेरा यही निवेदन है कि प्रायः 'वसुधैवः कुटुम्बकम्' की भावना को अपनावें। आज का देश, समाज परिवार, अशान्त है, वह सुखी जीवन व्यतीत करना चाहता है। मानव सुख को

महत्त्व देता जा रहा है। चारों ओर स्वार्थ की ज्वाला भड़क रही है। इस ज्वाला में समस्त विश्व दहक रहा है। मानवता ही महाज्वाला से संसार को बचा सकती है।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

गूंजे जय ध्वनि से आसमान, सब मानव-मानव हैं समान।
निज कौशल मति इच्छानुकूल, सब कर्म निरत हों भेद भूल।
बन्धुत्वभाव ही विश्व मूल, सब एक राष्ट्र के उपादान।
लोकोन्नति का हो खुला द्वार, पथ-प्रदर्शक सबका सदाचार।
हो मुक्त कर्म वाणी विचार, हो श्रेय प्रेय रे एक प्राण।
हो सहज स्नेह संस्कृत स्वभाव, उर में उमंग उत्साह चाव।
धन अन्न वस्त्र का मुक्त स्राव, हो विश्व जीवन महान।
सब श्रम उद्यम गौरव प्रधान, सब कर्मों का हो उचित मान।
सब कंठों में हो एक गान, मानव-मानव हैं सब समान।

कालिदास-जयन्ती

उत्सव की तैयारी

महाकवि कालिदास को कौन नहीं जानता ? इनका चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की सभा के नव-रत्नों में स्थान था। कहते हैं, ये माता सरस्वती की कृपा से मूर्ख से बहुत बड़े विद्वान और कवि बने थे। इनकी जयन्ती निम्न प्रकार मनानी चाहिए।

☐ उत्सव सभा में शिक्षकों द्वारा महाकवि के जीवन तथा काव्यों का परिचय दिया जाना चाहिए।

☐ माँ सरस्वती की वन्दना करनी चाहिए।

☐ 'प्रयत्न से सब कुछ सम्भव है' उक्त प्रसंग पर छात्रों एवं उपस्थित वक्ता-गणों को प्रवचन देना चाहिए।

☐ विद्या-प्रेम की ओर छात्रों को अग्रसर करना चाहिए। इस हेतु कवि कालिदास का 'मूर्ख से विद्वान और कवि' बनने सम्बन्धी घटना-चक्र का प्रसंग वक्ता की वार्ता का मूल विषय हो तो अधिक उपयुक्त रहे।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

महाकवि कालिदास का जीवन परिचय— कालिदास आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व ही संस्कृत भाषा के बहुत बड़े कवि हो चुके हैं। ये उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य की राज सभा के नौ-रत्नों में से एक थे। इनके बचपन के जीवन का अभी तक कुछ भी पता नहीं चला है। कहते हैं कि ये दशपुर के रहने वाले थे जिसे आजकल मन्दसौर कहते हैं। इनके विषय में लोगों में कई कहानियाँ प्रसिद्ध हैं, किन्तु उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इनके विषय में नीचे दी हुई कहानी बहुत प्रसिद्ध है—

किसी राजा के विद्योत्तमा नाम की एक बहुत ही सुन्दर और विदुषी कन्या थी। उसकी योग्यता की धाक दूर-दूर तक फैल गयी। उसका प्रण था कि जो कोई उसे शास्त्रार्थ में हरा देगा, उसी से वह अपना विवाह करेगी। बहुत-से विद्वान पण्डित और राजकुमार उससे विवाह करने की इच्छा लेकर आये, किन्तु शास्त्रार्थ में सब हारकर अपना-सा मुँह लेकर लौट गये। तब सब पण्डितों ने मिलकर सलाह की कि किसी तरकीब से इसका विवाह किसी महामूर्ख से कराना चाहिए। वे अब ऐसा आदमी तलाश करने लगे।

एक दिन उन्होंने देखा कि एक आदमी जिस डाली पर बैठा है उसी को काट रहा है। पण्डितों ने सोचा—इसे डाली के काटने पर अपने गिरने और मरने का कोई डर नहीं है। इससे अधिक मूर्ख कौन हो सकता है ? ऐसा सोचकर वे बड़े आदर से उसे अपने साथ ले आए। उसे स्नान कराया, अच्छा भोजन और अच्छे वस्त्र दिये तथा कुछ

दिन अपने पास रक्खा। इससे उसका शरीर और रूप सुधर गया। तब उन्होंने उससे कहा—"हम तुम्हारा विवाह एक सुन्दर राजकुमारी से करायेंगे। इशारों में बात करना, मुँह से कुछ मत बोलना।" वहाँ जाकर राजकुमारी से कहलवाया कि "हमारे गुरुजी तुम से शास्त्रार्थ करने आए हैं। वे आजकल मौन धारण किए हुए हैं, इसलिए इशारों में बातें करेंगे।"

राजकुमारी शास्त्रार्थ हेतु तैयार हो गई। सभा में सब इकट्ठे हुए। राजकुमारी ने एक उँगली उठायी। मूर्ख ने सोचा कि यह मेरी एक आँख फोड़ना चाहती है। उसने बदले में दोनों आँखें फोड़ने का इशारा करने के लिए अपनी दो उँगलियाँ उठाईं। पण्डितों ने अर्थ किया कि आप सृष्टि का कारण एक ईश्वर को मानती हैं, और ये पुरुष तथा प्रकृति दोनों को ईश्वर मानते हैं। इस पर मूर्ख की विजय हुई। फिर राजकुमारी ने अपनी पाँच उँगलियाँ उठाईं। उसने समझा कि यह मुझे चपत मारना चाहती है। इसलिए उसने मुक्का दिखलाया। पण्डितों ने अर्थ लगाया कि आप कहती हैं कि शरीर में पाँच इन्द्रियाँ बहुत बलवान् हैं। ये कहते हैं कि उन्हें ज्ञान द्वारा मुट्ठी में यानी काबू में रखना चाहिए। इसी प्रकार राजकुमारी ने कई इशारे किये, किन्तु पण्डितों ने सबके ऐसे ही अर्थ लगा दिये। राजकुमारी हार गयी और उसका विवाह इस मूर्ख के साथ धूम-धाम से हो गया।

विवाह के बाद वह राजकुमारी के कमरे में गया। उसी समय बाहर ऊँट बोल रहा था। राजकुमारी ने उससे पूछा, "यह कौन जानवर बोल रहा है?" वह हँसकर कहने लगा "उट्ट है उट्ट।" वह पण्डितों के धोखे को समझ गयी। उसे उन पर बहुत क्रोध आया और उसने उस मूर्ख को धकेल कर बाहर निकाल दिया और बोली—"कुछ पढ़-लिख लो तो लौटना, अन्यथा नहीं।" वैसे वह बहुत मूर्ख था किन्तु यह बात उसके हृदय में चुभ गयी। वह बोला—"अब आया तो तुझसे अधिक विद्वान् बनकर आऊँगा।"

वह जंगल में चला गया और सरस्वती को प्रसन्न करने के लिए तपस्या करने लगा। जब कई वर्ष बीत गए और सरस्वती देवी प्रसन्न नहीं हुई, तब वह प्राण त्याग करने के लिए सरस्वती-कुण्ड में कूद पड़ा। सरस्वती उसी समय उसके पास आयी और उसे वरदान दिया। इसकी कृपा से वह शीघ्र ही धुरन्धर विद्वान् बन गया। तब यह राजकुमारी के नगर में गया। द्वार पर जाकर एक संस्कृत का श्लोक पढ़कर राजकुमारी को पुकारा। वह इनको इतना अच्छा कवि और विद्वान देखकर बहुत प्रसन्न हुई। उनके चरणों में गिरकर क्षमा माँगी और बड़े आदर से महल में लिवाकर ले गयी। यही मूर्ख, अपनी स्त्री के कारण प्रसिद्ध कवि कालिदास हुए।

इस कहानी में कुछ सत्य हो अथवा न हो, किन्तु इससे यह शिक्षा अवश्य मिलती है कि मूर्ख भी अच्छी लगन और अभ्यास से एक बड़ा विद्वान् बन सकता है। कालिदास की लिखी हुई पुस्तकों का जितना आदर देश और विदेशों में हुआ, उतना और किसी पुराने कवि की रचनाओं का नहीं हुआ। इनके लिखे 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक का अनुवाद अंग्रेजी, फ्रांसीसी, रूसी, जर्मनी आदि कई विदेशी भाषाओं में हो चुका है और

इस नाटक को कई बार विदेशों में खेला भी गया है। इसे सब जगह बहुत पसन्द भी किया गया है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक संसार की सबसे अच्छी पुस्तकों में से एक है।

अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र— ये तीन नाटक, रघुवंश और कुमारसम्भव—ये दो महाकाव्य इनकी लिखी हुई प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। और भी कई पुस्तकें इनकी लिखी हुई बताई जाती हैं किन्तु उनके विषय में अभी संदेह है। इनकी कविता बहुत ही मधुर अलंकारों से भरी हुई और मन को मोहने वाली है। कालिदास का नाम संसार के सबसे बड़े कवियों में गिना जाता है। हमारे देश में ही नहीं विदेशों में भी इनकी जयन्तियाँ मनायी जाती हैं। इनकी पुस्तकों के पढ़ने से पता चलता है कि जब संसार असभ्य था, उस समय हमारे देश की सभ्यता और संस्कृति बहुत ही ऊँची थी। इनकी रचनाओं ने संसार में हमारे देश का मान बढ़ाया है।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

कालिदास-जयन्ती

कालिदास के माता-पिता का नाम अज्ञात है।
उनका जन्म-स्थान, जन्म-समय सब कुछ अज्ञात है।।
कहाँ जन्मे ? कौन माता-पिता ? सही नहीं कोई जानता।
आश्रम किंवदन्तियों का लेना, मैं हितकर नहीं मानता।।

कालिदास संस्कृत साहित्य के, प्रकाण्ड विद्वान् थे।
भारत के शेक्सपीयर वह, ज्ञानपुंज रवि समान थे।।
युवावस्था तक कालिदास, अखण्ड मूर्ख कहलाए।
पत्नी ने फटकारा, घर छोड़ा, विद्वान् हो घर आए।।

गहन अध्ययन, चिन्तन-मनन से, परम विद्वान् हो गए।
परम सात्विक, सुसंस्कृतज्ञ, अनुपम ज्योतिवान हो गए।।
कठिन साधना त्याग का प्रतिफल पाया है आपने।
आपकी कृतियों की साधना, अमर है संस्कृत इतिहास में।।

रघुवंश, कुमारसम्भव महाकाव्यों की रचना की।
खण्ड काव्य मेघदूत में मार्मिक भावों की सृजना की।।
श्रुतबोध, ऋतुसंहार में हृदयोद्गार-वंचना की।
महान नाटकों द्वारा, संस्कृत साहित्य-गर्जना की।

अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र।
तीन नाटकों ने बनाया आपको नाटक जगत मित्र।।
शत-शत प्रणाम कवि शिरोमणि ! भारत के बिपुल सम्मान।
आपने संस्कृत-जगत में, स्थापित किया निज कीर्तिमान।।

गुरु नानक जन्म-दिवस

उत्सव की तैयारी

गुरु नानक सिक्ख धर्म के प्रवर्त्तक थे। उन्होंने अपनी समकालीन सामाजिक बुराइयों को दूर करने तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए भागीरथ प्रयत्न किया, अत: इनका हमारे राष्ट्रीय जीवन में बहुत महत्त्व है। विद्यालय में उत्सव मनाने हेतु निम्न प्रकार से व्यवस्था होनी चाहिए :—

○ शाला में सभा आयोजन किया जाय, जिसमें गुरु नानक की शिक्षाओं व उनके चमत्कारिक प्रसंगों की शिक्षकों व छात्रों द्वारा जानकारी दी जावे।

○ गुरु नानक की कविताओं का पाठ कराया जावे।

○ गुरु नानक महान संत थे अत: उनके उत्सव में भजन व कीर्तन के कार्यक्रम भी रखे जावें।

○ यदि सम्भव हो सके तो किसी सिक्ख-धर्म के मानने वाले विद्वान पुरुष को सभास्थल पर निमंत्रित कर प्रवचन करवाया जाना चाहिए।

○ उत्सव के अन्त में प्रसाद बाँटना चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

गुरु नानक का जीवन-परिचय—आपका जन्म सन् 1469 ई० के 15 अप्रैल तदनुसार वैशाख शुक्ला तृतीया सम्वत् 1526 को लाहौर नगर के दक्षिण-पश्चिम में 65 किलोमीटर दूर स्थित तलवण्डी नामक गाँव में हुआ, जिसे आजकल ननकाना साहब कहते हैं। यह स्थान अब पाकिस्तान में है।

गुरु नानक के पिता महता कालू वेदी परिवार के थे। वे गाँव में पटवारी थे। इनकी माता का नाम तृप्तादेवी और बहन का नाम नानकी था। इससे स्पष्ट जाहिर होता है कि आपका जन्म एक साधारण श्रेणी के परिवार में हुआ था। अब प्रश्न उठता है कि साधारण व्यक्ति में असाधारण व्यक्तित्व उत्पन्न हुआ तो कैसे ?

गुरु नानक में बचपन से ही निम्न बातें देखने को मिलती हैं—

(क) गुरु नानक जन्म लेते ही हँसे थे। इस विचित्रता को देखकर ज्योतिषी और कुल-पुरोहित हरदयाल ने उनकी कुण्डली तैयार कर, भविष्यवाणी की कि यह

शुभ घड़ी में उत्पन्न होने के कारण अत्यन्त प्रतापी और चक्रवर्ती होगा।

(ख) गुरुनानक अन्य साधारण बालकों से भिन्न प्रकृति के थे। वे बच्चों की तरह रोने-मचलने से अपरिचित थे। बचपन से ही अपने खेल के साथ प्रेम और दया पूर्ण व्यवहार करना और उन्हें अपने खेलने और खाने की वस्तुएँ दे डालना उनके लिए साधारण बात थी।

(ग) गुरु नानक का मन साधारण खेल-कूद में नहीं लगता था और वे अपने में ही निमग्न रहते थे।

(घ) सात वर्ष की अवस्था में गुरु नानक को पण्डित के पास पढ़ने के लिए भेजा गया, किन्तु वे पुस्तक-ज्ञान के प्रति उदासीन ही रहे। उनका मन तो सदैव अक्षरों के गूढ़ार्थ ढूँढ़ने में ही रमा रहता था।

गुरु नानक ने प्रकट होकर संसार के अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर, ज्ञान का प्रकाश फैलाया ? अत: ऐसे महापुरुष के विचारों और शिक्षाओं पर हमें अमल करना ही चाहिए।

गुरु नानक के विचार और शिक्षाएँ—गुरु नानक भारत में उस समय पैदा हुए जब भक्ति-सुधार या पुनर्जागरण का स्वर गूँज रहा था। इनकी वाणी और उपदेशों में भी सुधार के स्वर हैं, किन्तु अन्य सुधारकों से ये भिन्न हैं। कबीर ने भी हिन्दू-मुसलमानों के बाह्याडम्बरों पर प्रहार कर एक ईश्वर का उपदेश दिया। अन्य सुधारक भी हुए, किन्तु जहाँ अन्य सुधारकों का उद्देश्य केवल बुराइयों को, बाह्याडम्बरों को दूर करना मात्र था, वहाँ गुरु नानक ने एक नया सम्प्रदाय, धर्म चलाया। यही इनकी विशेषता है।

हमने पढ़ा है कि ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् इनके मुँह से पहला वाक्य निकला 'न कोई हिन्दू है न कोई मुसलमान'। इसका अर्थ चाहे कुछ भी लगाया जाय, किन्तु इतना सत्य है कि हिन्दू या मुसलमान को लेकर अर्थात् इनके झगड़ों, विचारों, जुल्मों तथा बाह्याडम्बर के तीव्र मन्थन की प्रतिक्रिया ही यह वाक्य है। इसीलिए गुरु नानक के विचारों के आधार में एकता, समभाव, धर्म-निरपेक्षता तथा उच्च मानवता ही है।

रूढ़ियों से विद्रोह एवं विनम्रता—गुरु नानक की रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की जो तस्वीर उभरती है उससे लगता है कि वे असीम काव्य-प्रतिभा-सम्पन्न अत्यन्त संवेदनशील तथा विकट साहसी थे। क्योंकि रूढ़ियों से विद्रोह करना, परम्पराओं को चुनौती देना और अपने चतुर्दिक् के लोगों से ताने सुनना कोई आसान काम नहीं है। साथ ही उनकी वाणी में हास्य का पुट भी मिलता है। विनय और दीनता उनकी अपनी विशेषताएँ थीं।

गुरु नानक सत्य की खोज को ही जीवन का अन्तिम लक्षण बताते हैं, जो केवल मौखिक ही नहीं वरन् क्रियात्मक होनी चाहिए। उन्होंने कहा है, "सच्चाई सर्वोच्च है परन्तु सत्यपूर्ण जीवन सर्वोत्तम है।" गुरु नानक सत्य और परमात्मा को समान बता कर इस अन्तर को सिख मान्यता में समान कर देते हैं।

ईश्वर ही सत्य है—गुरुजी ने अदृश्य, असीम, अप्राप्य और अज्ञात परमात्मा

का अभास कराया। वह परमात्मा, परमजोत और जगन्नाथ है। उन्होंने बताया कि परमात्मा ही सांसारिक प्राणियों का सच्चा निदेशक है। वे कहते हैं. "परमात्मा आप से दूर नहीं, उसे अपने हृदय में देखें।" इस प्रकार गुरुजी एक परमात्मा की भक्ति का मार्ग दिखाकर भक्त को उसके सम्मुख करते हैं।

उन्होंने कहा है—"परमात्मा केवल एक है, दूसरा कोई नहीं, और न कभी होगा।" उनका पैथीज्म पाश्चात्य 'पैथीज्म' से भिन्न है। गुरुजी के अनुसार संसार स्व-अस्तित्वहीन है, केवल परमात्मा ही स्वअस्तित्वपूर्ण है। संसार परमात्मा पर निर्भर करता है।

भक्ति करो—उन्होंने सबको जात-पाँत, धर्म, सम्प्रदाय और भौतिक भेदों को भूलकर भक्ति करने को कहा ? उन्होंने मानसिक आध्यात्मिकता ग्रहण करके परिश्रम और सेवा करने की सलाह दी। उन्होंने कहा कि उनके अनुयायियों को परमात्मा के सहारे होकर संसार में जीना चाहिए।

गुरु नानक आवागमन का सिद्धान्त—गुरु नानक ने बार-बार आवागमन और आत्मा की अनवरता की बात कही है। वे कहते हैं कि मनुष्य जीवन सर्वोत्तम है। अन्य किसी भी जीवन में आत्मा, बन्धन मुक्त नहीं होगी। यह मनुष्य जीवन में ही सम्भव है कि आत्मा पुनर्जन्म से छुटकारा पा सकती है। उनका कहना है कि मनुष्य जीवन में ही पर-मात्मा के साथ मिलकर पुनर्जन्म से छुटकारा पाया जा सकता है। यदि ऐसा नहीं किया जावेगा तो पता नहीं ऐसा स्वर्णावसर फिर कब आयेगा ?

जैसा करेगा वैसा भरेगा— गुरु नानक के अनुसार यह है कि हम जो बोयेंगे वही अवश्य काटेंगे। उन्होंने इस सिद्धान्त में एक स्वतन्त्र विचारधारा का प्रवाह किया जो अन्यथा नहीं है। परमात्मा में लीन हो सकें तो हमारे अपने सब कर्मों के पाप धोये जा सकते हैं।

सांसारिक जनों के लिए गुरुजी ने कहा है कि इच्छाओं पर काबू पाकर भक्ति, तपस्या और निग्रह ही परमात्मा से मांगें और संयम करें। वही सत्य निग्रही गंगाजल की तरह पवित्र है। उन्होंने श्रम की महत्ता, ईमानदारी और दान की महानता समझी थी। यह भी बताया है कि हम जो यहाँ दान करेंगे वही आगे मिलेगा।

"छाल खाई किछ हाथों दें
नानक शह पथाठों से।
तथा—गुरु आगे सो मिले जो खट्रे धल्ले दें।"

वे दूसरों के अधिकारों को हथियाने के विरुद्ध थे। उन्होंने मालिक भागों का स्वाभाविक भोजन छोड़, माई लालों का रूखा भोजन स्वीकार करके यह सिद्ध किया, क्योंकि वह मेहनत की कमाई थी। वे कहते हैं—

"हक पराया नानका
उस सुअर उस गाय।"

दूसरों का हक लेना हिन्दू के लिए गो माँस तथा मुसलमानों के लिए सुअर के माँस के

समान है। उनकी शिक्षा आज भी नयी लगती है, चाहे वे पाँच सौ साल पहले दी गई थीं। उनकी युक्तियाँ विशुद्ध थीं, उन्होंने हरिद्वार में जो पानी देने और काबा में परमात्मा के एक होने के उदाहरण प्रस्तुत किये वे अतुल्य हैं। इनसे उनकी युक्तियों की महानता सिद्ध होती है।

सामाजिक व राजनीतिक विचार—डॉ० त्रिलोचनसिंह ने लिखा है कि, "गुरु नानक के सामाजिक व राजनीतिक दर्शन का मूल सिद्धान्त यह है कि संसार की सभी जातियों एवं मनुष्य, मानवता के धरातल पर एक समान है। प्रत्येक का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह भय, अत्याचार तथा सामाजिक एवं राजनैतिक पराधीनता के भय से मुक्त रहें।"

गुरु नानक ने किशोरावस्था में ही छुआछूत का भेद उत्पन्न करने वाले जनेऊ' आदि पहनने के रस्मों को त्याग दिया था। गुरु नानक ने हिन्दू धर्म की वर्ण-व्यवस्था को घातक एवं अग्राह्य बताया है। उनका कहना है कि समाज में छोटे-बड़े ऊँच-नीच का भेद उत्पन्न करने का मूल आधार यह वर्ण-व्यवस्था ही है। इसीलिए उन्होंने इसके मूलोच्छेद का भरसक प्रयत्न किया। उनके द्वारा चलाए गए लंगर (सामूहिक भोज) का यही महत्त्व है कि उसमें सभी जातियों, वर्गों और वर्णों के लोग बिना किसी भेदभाव के साथ भोजन कर सकते थे।

समता और एकता के गुरु नानक प्रबल समर्थक थे। उन्होंने जिस सामाजिक विधान को लागू करना चाहा, उसमें सभी राष्ट्रों, सभी धर्मों तथा सभी जातियों के प्रति सद्भावना, प्रेम तथा एकता का निर्देश है। इस पृष्ठभूमि में गुरु नानक दृष्ट थे।

वे भारत भूमि पर एक उत्कृष्ट धर्म-निरपेक्षता के प्रणेता थे। गुरु नानक चाहते थे कि समाज का आधार सत्य तथा यथार्थ हो।

स्वाधीनता के बारे में गुरु नानक कहते हैं कि यह एक मानसिक एवं आध्यात्मिक अवस्था है। अत्याचार तथा बल के प्रयोग से स्थापित राज्य को गुरु नानक अच्छा नहीं बताते। वे कहते हैं कि ऐसे शासन के प्रति लोग शंका करते हैं और उसमें क्षोभ तथा रोष रहता है।

सम्भवतः गुरु नानक भारत के इतिहास में प्रथम महापुरुष हैं जिन्होंने क्षेत्रीयता की संकीर्णता उलाँघकर समस्त देश की समस्या पर पहली बार विचार किया है। यह घटना बाबर के आक्रमण के समय की है। वे कहते हैं, "हे ईश्वर, तूने खुरासान को बचाया, लेकिन हिन्दुस्तान को भयभीत बना डाला।"

इस तरह एक राष्ट्र की भावना के गुरु नानक जन्मदाता कहे जा सकते हैं।

उनके समय में और देशों की तरह ही भारत में भी 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' के न्याय पर सिंहासन जीते जाते थे। चाणक्य ने पड़ोसी राज्य को सहज शत्रु कहा था। राजाओं का एक-दूसरे पर आक्रमण कर जीत की दुन्दुभी बजाना कर्त्तव्य माना जाता था, किन्तु गुरु नानक की वाणी मुखरित हुई कि सिंहासन पर बैठने का अधिकारी वही होना चाहिए जो उसके योग्य हो। बल के आधार पर नहीं, गुण के आधार पर किसी को

राजा बनने का अधिकार मिलना चाहिए। क्योंकि राजा सांसारिक व आध्यात्मिक उन्नति का प्रधान होता है। उनकी मान्यता थी कि शक्ति और ज्ञान का संतुलन होना चाहिए। राजा को ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए और आध्यात्मिक व्यक्तियों का शासन में अधिकार होना चाहिए। सर्वसाधारण के कष्ट-निवारण का गुरु नानक के पास यही मंत्र था।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

गुरु नानक—एक शब्द

तू सुमिरन कर ले मेरे मना।
तेरी बीती जात उमर हरी नाम बिना॥

पंछी पंख बिन हस्तनी दंत बिन—
नारी पुरुष बिन।
जैसे पण्डित वेद विहीना तैसे—
प्राणी हरी नाम बिना॥

देह नयन बिन, रैन चन्द्र बिन—
धरणी मेघ बिना।
जैसे पुत्र पिता बिना हीना—
तैसे प्राणी हरी नाम बिना॥

कूप नीर बिन धनुष वीर बिन—
मन्दिर दीप बिना।
जैसा हृदय ज्ञान विहीना—
तैसे प्राणी हरी नाम बिना॥

काम क्रोध मद लोभ निवारो—
त्यागो मोह तुम सन्त जना।
कहै 'नानक' सुनो भगवन्ता—
या जग में नहीं कोउ अपना॥

तू सुमिरन कर ले मेरे मना।
तेरी बीती जात उमर हरी नाम बिना॥

गुरु नानक-जयन्ती

कातिक की पूनम को, इक चाँद धरा पर आया।
कालूराम सुत नानक ने, तलवंडी में जन्म पाया॥

बड़े ही लाड़-प्यार से नानक का बचपन बीता।
होनहार बिरवान को, मिला हर बात का सुभीता॥

सांसारिक सुखों में नानक ने चैन नहीं पाया।
रिश्ते-नाते घर छोड़ा, ध्यान रब के भजन में लगा ।।
कार्तिक की पूनम को, इक चाँद धरा पर आया।
कालूराम सुत नानक ने, तलवंडी में जन्म पाया ।।
साधु-सन्तों की संगत से, नानक ने दिव्य ज्ञान पाया।
फारसी उर्दू अरबी द्वारा ज्ञान प्रकाश फैलाया ।।
अपना सर्वस्व बलिदान कर, मानवता सूर्य-चमकाया।
अपनी अमृत वाणी से, जन मन का तिमिर हटाया ।।
कार्तिक की पूनम को, इक चाँद धरा पर आया।
कालूराम सुत नानक ने, तलवंडी में जन्म पाया ।।
सिक्ख धर्म की स्थापना की, अपना सर्वस्व गँवा कर।
किया प्रचार धर्म का, अज्ञान अंधकार हटा कर ।।
एकेश्वरवाद की भक्ति से, पाखण्ड ढोंग मिटाया।
मानव धर्म का रक्षक, वह नानक कहलाया ।।
कार्तिक की पूनम को, इक चाँद धरा पर आया।
कालूराम सुत बालक ने, तलवंडी में जन्म पाया ।।
तलवंडी का नाम अब, ननकाना साहब हो गया।
गुरु नानक की वाणी से, पावन पुनीत हो गया ।।
गुरु नानक की वाणी ने अज्ञान, हर दिल से मिटाया।
सत्कर्मों का जग में, गुरु नानक ने दीप जलाया ।।
कार्तिक की पूनम को, इक चाँद धरा पर आया।
कालूराम सुत नानक ने, तलवंडी में जन्म पाया।

14 नवम्बर : बाल-दिवस

उत्सव की तैयारी

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू का जन्म-दिन 'बाल-दिवस' के रूप में सारे देश में बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। चाचा नेहरू को बच्चों से बहुत प्यार था। और इसी अन्तर्निहित भावना के कारण उनका जन्म-दिन बच्चे-बच्चियों के खुशी और उल्लास का दिन होता है। विद्यालय में बाल-दिवस के उत्सव में निम्न प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए—

○ शाला में इस दिन 'बाल-मेला' लगाया जाना चाहिए, जिसमें बालकों के मनोरंजन व खुशी और उल्लास की पर्याप्त सामग्री हो।

○ शाला में उत्सव मनाने के लिए आयोजित सभा में जहाँ तक हो सके किसी 'बाल-गोपाल' को ही अध्यक्ष बनाना चाहिए तथा उसको सभा-संचालन में संरक्षण दिया जाय।

○ चाचा नेहरू के जीवन व उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर सभा में प्रकाश डालना चाहिए।

○ उत्सव में नाच, गान व अन्य विभिन्न प्रकार के शिक्षा-प्रद व मनोरंजक कार्यक्रम रखने चाहिए।

○ सभा-स्थल पर 'बालक राष्ट्र की अमूल्य निधि हैं' इस बात को शिक्षकों द्वारा अपने प्रवचनों में स्पष्ट करना चाहिए तथा उन्हें अपने विकास के लिए उत्साहित करना चाहिए।

○ कार्यक्रम में अभिभावकों को भी बुलाना चाहिए तथा उन्हें बालकों के विकास में योगदान देने हेतु महत्त्वपूर्ण बातों से अवगत कराना चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

पंडित जवाहरलाल नेहरू का जीवन-परिचय—भारत के साथ नेहरूजी का नाम वैसे ही जुड़ा है, जैसे गुलाब के साथ सुगन्ध। स्वाधीन भारत का यह परिवर्तित स्वरूप पंडित नेहरू की ही देन है। यह पंजाब और हरियाणा का प्रकाशपुंज भाखड़ा बाँध, यह

रेगिस्तान की छाती चीरती राजस्थान नहर, यह मध्य-प्रदेश और राजस्थान की रौनक गांधी-सागर बाँध और महाराष्ट्र का सेहरा ट्राम्बे का अणु संयंत्र नेहरूजी के भागीरथ परिश्रम का ही तो प्रतिफल है।

शान्ति के पुजारी, आजादी के अग्रदूत, सह-अस्तित्व के प्रवर्तक, पंचशील के प्रणेता, एशिया और अफ्रीका के सच्चे मार्ग-प्रदर्शक 'नेता पण्डित जवाहरलाल नेहरू' का जन्म 14 नवम्बर 1889 में हुआ। भारत के इस होनहार बालक ने जन्म लिया इलाहाबाद के मारगंज में। आपके पिता पंडित मोतीलाल नेहरू थे और माता का नाम स्वरूपरानी था। पिता अपने युग के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर थे और उन्होंने स्वाधीनता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था, यह ही मूल कारण था कि नेहरू को देश-भक्ति की भवाना अपने पिता से ही प्राप्त हुई थी।

जीवन-पर्यन्त नेहरूजी ने देश-हित को प्रमुख रखा। प्रत्येक प्रकार का वलिदान उन्होंने देश के लिए दिया। भारत की शस्यश्यामला भूमि की चिर सम्पन्नता उनका एक मात्र ध्येय था। देश की सामाजिक दशाओं में सुधार, आर्थिक उन्नति तथा धर्म निरपेक्षता की जड़ों को मजबूत करना—नेहरू जी को सदैव प्रिय रहे हैं।

पिता की असामान्य आय के कारण आपकी शिक्षा-दीक्षा एवं लालन-पालन पर वरद-हस्त से व्यय किया गया। पिता पाश्चात्य सभ्यता के पुजारी थे, किन्तु हृदय उनका भारतीय ही था। बालक जवाहर की परिचर्या के लिए अंग्रेजी दाइयाँ रखी गयीं। श्री एफ० टी० ब्रुक्स नामक एक अंग्रेज थियोसोफिस्ट को उनका प्रारम्भिक शिक्षक नियुक्त किया गया और उन्होंने विज्ञान और अंग्रेजी की प्रारम्भिक शिक्षा उन्हें पूर्ण-कौशल से दी। इनके बाद के शिक्षकों में मुन्शी मुबारक अली, शशिभूषण चट्टोपाध्याय तथा डॉ० गंगानाथ झा का नाम उल्लेखनीय है। इन सभी शिक्षकों के विचारों से प्रेरणा ग्रहण करते हुए बालक नेहरू विद्वत्ता एवं वैचारिकता के मूल्यवान धरातल पर चरण बढ़ाते रहे।

इस प्रकार अपनी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर सम्पन्न करने के बाद सन् 1904 में 15 वर्ष की आयु में आपको इंगलैण्ड के सुप्रसिद्ध 'हेरो स्कूल' में प्रवेश दिला दिया गया। एंट्रेंस की परीक्षा आपने इसी विद्यालय से सन् 1910 में उत्तीर्ण की। तदनन्तर विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करने हेतु आपने ट्रिनिटी कॉलेज में प्रवेश पाया। सन् 1910 में कैम्ब्रिज के इस ट्रिनिटी कॉलेज से एम० ए० की डिग्री प्राप्त की।

कॉलेज के प्रमुख सहपाठियों में अन्य थे—डॉ० कीचलू शेखनी, डॉ० महमूद सर सुलेमान और ख्वाजा अब्दुल नजीर। सन् 1912 में आपने 'इनर टेम्पुल' बैरीस्ट्री की डिग्री प्राप्त की। इसी समय आपने कुछ यूरोपीय देशों का भ्रमण किया तथा वहाँ के जन-जीवन का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त किया। पाश्चात्य शिक्षा, कला एवं वैज्ञानिक उन्नति का पंडित नेहरू पर गहरा प्रभाव पड़ा। स्वतन्त्र देशों में परिभ्रमण करने से स्वाधीनता के भाव आपके चिन्तन-प्रधान मस्तिष्क में घर कर गये।

नवीन विचारधारा की ख्याति ले आप स्वदेश लौटे। सन् 1916 में आपका

विवाह देहली-निवासी पंडित जवाहरलाल कौल की सुपुत्री कमला के साथ सम्पन्न हुआ। एक वर्ष पश्चात् भूतपूर्व भारत की प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी का जन्म हुआ। इसके पश्चात् आपके तीन बच्चे और हुए किन्तु जीवित न रह सके।

बैरिस्टर बन कर भारत लौटते ही तत्कालीन परिस्थितियों ने जवाहरलाल नेहरू का ध्यान अपनी ओर खींचा। निर्धनता, बेकारी, भुखमरी और अंग्रेजों की कपट-नीति को देखकर भला नेहरू जी कैसे चुप रह सकते थे। सन् 1857 की क्रान्ति के दृश्य उनकी दृष्टि के समक्ष घूम रहे थे।

सर्वप्रथम 1912 में बांकीपुर कांग्रेस अधिवेशन में आपने प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। सन् 1915 में बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर अनेक नेताओं से आपने देश की स्थिति पर चर्चा की। इसके पश्चात् लोकमान्य तिलक एवं श्रीमती एनीबेसेंट द्वारा चलाए गये 'होम रूल लीग' आन्दोलन में आपने भाग लिया।

सन् 1916 में जब महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से स्वदेश लौटे तो पंडित नेहरू उनके सम्पर्क में आए और गांधी के शिष्य बन गए। सन् 1919 में रौलट-एक्ट के विरुद्ध देश-व्यापी आन्दोलन में नेहरूजी ने प्रमुख भाग लिया। महात्मा गांधी के अहिंसक एवं देशभक्तिपूर्ण विचारों का पंडित नेहरू पर खूब प्रभाव पड़ा और अहिंसक तरीकों से ही देश की स्वतन्त्रता हेतु हर सम्भव प्रयत्न करने आरम्भ किये।

सन् 1919 से 1921 तक श्री नेहरू ने संयुक्त प्रांत मे चलने वाले कांग्रेस आंदोलन का कुशल संगठन एवं संचालन किया। स्वयं गांधी नेहरूजी के कार्यों से प्रभावित हुए बगैर न रह सके। धूप, वर्षा, शीत की परवाह किए बगैर आपने किसानों का कुशल मार्ग निर्देशन किया। नेहरू अपने अनेक कार्यों के परिणाम-स्वरूप ख्याति अर्जित करते गए और जनता के हृदय में अंकित होते गये।

प्रिन्स आफ वेल्स के भारत आगमन की घोषणा पर आपने तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की और इसी कारण लखनऊ में प्रिन्स आफ वेल्स के स्वागत का बहिष्कार आन्दोलन आपने ही संगठित किया। सरकार ने आपको गिरफ्तार कर कारावास में बंद कर दिया। कारावास से मुक्त होकर आपने 'विदेशी वस्तु बहिष्कार का आंदोलन' का नेतृत्व किया। विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। 17 मई को आपको विदेशी वस्त्रों में विक्रय केन्द्र पर पिकेटिंग के अपराध में सौ रुपये दण्ड एव डेढ़ वर्ष की कारावास सजा सुनायी गयी। किन्तु 1 मास पश्चात् ही विदेशी सरकार को अपने कारागार के द्वार आपके लिए खोल देने पड़े। जनता के मध्य आ आपने फिर जन-मानस में देश-भक्ति की भावना भरना आरम्भ किया।

देश को पूर्ण स्वाधीनता दिलाने के क्रांतिकारी मार्ग की ओर अग्रसर करने हेतु 1928 में दिल्ली में भारतीय स्वाधीनता संघ की स्थापना की गई। इस समय गांधीजी गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने लंदन चले गए थे। उनके लौटने के पहले सरकार ने किसानों पर दमन-चक्र का दायरा फैला दिया। अध्यादेश की आड़ ली गई। गांधीजी लंदन से बम्बई लौटे। गांधी के मंत्रणा करने हेतु आप बम्बई रवाना हुए। किन्तु गांधीजी तक आप नहीं पहुंच सके? आततायी सरकार ने बीच में आपकी ट्रेन को रोका।

गिरफ्तारी हुई। अढ़ाई वर्ष का कारावास का दंड मिला ? किन्तु माँ की रुग्णावस्था के फलस्वरूप निश्चित समय से कुछ दिन पूर्व ही आपको बंधन-मुक्त कर दिया गया।

1934 में बिहार में भूकम्प आया। हजारों नर-नारी इस प्राकृतिक प्रकोप की चपेट में आ गए। नेहरूजी विपत्ति की उस घड़ी में कैसे अलग रह सकते थे। वे बिहार की जनता की सेवा करने पहुँचे। मलबे में लाशें निकालने का कार्य आपने स्वयं किया। भूकम्प-संतृप्त प्राणियों की सरकार तक आवाज पहुँचाने के लिए अनेक स्थानों पर आपने ओजस्वी भाषण दिए। सरकार को खूब खरी-खोटी सुनाई। बंगाल सरकार द्वारा आपको दो वर्ष की सजा सुनाई गई। पत्नी की असाध्य रुग्णता के कारण आपको रिहा किया गया और आपने जर्मनी के लिए प्रस्थान किया। 28 फरवरी को पत्नी कमला का देहान्त हो गया। नेहरूजी असहाय और विवश थे। विधि के आगे किसी की भला क्या चले ?

कांग्रेस के 1936 के लखनऊ अधिवेशन में आपको अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। अगले वर्ष फैजपुर में भी आपको अध्यक्ष चुना गया। आपने सम्पूर्ण देश के लोगों के दुःख-दर्द से परिचित होने के लिए देशाटन प्रारम्भ किया। स्थान-स्थान पर ओजस्वी भाषण दिया। कार्यकर्ताओं में अमित स्नेह के माध्यम से नया जोश भर दिया। जागरण का पाञ्चजन्य फूँकने में आप अग्रिम रहे। स्वाधीनता की भावना को विस्तृत एवं शक्तिशाली बनाने के लिए आपने 'नागरिक स्वाधीनता संघ' स्थापित किया।

जून 1938 में आप यूरोप यात्रा हेतु रवाना हुए। मिस्र के वफ्द नेता नहसपास से भी आपने विचार-विमर्श किया। स्पेन में प्रजातन्त्रीय सरकार के अधिकारियों से भी भेंट की। पेरिस से 20 जून को अपने रेडियो पर एक ओजस्वी भाषण प्रसारित कर सम्पूर्ण यूरोप में भारत के प्रति लोगों में लालसा को जगा दिया। नवम्बर में आप भारत लौट आये। यहाँ आकर आपने कांग्रेस की एकता बनाए रखने का सद् प्रयत्न किया। त्रिपुरा कांग्रेस को लेकर जो विवाद चल रहा था उसे सबको समझा-बुझाकर शान्त किया। आपके प्रभाव से कांग्रेस से गुटबाजी का विनाश हुआ। नेहरूजी ने इस बीच 'नेशनल प्लानिंग कमेटी' की स्थापना की। 1939 में चीन के नेता च्यांग काई शेक से मिलने आप वायुमार्ग द्वारा चीन पहुंचे। चीनी नेताओं ने आपका स्नेह-भीना स्वागत किया। जापान की सेनाओं से भयभीत चीन को पंडित नेहरू ने मार्ग-निर्देशन दिया।

बम्बई की जन-सभा में पूज्य बापू ने 1942 के 6 अगस्त के दिन 'भारत छोड़ो' का नूतन एवं चिरन्तन नारा लगाया। सम्पूर्ण भातीय जनता महात्माजी के साथ थी। अंग्रेजी सरकार ने आन्दोलन की प्रगति को प्रतिबन्धित करने हेतु सभी शीर्षस्थ नेताओं को बन्दी बना लिया। पंडित नेहरू को भी गिरफ्तार किया गया। अंग्रेज नौकरशाही का भयानक अत्याचार भारतीय जनता पर होना जारी रहा।

नेहरूजी कारागार से मुक्त हो बाहर आए। अगस्त-आन्दोलन का कुशल संचालन किया। आजाद हिन्द के सेनानियों पर देहली के लालकिले में मुकदमें चलाए गए। नेहरू जी ने इन सैनिकों की वकालत की। अकाट्य तर्क एवं दुर्दम सत्य को उघाड़ कर

आपने सबके सामने रख दिया, जिससे अभियुक्त मुक्त हुए। निरपराधों पर अपराध प्रमाणित न हो सके। सम्पूर्ण भारत ने नेहरूजी के आचरण की प्रशंसा की।

इस समय तक ब्रिटिश सरकार ने यह अनुभव कर लिया था कि वह अनन्त काल तक भारत को पराधीन न रख सकेगी। आजादी देने की योजना सुझाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने एक मिशन भेजा, जिसके सदस्य सर पैथिक लारेन्स, ए० एलेक्जेण्डर एवं क्रिप्स आदि थे। इस मिशन की रिपोर्ट पर अन्तरकालीन सरकार बनाई गई। पंडित नेहरू को अन्तरकालीन सरकार का उपाध्यक्ष बनाया। वे ही स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के पद पर भी सुशोभित हुए। तब से 27 मई 1964 तक वे भारतीय जनता के प्रधानमंत्री से रूप में सेवा करते रहे। 27 मई को वे इहलीला समाप्त कर परलोक सिधार गये। उनके मरने के समाचार पर जनता ने विश्वास नहीं किया। किन्तु मृत्यु के विकराल सत्य के आगे भारतीय जनता अश्रुप्रवाहित करती रह गयी।

नेहरूजी भारतीय जनता के सर्वमान्य नेता थे। लोकनायक नेहरू ने स्वाधीन भारत को प्रगति के नवीन मार्ग पर ला खड़ा किया। देश के विभाजन से प्रथम समस्या साम्प्रदायिकता के नाश की रही। नेहरूजी ने साम्प्रदायिकता के जहर को शान्त करने का अकथनीय प्रयत्न किया। इसके पश्चात् विस्थापितों के पुनर्वास की समस्या सामने आयी। आपने बड़ी कुशलता से इस समस्या को भी हल किया।

अपने प्रधान मंत्रित्व काल में उन्होंने भाषावार प्रान्तों की रचना की। चीन एवं पाकिस्तान के आक्रमणों से भारत की सुरक्षा की। अनेक बाँध एवं नहरों का निर्माण करवाया। देश की आर्थिक उन्नति में वे विशेष भाग लेते थे। योजना आयोग के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने तीन पंचवर्षीय योजनाओं का संचालन किया। देश के प्रति व्यक्ति-आय में बढ़ोतरी की। असमानता को कम किया। बेरोजगारी की समस्या को हल करने का प्रयत्न किया। कृषि एवं उद्योगों की उन्नति की। कुटीर उद्योगों की गिरी अवस्था में सुधार लाए।

विदेशों में आपकी ख्याति लगातार बढ़ी। सहअस्तित्व का नारा सर्वप्रथम आपने ही विश्व को भेंट किया। पंचशील के पुनीत सिद्धान्तों की आपने व्याख्या की। तटस्थता की नीति का औचित्य सिद्ध किया, जिसे कि आरम्भ में अमेरिका एवं रूस शंका की दृष्टि से देखते थे। एशिया एवं अफ्रीका के पराधीन देशों को स्वाधीन कराने के महान प्रयत्न किये। इण्डोनेशिया को स्वाधीन कराने में आपका योगदान महान् था। अलजीरिया को स्वाधीनता दिलाने में आपने जो यत्न किये वे अल्जीरियाई बन्धु क्या भुला पायेंगे। स्वेज नहर पर 1956 में जब ब्रिटेन एवं फ्रांस ने आक्रमण किया तो आपने मिस्र के राष्ट्रपति नासिर की नीतियों का समर्थन किया। किन्तु अपने एक पड़ोसी मित्र चीन ने नेहरूजी को धोखा दिया। आप विचलित नहीं हुए। चीन के विरुद्ध आपने युद्ध किया। स्वाधीनता की पताका पर आँच न आने दी।

संयुक्त-राष्ट्र संघ को बलशाली बनाने में आपने सदैव योग दिया, क्योंकि वे विश्वमानवता के समर्थक थे। वे अनेकता में एकता का दर्शन भारत भूमि पर करना

चाहते थे।

14 नवम्बर पंडित जी का जन्म दिन है, और यह भारत में बाल-दिवस के रूप में मनाया जाता है। सच तो यह है कि उन्हें बच्चों से विशेष प्यार था। किसी भी जाति, वर्ण, देश के बच्चे हों—पंडितजी को अत्यन्त प्रिय थे। देश का भविष्य उन्हें बच्चों के स्नेह-भीगे चेहरों पर नजर आता था। बच्चों के वे 'चाचा नेहरू थे'।

स्वयं अपने बारे में नेहरूजी ने अपने स्मृति-लेख में शब्द लिखे हैं, "वह एक ऐसा आदमी था, जिसने अपने दिल-दिमाग से भारतीय जनता को प्यार किया और इसके लिए जनता से उसे खूब प्रश्रय मिला और साथ ही अत्यधिक उदारता के साथ प्रेम भी दिया।" सच तो यह है कि जवाहरलाल नेहरू केवल भारत की ही नहीं सम्पूर्ण विश्व की ख्याति थे। उन्होंने जीवन-भर जो कार्य किया है, उससे भारतीय जनता को ही नहीं सम्पूर्ण मानवता को लाभ हुआ है। वे एक देश के न होकर सम्पूर्ण मानवता के प्रतीक बन गये थे। विश्व-शान्ति, विश्व-बन्धुत्व निःशस्त्रीकरण, स्वाधीनता और मानवतावाद की रक्षा के लिए वे जीवन-भर कठोर श्रम करते रहे। श्रम को ही वे जीवन का पर्याय मानते थे। 'आराम-हराम है'—यह उनका प्रिय नारा था।

बालक राष्ट्र की अमूल्य निधि हैं

आज के बालक ही कल के होनहार नागरिक हैं अतः इनके निर्माण में संरक्षकों समाज, सरकार और शिक्षकों का महत्त्वपूर्ण योगदान होना चाहिए। हमारे प्रातः स्मरणीय दिवंगत नेता जवाहरलाल नेहरू ने अपने जन्म-दिन को बाल-दिवस के रूप में मनाना प्रारम्भ किया, इसके पीछे सबसे बड़ी बात उनके दिमाग में यह थी कि आज के दिन सारा समाज बालकों को याद कर ले और उसके सही निर्माण की प्रतिज्ञा करे।

बाल-निर्माण में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका संरक्षकों की है। बालक माता के प्यार और पिता के दुलार में बातों ही बातों में बड़ी-बड़ी बातें सीख सकता है। माता-पिता जो आचरण करते हैं, बालक उनकी नकल करता रहता है। बालक का शाला-समय के अतिरिक्त बाकी 18 या 19 घण्टे का समय उनके पास ही व्यतीत होता है। अतः माता-पिता और अभिभावकों को इस ओर कोई कसर नहीं छोड़नी चाहिए। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जिनमें आदर्श माताओं ने अपने बालकों के निर्माण में कोई कसर नहीं छोड़ी। ध्रुव, शिवाजी, गाधीजी, रामकृष्ण और अन्य जितने भी महान पुरुष हुए हैं वे सब आदर्श माताओं के प्रयत्नों के परिणाम ही तो हैं। माता-पिता को अपनी आमदनी का अधिकतम भाग बालकों की शिक्षा और उन्नति में खर्च करना चाहिए। उनको अपने बच्चों के सामने अच्छे आदर्श रखने चाहिए।

माता-पिता ही नहीं समाज के प्रत्येक व्यक्ति को बाल कल्याण के प्रति पूर्ण सजग रहना चाहिए। बालक खेलते, कूदते, मंदिर में जाते व स्कूल में जाते ऐसी बहुत-सी बातें समाज से सीखता है जिसका उसके जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है अतः प्रत्येक व्यक्ति को नियम, संयम और सदाचार के नियमों का पालन करते हुए, जीवन यापन

करना चाहिए।

बाल-निर्माण में सरकार की भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण है। सरकार अपनी योजनाओं में सबसे अधिक राशि बाल-कल्याण पर खर्च करे तथा बालकों की शिक्षा पर समुचित ध्यान दे तो कोई कारण नहीं कि हमारे देश की सही प्रगति न हो। हमारी सरकार इस विषय में अभी तक उदासीन रही है। रूस, अमेरिका, जर्मनी और जापान की अपेक्षा हमारे देश की सरकार बाल-कल्याण और बालकों की शिक्षा पर बहुत कम पैसा खर्च कर रही है। शिक्षकों के वेतन-स्तर निम्न हैं। शाला भवनों की स्थिति दयनीय है। पाठन सामग्री का अभाव है। ऐसी स्थिति में स्कूल और कालेजों में बालकों का सही निर्माण नहीं हो रहा है। योजनाओं की अधिक राशि बेफिजूल के कार्यों में खर्च होती है तथा हमारी सरकार मकान, सड़क और कुएँ बनाने में ज्यादा तत्पर दिखाई दे रही है। उसे उनके बनाने और उपयोग करने वाले मानव के निर्माण का कोई खयाल ही नहीं है। जिस दिन देश का बच्चा-बच्चा योग्य, शिक्षित और होनहार हो जावेगा, उस दिन प्रत्येक घर में कुआँ. बाग और बागवानी लग जावेगी। अतः सरकार को अधिकतम राशि बाल-कल्याण और शिक्षा पर खर्च करनी चाहिए।

बालकों के निर्माण में शिक्षकों का भी कम महत्व नहीं है। उन्हें अपनी दुखद परिस्थितियों से संघर्ष करके भी इस राष्ट्र-निर्माण के कार्य में पूर्ण तत्परता से कार्य करना चाहिए। उनको छात्रों का मनोबल ऊँचा उठाने और चरित्र-निर्माण करने में कोई कसर नहीं छोड़नी चाहिए। विश्व इतिहास इस बात का साक्षी है जिस दिन शिक्षक अपनी पूर्ण निष्ठा से बालकों का सही मार्गदर्शन करने लगेंगे राष्ट्र की काया पलट जावेगी तथा यही भारत विश्व का नेतृत्व करने लगेगा! अतः आज के दिन हम सबको इसी बात की प्रतिज्ञा लेनी चाहिए कि हमें सब बातों को छोड़ कर बालकों के सही निर्माण में लगना चाहिए तथा अपने कर्त्तव्य से कतई विमुख नहीं होना चाहिए।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

बाल-दिवस

भोले भाले बालक सारे। हैं चाचा नेहरू के प्यारे॥
सूरज चन्दा बन कर चमकें—
दूर करें हम अँधियारों को।
नील गगन के आँचल से हम—
लाएँ चाँद सितारों को॥
देश की नैया के बनें खिवैया—
हम भारत के कृष्ण कन्हैया॥
अमन-चैन की सरिता बहाएँ—
भारत के हर घर हर द्वारे।
भोले भाले बालक सारे। हैं चाचा नेहरू के प्यारे॥

देशद्रोह गद्दारों को हम—
वसुन्धरा से मिटाएँगे।
राष्ट्र-प्रेम के मधुर गीत हम—
मिल जुल कर सब गाएँगे।
वीर भरत बन जाएँगे हम—
शेरों को गोद खिलाएँगे।
मातृ-भूमि पर नित बलि जाएँ—
शुभ पावन हों कर्म हमारे।
भोले भाले बालक सारे। हैं चाचा नेहरू के प्यारे।।

मुक्तक

वतन की खातिर जीते हैं, जीते जाएँगे—
दुखते हुए दिलों के, ग़म पीते जाएँगे,
पर आज के दिन हमने, यह कसम खा ली है—
भारत के नव-निर्माण में, हम सब जुट जाएँगे।

आराम है हराम

आगे बढ़ना सीखा हरदम, आगे बढ़ते जाएँगे।
भारत भू के हर उपवन में सुरभित सुमन खिलाएँगे।।
आराम है हराम ! आराम है हराम !!

मेहनत कर तस्वीर बदल दें, सारे हिन्दुस्तान की।
हिन्दू मुस्लिम सिक्ख ईसाई करें रक्षा देश महान की।।
ममता समता सींच-सींच कर, वीराने महकाएँगे।
भारत की पावन धरती को नूतन स्वर्ग बनाएँगे।।
आँख उठाए जो भारत पर, उसे फैंक कर जाएँगे।
भारत भू के हर उपवन में सुरभित सुमन खिलाएँगे।।
आराम है हराम ! आराम है हराम !!

फौलादी हैं बाहें अपनी और सीने चट्टान हैं।
अंगारों पर हँसते चलें हम वीरों की सन्तान हैं।।
जागा हिन्द का बच्चा-बच्चा, जागा मजदूर-किसान है।
कदम मिला कर बढ़ गया देखो, सारा हिन्दुस्तान है।।
अँधियारी काली रातों को, सोनिल भोर बनाएँगे।।
भारत भू के हर उपवन में, सुरभित सुमन खिलाएँगे।
आराम है हराम ! आराम है हराम !!

तुम्हें कसम है बाल गोपालो, गंगा माँ के पानी की।
महाराणा प्रताप, शिवाजी, झाँसी वाली रानी की ।।
तुम्हें कसम है भारत वालो, गीता, वेद, कुरान की ।।
भारत का उत्थान करो अब कसम तुम्हें ईमान की ।।
ढोंगी, पाखण्डी, कपटी यहाँ, नहीं पनपने पाएँगे।
भारत भू के हर उपवन में, सुरभित सुमन खिलाएँगे ।।
आराम है हराम ! आराम है हराम !!

सन ऑफ इण्डिया

(गीत—शकील बदायूनी)

नन्हा मुन्ना राही हूँ देश का सिपाही हूँ
बोलो मेरे संग जय हिंद जय हिंद जय हिंद-2
रास्ते पे चलूँगा न डर-डर के चाहे मुझे जीना पड़े मर-मर के
मंजिल से पहले न लूँगा कहीं दम आगे ही आगे बढ़ाऊँगा कदम
दाहिने बाँये दाहिने बाँये नन्हा मुन्ना राही हूँ···
धूप में पसीना मैं बहाऊँगा जहाँ हरे हरे खेत लहरायेंगे वहाँ
धरती पे फाके न पायेंगे जनम आगे बढ़ाऊँगा कदम
दाहिने बाँये दाहिने बाँये नन्हा मुन्ना राही हूँ···
नया है जमाना मेरा मेरी नई है डगर
देश को बनाऊँगा मशीनों का नगर
भारग किसी से रहेगा नहीं कम
आगे ही आगे बढ़ाऊँगा कदम
बड़ा होकर देश का सहारा बनूँगा दुनिया की आँखों का तारा बनूँगा
रखूँगा ऊँचा तिरंगा परचम
आगे ही आगे बढ़ाऊँगा कदम
शांति की नगरी है मेरा यह वतन
सबको सिखाऊँगा मैं प्यार का चलन
दुनिया में गिरने न दूँगा कहीं बम
आगे ही आगे बढ़ाऊँगा कदम
दाहिने बाँये दाहिने बाँये नन्हा मुन्ना राही हूँ
दुनिया में गिरने न दूँगा कहीं बम आगे ही आगे बढ़ाऊँगा
दाहिने बाँये, दाहिने बाँये नन्ना मुन्ना राही हूँ···

बालक

सुन ले बापू ये पैगाम, मेरी चिट्ठी तेरे नाम
चिट्ठी में सबसे पहले, लिखता तुझको राम राम
सुन ले बापू···

काला धन काला व्यापार, रिश्वत का है गरम बाजार
सत्य अहिंसा करे पुकार टूट गया चरखे का तार
तेरे अनशन सत्याग्रह के, बदल गए असली बर्ताव
एक नई विद्या है उपजी जिसको कहते हैं घेराव
तेरी कठिन तपस्या का ये कैसा निकला है अंजाम
चिट्ठी में सबसे पहले लिखता तुझको राम-राम
प्रान्त-प्रान्त में टकराता है, भाषा पर भाषा की लात
मैं पंजाबी तू बंगाली कौन कहे भारत की बात
तेरी हिन्दी के पाँवों में अंग्रेजी ने डाली डोर
तेरी लकड़ी ठगों ने ठग ली, तेरी बकरी ले गए चोर
साबरमती सिसकती तेरी, तड़प रहा है सेवाग्राम
चिट्ठी में सबसे पहले लिखता तुझको राम राम
सुन ले बापू···

राम राज की तेरी कल्पना उड़ी हवा में बन के कपूर
बच्चों ने पढ़ना-लिखना छोड़ा तोड़फोड़ में हैं मगरूर
नेता हो गये दल बदलू देश की पगड़ी रहे उछाल
तेरे पूत बिगड़ गये बापू दारू बंद हुई हलाल
तेरे राजघाट पर फिर भी, फूल चढ़ते सुबहो-शाम
चिट्ठी में सबसे पहले, लिखता तुझको राम-राम
सुन ले बापू···

हकीकत

कर चले हम फिदा जानो-तन साथियो
अब तुम्हारे हवाले वतन साथियो
सांस थमती गई नब्ज जमती गई

कट गए सर हमारे तो कुछ गम नहीं
सर हिमालय का हमने न झुकने दिया
मरते मरते रहा बाँकपन साथियो
तेरी पूजा की थाली में लाए हैं हम
फूल हर रंग के आज हर डाल से

नाम कुछ भी सही पर लगन एक है
जोत से जोत दिल की जगा जायेंगे
ए वतन ए वतन···
हम रहें न रहें इसका कुछ गम नहीं
तेरी राहों को रोशन तो कर देंगे हम
खाक में मिल गई जिंदगी तो क्या
माँग तेरी सितारों से भर देंगे हम
रंग अपने लहू का तुझे दे के हम
तेरे गुलशन में रौनक बढ़ा जायेंगे
ए वतन ए वतन···
हम वह जांबाज हैं जो तेरे नाम पे
निकले मैदान में मिट्टी तेरी चूमने
तुझको आजाद देखें इसी चाह में
सूलियों पे चढ़ जायेंगे झूम के
शमा जलती रहे तेरी हर दौर में
तेरे परवाने खुद को मिटा जायेंगे
ए वतन ए वतन···
तेरी जानिब उठी जो कहर की नजर

आने वाले कल की तुम तस्वीर हो

आने वाले कल की तुम तस्वीर हो
नाज करेगी दुनियाँ तुम पर दुनियाँ की तस्वीर हो
तुम हो कुटिया के दीपक
जग में उजियाला कर दोगे
भोली भाली मुस्कानों से सबकी झोली भर दोगे
हँसते चलो जमाने में तुम चलता हुआ एक तीर हो
नाज करेगी दुनियाँ तुम पर दुनियाँ···
नाम न लेना रोने का रोतों को हँसाने आए हो
नहीं रूठना कभी कि तुम रूठों को मनाने आये हो
जो रूठी तकदीर बदल दे तुम ऐसी तस्वीर हो
नाज करेगी दुनियाँ तुम पर दुनियाँ···
एक दिन होती जमीं आसमाँ चाँद सितारे हाथों में
होगी एक दिन बागडोर भारत की तुम्हारी हाथों में
तोड़ सके न दुश्मन जिसको तुम ऐसी जंजीर हो
नाज करेगी दुनियाँ तुम पर दुनियाँ···

क्रिसमस डे : 25 दिसम्बर

उत्सव की तैयारी

इस दिन ईसा का एक अच्छा चित्र मँगवा कर सभा का आयोजन किया जाए। सभा में ईसाई धर्म के जानकार व्यक्ति को आमन्त्रित किया जाय ताकि अधिक से अधिक छात्रों को लाभ मिल सके। शिक्षाएँ खास रूप से छात्रों को समझाकर इस महापुरुष जैसी आदतें डालने का प्रयास कराया जाय ताकि राष्ट्र-निर्माण में अधिक से अधिक योग मिल सके।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व रोमियों का राज्य बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ था। फिलिस्तीन पर भी रोमियों का अधिकार था। रोमी अपनी सैनिक-शक्ति और शासन-प्रबन्ध के लिए प्रसिद्ध थे। रोमी लोग बहुत-से देवी-देवताओं की पूजा करते थे। रोमी बड़ी शक्ति से यहूदियों पर राज्य करते थे। यहूदियों के धर्मशास्त्र में लिखा था कि एक समय ईश्वर की तरफ से राजऋषि पैदा होगा और वह 'ईश्वर का राज्य' इस संसार में स्थापित करेगा। उस राजऋषि की पदवी 'मसीह' होगी। यहूदी लोग राजऋषि के प्रकट होने की बड़ी उत्सुकता से बाट जोह रहे थे। उस समय रोमियों के अधिकार वाले यहूदियों की ऐसी परिस्थिति थी।

जन्म—महात्मा ईसा का जन्म आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व फिलिस्तीन के प्राचीन नगर येरूसलम के पास एक छोटे से गाँव बेथलेहम में हुआ था। इनके पिता यूसुफ, नसरथ नामक गाँव में रहते थे। परन्तु ईसा के जन्म के समय फिलिस्तीन में जन-गणना हो रही थी, और सब लोगों को आदेश मिला था कि जिस स्थान से उनके वंशज निकले थे, वहीं जाकर वे अपना नाम लिखवायें। यूसुफ दाऊद प्रसिद्ध वंश के थे और यह वंश पहले बेथलेहम में रहता था। अतः यूसुफ अपनी पत्नी मरियम को लेकर नसरथ से बेथलेहम पहुँचे। मरियम के प्रसव का समय नजदीक था, अतएव उसे सफर में बड़ा कष्ट हुआ और बेथलेहम पहुँचते ही प्रसव-वेदना होने लगी। इस छोटे से गाँव में इतने आदमी इकट्ठे हो गये थे कि यूसुफ और मरियम को सराय में जगह नहीं मिली। लाचार होकर वे एक सराय की घुड़साल की सफाई कर वहीं ठहर गये। इसी घुड़साल में विश्व के

कल्याणकर्त्ता ईसा का जन्म हुआ। ईसा मसीह मानव जाति के महान् उद्धारक थे। आज सारे संसार में करोड़ों नर-नारी उनके अनुयायी हैं। उनके उपदेशों ने मनुष्य को बर्बरता और अत्याचार के मार्ग से हटाकर उसे प्रेम, करुणा और भ्रातृत्व का मार्ग दिखलाया।

बचपन—महात्मा ईसा को बचपन में भी कई यातनाओं और कष्टों का सामना करना पड़ा। तथा जब ईसा के जन्म का समाचार उस प्रदेश के दुष्ट राजा को मिला तो उसके मन में यह आशंका उत्पन्न हुई कि कहीं यह बालक मेरा राज्य न छीन ले। अतः उसने कंस के समान अपने कर्मचारियों और सिपाहियों को आदेश दिया कि बेथलेहम में दो वर्ष के प्रत्येक छोटे बालक को मार डालो। यूसुफ को इस अमागुषिक आदेश की भनक पड़ते ही वह मरियम और ईसा को लेकर मिस्र की ओर चल पड़ा। यह यात्रा बड़ी लम्बी और खतरे से पूर्ण थी। परन्तु मार्ग में यूसुफ को एक धनी व्यापारी मिल गया जो अपने कारवाँ सहित व्यापार के लिए मिस्र जा रहा था। इस व्यापारी ने बड़े स्नेह से यूसुफ, मरियम और उनके शिशु के लिए सवारी की व्यवस्था कर दी। राजा हिरोद की मृत्यु के बाद यूसुफ का परिवार वापस नसरथ आ गया। वहीं पर ईसा का बचपन बीता।

शिक्षा—नसरथ गाँव के बालकों के साथ ही ईसा पढ़े और उन्हीं के साथ खेले। घर में वे माता-पिता के आज्ञाकारी पुत्र थे। वे घर के काम-काज में माता की सहायता किया करते थे। अपने पिता यूसुफ से उन्होंने सुथारी का काम सीख लिया। उनके शील स्वभाव का सब लोगों पर बड़ा असर पड़ा। वे कभी क्रोध या जिद्द नहीं करते थे, न कभी झूठ बोलते थे, और न कभी किसी को अपशब्द ही सुनाते थे। स्वभाव से वे अत्यन्त मृदुल और निःस्वार्थ थे।

धार्मिक प्रवृत्ति—महात्मा ईसा को बचपन से ही धार्मिक कृत्यों तथा चर्चा का शौक था। जब वे बारह वर्ष के हो गए तो उनके माता-पिता उन्हें लेकर जेरूसलम गये। वहाँ यहूदियों का बड़ा त्यौहार था। यास्का की भीड़ में ईसा का साथ माता-पिता से छूट गया, तब माता-पिता चिन्तित हुए। सब तरफ खोजने पर अन्त में वे मन्दिर में बैठे हुए चर्चा करते हुए मिले। उन्हें बच्चे की दार्शनिक जिज्ञासा को देखकर आश्चर्य हुआ। मरियम ने ईसा से कहा, "बच्चे, तुम हमें छोड़कर क्यों आये?" ईसा ने सरलता से उत्तर दिया, "तुम मेरे लिए क्यों खोज कर रहे थे? क्या तुम नहीं जानते थे कि मैं यहाँ अपने परम पिता परमेश्वर के कार्य में व्यस्त हूँ?" माता-पिता इस रहस्यमय उत्तर का अर्थ समझ नहीं पाये और फिर तीनों जेरूसलम से नसरथ चले आये।

ईसा के 12 वर्ष से लेकर 30 वर्ष के बीच के समय (18 वर्ष) के बारे में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। जब इनकी आयु 30 वर्ष की थी, तब इन्होंने जॉन नामक महात्मा से दीक्षा ग्रहण की, जो अत्यन्त सादा जीवन व्यतीत करते थे तथा वन्य भोजन करते थे। वे (जॉन) ईसा के सम्बन्धी थे। महात्मा जॉन अभिमानी अमीरों और ढोंगी धर्म गुरुओं को खरी-खरी सुनाते थे। हजारों व्यक्तियों ने उनके उपदेशों से प्रभावित

होकर उनके सामने अपने पापों का प्रायश्चित्त किया और उनसे दीक्षा ग्रहण की। ईसा भी इनके पास दीक्षा ग्रहण करने गए। तब जॉन ने कहा, "तुम तो महान हो, मुझे तुमसे दीक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता है, तुम मुझसे क्या दीक्षा ग्रहण करने आये हो?" ईसा ने उत्तर दिया, "इस समय यही उचित है। हम सबको प्रत्येक धार्मिक कार्य पूरा करना चाहिए।" जोर्डन नदी में डुबकी लगाकर ईसा ने दीक्षा ग्रहण की। इसके बाद वे पानी से बाहर निकल कर प्रार्थना कर रहे थे कि उन्हें सर्वोच्च ज्ञान की प्राप्ति हो गई।

अब ईसा अपने जीवन की उद्देश्य-पूर्ति पर चिन्तन करने लगे। वे 40 दिन तक जंगल में रहे। न उन्होंने कुछ खाया, न पिया, केवल प्रार्थना और चिन्तन में व्यस्त रहे। 40 दिन के उपवास के बाद उन्हें भूख लगी। जैसे बुद्ध के सामने ज्ञान-प्राप्ति के समय विभिन्न प्रकार के प्रलोभन और आकांक्षाएँ आयी थीं, वैसे ही ईसा के सामने भी आयीं। शैतान ने जिसने मनुष्य को सदा ही पथ-भ्रष्ट करना चाहा है, उन्हें भाँति-भाँति के प्रलोभन दिये, तरह-तरह से उन्हें गुमराह करने की कोशिश की; लेकिन आखिर शैतान ने हार मान ली क्योंकि वे शैतान की प्रत्येक बात का उत्तर ईश्वर को मद्दे नजर रखते हुए देते कि जिससे वह दूसरा प्रश्न करने में अड़चन महसूस करने लगा। फिर उन्होंने जंगल से लौटकर भोजन किया तथा मानव को ईश्वर का सन्देश देने को तैयार हो गए। वे शान्तिपूर्ण वातावरण में चिन्तन करने के लिए पर्वत पर चढ़ गए, तथा वहीं पर उनके शिष्य आ गए तथा वहीं पर ईसा ने उन्हें उपदेश दिया जिसका सार यह है—

उपदेश—"धन्य हैं वे जिनका मन शुद्ध है; क्योंकि उन्हें परमेश्वर के दर्शन होंगे।"

"धन्य हैं वे जो दयालु हैं; क्योंकि वे ईश्वर की दया प्राप्त करेंगे।"

"धन्य हैं वे जिन्हें धर्म की भूख है; क्योंकि उनकी भूख तृप्त हो जायेगी।"

"धन्य हैं वे जो नम्र हैं, क्योंकि उन्हें स्वर्ग का राज्य मिलेगा।"

"धन्य हैं वे जो मेल कराने वाले हैं, वे ईश्वर की सन्तान कहलायेंगे।"

महात्मा ईसा के ये शब्द हैं, "जो तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे, उसके सामने अपना दूसरा गाल भी कर दो। जो तुमसे घृणा करे, उसका भला करो. जो तुमसे कठोर व्यवहार करता है, अत्याचार करता है, उसके भले के लिए ईश्वर से प्रार्थना करो ताकि तुम परमपिता परमात्मा की सन्तान कहलाओ। क्योंकि उसका सूर्य सज्जनों और दुर्जनों दोनों को प्रकाश देता है, तथा उसके मेघ न्यायी और अन्यायी सबके लिए बरसते हैं।"

आदर्श—ईसा क्षमाशील और पतितों की ओर सहानुभूति रखते थे। ईसा के बताये आदर्शों का अनुकरण करने से मनुष्य सांसारिक सन्तापों से मुक्त होकर परमपिता परमेश्वर से जा मिलता है और संसार-सागर को पार कर सकता है। महात्मा ईसा के ये महान् आदर्श हैं—

"यदि तुम मनुष्यों को उनकी भूलों के लिए क्षमा कर दोगे तो परमपिता परमेश्वर तुम्हारी गलतियाँ भी माफ कर देगा। यदि तुम माफ नहीं करोगे तो परमपिता

परमेश्वर तुम्हारी गलतियाँ भी माफ नहीं करेगा।"

"जब दान दो तब उसका ढोल न पीटो, जैसा कि ढोंगी लोग पीटते हैं ताकि लोग उनकी बड़ाई करें। तुम दान दो तो तुम्हारे बायें हाथ को भी यह पता न लगे कि दाहिना हाथ क्या कर रहा है।"

"कोई भी मनुष्य एक साथ दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता। या तो वह एक से प्रेम करेगा और दूसरे से घृणा, इसलिए मैं कहता हूँ, तुम अपने प्राणों की चिन्ता न करो कि हम क्या खायेंगे और क्या पियेंगे, न अपने शरीर की चिन्ता करो। क्योंकि यह परमपिता परमात्मा को ज्ञात है कि तुम्हें ये सब चीजें चाहिये। तुम तो ईश्वर के राज्य और धर्म की खोज में लगे रहो। ये सब वस्तुएँ तो तुम्हें स्वत: मिल जायेंगी। अस्तु, कल की चिन्ता न करो, क्योंकि कल का दिन अपनी चिन्ता आप कर लेगा, आज के लिए तो आज की ही चिन्ता बहुत है।"

"जो व्यवहार तुम दूसरे लोगों से चाहते हो, वैसा ही व्यवहार तुम दूसरों के प्रति करो। अच्छे वृक्ष के अच्छे फल लगते हैं बुरे के बुरे।"

"जो कोई मेरे उपदेश सुनेगा और उनके अनुसार आचरण करेगा, उसे मैं उस बुद्धिमान मनुष्य के समान मानूँगा जिसने कि चट्टान पर अपना मकान बनाया जो वर्षा, बाढ़ और आँधी आने पर भी नहीं गिरा।"

यहूदियों के प्राचीन धर्म के आधार थे 'न्याय और नियम।' लेकिन ईसा के उपदेशों के आधार थे 'प्रेम और क्षमा' उनका कहना था कि "पाप से घृणा करो पापी से नहीं।" नियम को कठोरता से लागू मत करो। एक बार भगवान् ईसा जेरुसलम के प्रसिद्ध मन्दिर में बैठे-बैठे उपदेश दे रहे थे। इतने में यहूदी एक व्यभिचारिणी स्त्री को लेकर आए और बोले, "हजरत मूसा का नियम तो यह है कि ऐसी स्त्री पर पत्थर बरसाने चाहिए। आप क्या कहते हो?" ईसा नीचे झुककर अपनी अँगुली से जमीन पर कुछ लिखने लगे, मानो उन्होंने सुना ही न हो। परन्तु जब बार-बार पूछा तो ईसा सिर उठाकर बोले, "तुम में से जो निष्पाप हो, वह इस स्त्री पर पहले पत्थर मारे।" यह कहकर ईसा फिर झुक गए और अभियोग लगाने वाले सब अपनी ही आत्मा के द्वारा दोषी ठहराये जाने पर एक-एक करके खिसक गए। ईसा अकेले रह गये। वह स्त्री उनके सामने खड़ी थी। जब उन्होंने सिर उठाकर देखा कि वहाँ और कोई नहीं है तो बोले, "हे स्त्री! वे तुझ पर अभियोग लगाने वाले कहाँ हैं? क्या किसी ने भी तुझे दोषी नहीं ठहराया है?" उसने कहा, "भगवन्! किसी ने नहीं।" ईसा ने कहा, "मैं भी तुझे दोषी नहीं ठहराता, जा अब पाप से बचना।"

एक और कहानी पापियों के प्रति उनके हृदय की सहानुभूति प्रकट करती है। ईसा हृदय की सरलता को बहुत महत्त्व देते थे। एक बार उनके शिष्य पूछने लगे— "ईश्वर की दृष्टि में कौन सबसे महान है?" ईसा ने एक बच्चे को बुलाया और कहा, "जो भी अपने आपको इस छोटे बच्चे के समान नम्र बनायेगा वही ईश्वर की दृष्टि में सबसे बड़ा माना जायेगा। ईसा को वे अभिमानी मनुष्य भी बिल्कुल पसन्द नहीं थे।

जिन्हें अपने धर्मात्मा होने का अभिमान हो। जब ईसा ने पर्वत पर उपदेश दिया था, तब उनकी आयु 30 वर्ष से कुछ अधिक थी। इसके बाद वे भिन्न-भिन्न स्थानों पर उपदेश देते रहे। दिनोंदिन उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई। उनके उपदेशों से श्रोतागण मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। वे सरल भाषा में व्याख्यान देते थे और अक्सर कहानियों द्वारा अपना अर्थ समझाते थे। कहते हैं उन्होंने अपनी आध्यात्मिक शक्ति से कई बीमारों को अच्छा किया।

मृत्यु—इन चमत्कारों से बहुत से लोगों को उन पर श्रद्धा हो गई। इसके विपरीत यहूदी-धर्मगुरु उनसे बहुत रुष्ट हो गये। उन्होंने ईसा के विरुद्ध मंत्रणा शुरू कर दी कि यह हमारे धर्म का शत्रु है। जैसे-जैसे इनका यश फैलने लगा, वैसे-वैसे उनके विरोधी भी उनके विनाश के लिए षड्यन्त्र रचने लगे। ईसा के मन में यह बराबर खटका था कि प्राण खतरे में हैं, फिर भी निर्भयता के साथ अपने उपदेशों का प्रचार करते रहे। पसोवर का त्यौहार नजदीक था। ईसा यह जानते थे कि यदि मैं जेरूसलम जाऊँगा तो मेरे शत्रु संगठित होकर मुझे फँसाने का प्रयत्न करेंगे। फिर भी उन्होंने जेरूसलम जाकर त्यौहार के समय उपदेश देने का निश्चय किया। उनके शिष्य सोचते थे कि यह जेरूसलम यात्रा उनकी विजय-यात्रा होगी। वास्तव में इस यात्रा ने एक विजय-यात्रा का रूप ले लिया। परन्तु ईसा का हृदय उदास था, उन्हें इन लोगों के भ्रमपूर्ण आत्म-विश्वास पर अफसोस हो रहा था, और उनसे भी ज्यादा उन लोगों की कट्टरता पर, जो उनके विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहे थे। ईसा ने जब यहूदियों के मुख्य मन्दिर के चौक में प्रवेश किया तब देखा कि ईश्वर की आराधना के स्थान को एक हाट बना दिया गया है जहां लोग बैल, भेड़, कबूतर आदि प्राणियों को बलिदान के लिए अत्यन्त ऊँचे भाव पर बेच रहे हैं। ईसा ने एक रस्सी का कोड़ा बनाया और सब जानवरों को चौक से बाहर भगा दिया और बेचने वाले मनुष्यों को बुरी तरह फटकार कर वहाँ से निकाल दिया और कहा, "हटाओ यह सब मेरे पिता परमेश्वर के घर को सौदेबाजी का स्थान मत बनाओ।" उनका रोष इतना प्रभावशाली था कि मन्दिर के धर्म-गुरु भी सहम गए! वहीं पर फिर प्रभु ने बीमारों और अपाहिजों का इलाज किया। इस प्रकार यशस्वी होकर ईसा मन्दिर से लौटे। जय-जयकार होने लगी। शहर के एक मकान की ऊपर वाली मंजिल में ईसा ने पसोवर का त्यौहार मनाया। यह उनका अन्तिम भोजन था। इसी समय बारह शिष्य मौजूद थे। उनको कहा कि मैं अब तुमसे विदा होने वाला हूं, और तुम में से ही एक धोखा देगा। इतने में जूडास नामक शिष्य ने कहा, "स्वामी, मैं तो वह नहीं हूं।" ईसा उदास होकर बोले, "अपने मुँह से ही तुमने कह दिया है।" फिर जूडास वहाँ से चला गया। और ईसा जैतून वाले पर्वत पर चले गए और व्यथित हृदय से ईश्वर से प्रार्थना करने लगे और अपने-आपको उसकी इच्छा पर सौंप दिया। इतने में जूडास सिपाहियों को लेकर आ गया। ईसा को पकड़ कर धर्मगुरुओं और पुरोहितों की सभा में लाया गया। फिलिस्तीन के रोमन शासक की स्वीकृति से मृत्युदण्ड दिया जाना स्वीकार किया गया। ईसा को पुलिस को सौंपा गया। सिपाहियों ने उसके साथ बड़ी निर्दयता का व्यवहार किया, ईसा के मुँह

पर थूका और तमाचे जमाये।

अब ईसा को क्रॉस पर लटका कर मृत्युदण्ड देना तय रहा। सबसे जघन्य जुर्म करने वाले हत्यारे और डाकुओं को इस प्रकार दण्डित किया जाता था। सिपाहियों ने तुरन्त दो बल्लियों को जोड़ कर क्रॉस तैयार किया। ईसा अपने क्रॉस को ऊठाकर मृत्यु-स्थान पर चले।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

ईसा मसीह-जयन्ती

मरियम के राजदुलारे, यूसुफ के नयन-सितारे।
पच्चीस दिसम्बर को मसीहा, बेतलहम में पधारे॥

पिता यूसुफ माँ मरियम, ग्राम नाज़रथ में रहते थे।
निज जन-गणना खातिर, बेतलहम आते रहते थे॥
जन-गणना के मेले में, भीड़ तो बेशुमार थी।
माँ-बाप अस्तबल में ठहरे, मजबूरी अपार थी॥
अस्तबल में ही मरियम ने, बालक को जन्म दिया रे।
पच्चीस दिसम्बर को मसीहा, बेतलहम में पधारे॥

यूसुफ-मरियम की हालत का, सुनाता हूं मैं तराना।
अरे नवजात बेटे को पड़ा, चरनी में सुलाना॥
लाचारी प्रसूता मरियम की, विषम विकट अनेक थी।
पूरे अस्तबल में अकेली, नारी वही एक थी॥
यूसुफ बेतलहम में, सात दिन फिरे मारे-मारे।
पच्चीस दिसम्बर को मसीहा, बेतलहम में पधारे॥

सात दिन बाद बालक का नाम-संस्कार कराया।
वही नवजात शिशु फिर, जीसस क्राइस्ट कहलाया॥
उस समय रोम में राजा, हेरोद राज करता था।
बड़ा अन्यायी पापी था, जन-मन उससे डरता था॥
जीसस-जन्म-खबर पाकर, पापी ने सितम गुज़ारे।
पच्चीस दिसम्बर को मसीहा, बेतलहम में पधारे॥

जीसस को ढूंढ़ने खातिर, उसने प्यादे भिजवाए।
यूसुफ-मरियम जीसस को, बचाकर मिश्र ले आए॥
हेरोद ने दो वर्ष तक के, रोमी बालक मरवाए।
बाल-मृत्यु आतंक से, रोम के नर-नारी थर्राए॥
अत्याचारी राजा हेरोद, स्वयं ही चल बसा रे।
पच्चीम दिसम्बर को मसीहा, बेतलहम में पधारे॥

हेरोद की मृत्यु होने, पर ईसु बेतलहम आए।
निज धर्म-कर्म चिन्तन से, अनुपम दीप जलाए।।
दीन-दुखियों को गले लगा कर, हर मानव की सेवा की।
आलौकिक अनुपम ज्ञान से, हरी विपदा वसुधा की।।
ईसाई धर्म की सरिता, मसीहा लाए हर द्वारे।
पच्चीस दिसम्बर को मसीहा, बेतलहम में पधारे।

जीओ और जीने दो सबको, मन का मनका फेर दो।
चपत कोई मुख पर मारे तो, दूसरा गाल फेर दो।।
धनलिप्सा के कीचड़ से, मानव का जीवन मोड़ दो।
सांसारिक चिन्ता के, उभरते सब छाले फोड़ दो।।
विश्वास की ज्योति जगाकर, हरने मन के अँधियारे।
पच्चीस दिसम्बर को मसीहा, बेतलहम में पधारे।।

शत्रु को प्यार से जीता, पापी को पुण्य से जीता।
बुरे को ज्ञान से जीता, झूठे को ध्यान से जीता।।
चोर को दान से जीता, कपट-छल प्रीत से जीता।
दुखिया शान्ति से जीता, विधर्मी प्रभु क्रान्ति से जीता।।
अन्धे, अपाहिज, कोढ़ियों के, प्रभु ने जीवन सँवारे।
पच्चीस दिसम्बर को मसीहा, बेतलहम में पधारे।।

मरियम के राजदुलारे, यूसुफ के नयन सितारे।
पच्चीस दिसम्बर को मसीहा, बेतलहम में पधारे।।

मकर संक्रान्ति : 14 जनवरी

उत्सव की तैयारी

(1) उत्सव दिवस के दो दिन पूर्व सभी छात्रों व शिक्षकों को उत्सव के कार्यक्रम की सूचना देनी चाहिए जिससे वे उत्सव में बोली जाने वाली सामग्री का संकलन व बोलने की तैयारी कर सकें।

(2) उत्सव से सम्बन्धित महापुरुष। पर्व पर छात्रों को प्रेरित करने हेतु सभास्थल पर आदर्श वाक्य लिखने व महापुरुष का चित्र लगाना चाहिए।

(3) उत्सव में बोली जाने वाली सामग्री का संकलन कर विद्यालय पत्रिका में उसे स्थान देना चाहिए।

(4) कार्यक्रम का संयोजन छात्रों की एक कार्यक्रम समिति द्वारा करवाया जाना चाहिए।

(5) मकर संक्रांति का भौगोलिक, धार्मिक व खगोल विद्या सम्बन्धी महत्त्व बताना चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

पौष या माघ मास में 14 जनवरी को सूर्य मकर राशि पर आ जाता है। इस दिन को संक्रान्ति प्रवेश अवधि अथवा संक्रान्ति कहते हैं। संकान्ति का हिन्दू समाज में बड़ा महत्त्व है। यह पर्व सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। इस दिन गंगा-यमुना या अन्य तीर्थ-स्थानों पर स्नान करके दान आदि देना, धार्मिक पहलू से श्रेयस्कर समझा जाता है। परिवार का, बच्चे से लेकर बड़े तक, हर व्यक्ति अपने से बड़ों से आशीर्वाद एवं अपने छोटों से आदर-सम्मान पाता है। पुत्र-बधू सास-ससुर-ज्येष्ट एवं अन्य सम्बन्यिों से विशेष हार्दिक स्नेह एवं आशीर्वाद पाती हैं।

कन्याओं एवं अविवाहित बालिकाओं को माता-पिता, भाई-भाभी, चाचा-चाची, ताऊ-ताई, दादा-दादी आदि द्वारा विशेष रूप से आदर दिया जाता है। छोटे बालकों को सभी निजी सम्बन्धियों द्वारा हार्दिक स्नेह प्रदान किया जाता है। यदि वास्तव में सच पूछा जाय तो यह त्यौहार हिन्दू समाज में प्रेम की गंगा बहाने का सच्चा प्रतीक है।

मकर संक्रांति के एक दिन पूर्व, सफेद तिल, काले तिल, भुने हुए तिल, आँटे एवं मूंग की दाल के लड्डू बनाये जाते हैं जिन्हें बड़े प्रेम-भाव से पड़ोसियों व सम्बन्धियों में बाँटा जाता है। संक्रांति की पूर्व सन्ध्या को मेहँदी रचाई जाती है। बालक-बालिकाएँ व महिलाएँ प्रेम-भाव से मेहँदी रचा कर संक्रान्ति का सत्कार करते हैं। घर का सारा वातावरण आमोद-प्रमोदमय दृष्टिगोचर होता है। स्त्रियाँ अपने मनमुटाव भुलाकर, अपने से बड़ों का हर प्रकार से हार्दिक आदर-सत्कार व सम्मान करती हैं। बहू, सास-ससुर के चरण-स्पर्श कर, उनका आशीर्वाद पाकर अपने को भाग्यवती होने का गौरव अनुभव करती हैं।

संक्रान्ति के दिन प्रातः मूंग-चावल की खिचड़ी पकाई जाती है जिसे आदर सहित ब्राह्मणों और अपंग-अपाहिजों में सेवा-भाव से बाँटा जाता है। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को प्रातः भोर का तारा उदय होते ही उठा दिया जाता है। दैनिक क्रिया से निपटने के बाद उसे स्नान कराया जाता है। संक्रान्ति के दिन हर व्यक्ति के लिए स्नान करना आवश्यक है। विना स्नान करे घर के किसी भी सदस्य को भोजन नहीं परोसा जाता। तन, मन और कर्म की शुद्धता पर इस दिन विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है।

गाँव के लोग प्रातः भोर पड़ने से पूर्व उठते हैं। वे अपने-अपने घरों में कन्डों व उपलों के बड़े जगरे लगाते हैं। जगरे पर पानी गर्म किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को पहले गर्म पानी से स्नान कराया जाता है फिर उसे गर्मागर्म हलवा खिलाया जाता है।

मकर संक्रान्ति के 300 नेग हैं, जिन्हें बड़ी सावधानी से निभाया जाता है। लड़की की ससुराल में तिल के लड्डू, मिठाई, मेवे एवं श्रद्धानुसार वस्त्र आदि भेजे जाते हैं। देवर को भाभी स्नेहपूर्वक घेवर खिलाती है। देवर भाभी को चूड़ियां दान करता है। भाभी अपनी ननद को आदर-सम्मानपूर्वक स्नेह से भोजन कराती है तथा उसे श्रद्धानुसार दान देती है। सास अपनी बहुओं को वस्त्र एवं आभूषण दान करती है। बहू अपने ससुर ज्येष्ठ के पांव लगती है, उन्हें हार्दिक सम्मान देती है। ससुर व ज्येष्ठ बहू को आशीर्वाद देते हैं। बहू उन्हें जलेबी व दही खिलाती है। कन्याओं का विशेष ध्यान रखा जाता है। उन्हें मान-सम्मान सहित मिठाई एवं वस्त्र प्रदान किये जाते हैं।

पत्नी पति को मलाई व रबड़ी खिलाती है तथा पाँच वस्त्र प्रदान करती है। पति के पाँव धोकर उसे अपने हाथों से मोजे-जूते पहनाती है। बहू सास की पीठ मलती है, उसे स्नान कराती है, तथा मेवे, मिठाई और रुपये दान करती है। बहू सास के पाँव लग कर आशीर्वाद लेती है। बहू ज्येष्ठ को गर्म दूध पिलाती है तथा गिलास दान करती है। ज्येष्ठ व ससुर को वहू स्नान कराती है, उनकी धोती निचोड़ती है तथा उन्हें नई धोती देती है। इस अवसर पर ब्राह्मणों को विशेष रूप से दान दिया जाता है।

सोए हुए ससुर व ज्येष्ठ को जगाना—ससुर व ज्येष्ठ पहले चारपाई पर सो जाते हैं, बहू उनकी चारपाई के चारों पायों पर नारियल मारकर आवाज करती है जिससे वे उठ जाते हैं। फिर उन्हें कम्बल, रजाई, शाल आदि भेंट किये जाते हैं। ससुर व ज्येष्ठ बहू को मेवे, मिठाई और रुपये देकर उसे आशीर्वाद देते हैं।

रूठी सास को मनाना—सास रूठ कर घर से इधर-उधर पास-पड़ौस में चली जाती है या छुप जाती है। बहू सास को आदरपूर्वक रुपये, वस्त्र आदि देकर मनाती है। सास मान जाती है, घर का सारा वातावरण आमोद-प्रमोदमय हो जाता है।

सास को सीढ़ी पर चढ़ाना व उतारना—बहू अपनी सास को सम्मान देने के लिए सीढ़ी पर चढ़ाती है। सीढ़ी पर सास के हर कदम पर रुपया गिन्नी रखी जाती हैं फिर इसी क्रम से रुपया या गिन्नी वापिस उतरते समय रखकर सास का सम्मान किया जाता है। बहू फिर अपनी सास के पाँव दबाती है, सास उसे आशीर्वाद देकर रुपये व आभूषण दान करती है। यों सारे परिवार में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है। सारे का सारा दिन बड़े आमोद-प्रमोद में व्यतीत हो जाता है।

उपर्युक्त मनोरंजन खेलों के बाद परिवार के सभी व्यक्ति आनन्दपूर्वक भोजन करते हैं। दिन-भर सतोलिया, गिली-डण्डा खेला जाता है और इस प्रकार से हँसी-खुशी मेल-मिलाप की सुहानी बेला में यह त्यौहार मनाया जाता है। अब आप भली-भाँति समझ गए होंगे कि मकर संक्रान्ति का हिन्दू-समाज में कितना महत्त्व है।

('मकर संक्रान्ति के सम्बन्ध में यहां यह लेख अति आवश्यक है, क्योंकि इस पर्व के सामाजिक एवं धार्मिक महत्त्व पर पाठकों को अन्यत्र जानकारी मिलना प्राय: दुर्लभ ही है। अब आइए इसी महत्त्वपूर्ण वर्ष पर अपनी हृदय-तंत्री के तारों पर एक संगीत भी झंकारते चलें—)

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

स्नेह-प्यार का द्योतक है, यह त्यौहार मकर संक्रान्ति।
हम प्यार से मिलते सबसे, नहीं रखते दिल में भ्रान्ति॥

गंगा स्नान करके हम—
तन-मन निर्मल करते हैं,
स्नेह सात्विकता के बन्धन में—
जीवन उज्ज्वल करते हैं,
हम दान-दक्षिणा देकर—
पाते हैं मन की शान्ति,

स्नेह-प्यार का द्योतक है, यह त्यौहार मकर संक्रान्ति।
हम प्यार से मिलते सबसे, नहीं रखते दिल में भ्रान्ति॥

भाभी खिलाती घेवर—
देवर सम्मान करते हैं,
स्नेह की नदिया में सब—
मिलकर स्नान करते हैं,
यह पावन पर्व हमारा—
हरता हर मन की अशान्ति,

स्नेह-प्यार का द्योतक है, यह त्यौहार मकर संक्रान्ति।
हम प्यार से मिलते सबसे, नहीं रखते मन में भ्रान्ति ॥

हलवा लड्डू खाकर हम—
दिन भर नाचें गाएँगे,
अपनी भाभी खातिर फिर—
खनकती चूड़ी लाएँगे,
मैया सीढ़ी पर चढ़ेगी—
सुख अमन की बरसे शान्ति,

स्नेह-प्यार का द्योतक है, यह त्यौहार मकर संक्रान्ति।
हर प्यार से मिलते सबसे, नहीं रखते दिल में भ्रान्ति ॥

हम सब मिल-जुलकर के—
घर-घर धूम मचाएँगे,
मिला कर कन्धे से कन्धा—
अमन के गीत गाएँगे,
मिटाएँ ऊँच-नीच के बन्धन—
लाएँ हम नूतन क्रान्ति,

स्नेह-प्यार का द्योतक है, यह त्यौहार मकर संक्रान्ति।
हम प्यार से मिलते सबसे, नहीं रखते दिल में भ्रान्ति ॥

विवेकानंद-दिवस : 16 जनवरी

उत्सव की तैयारी

(1) उत्सव दिवस के दो दिन पूर्व सभी छात्रों व शिक्षकों को उत्सव कार्य-क्रम की सूचना देनी चाहिए, जिससे वे उत्सवों में बोली जाने वाली सामग्री का संकलन व बोलने की तैयारी कर सकें ।

(2) उत्सव सम्बन्धित महापुरुष । पर्व पर छात्रों को प्रेरित करने हेतु सभा-स्थल पर आदर्श वाक्य लिखने व महापुरुष का चित्र लगाना चाहिए ।

(3) उत्सव में बोली जाने वाली सामग्री का संकलन कर विद्यालय पत्रिका में उसे स्थान देना चाहिए ।

(4) कार्यक्रम का संयोजन छात्रों की एक कार्यक्रम समिति द्वारा करवाया जाना चाहिए।

(5) स्वामी विवेकानंद जी के जीवन-दर्शन व जीवन-झाँकी के क्रम में विशेष कार्यक्रम रखे जाने चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 16 जनवरी सन् 1863 ई० को कलकत्ता के एक सम्पन्न कायस्थ घराने में हुआ था । उनके पिता विश्वनाथ दत्त नगर के प्रसिद्ध वकील थे। उनकी माता भुवनेश्वरी एक धर्मपरायण महिला थीं। उनका बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ था ।

बालक नरेन्द्र को माता-पिता ने बड़े लाड़-प्यार से पाला । पढ़ाई-लिखाई में भी उनकी गति बराबर अच्छी रही । एण्ट्रेंस परीक्षा में अपने स्कूल से केवल वे ही उस वर्ष प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे। बाद में उन्होंने कॉलेज में पढ़ कर बी० ए० किया । कॉलेज में पढ़ते समय उनकी व्याख्यान देने में बड़ी रुचि थी । अपने कॉलेज में उन्होंने एक व्याख्यान समिति भी बनायी थी । संगीत में भी उनकी रुचि थी । ब्रह्मसमाज की बैठकों में उनके भजन बहुधा लोगों को मुग्ध कर लेते थे । उनका शरीर स्वस्थ, सुगठित तथा सुन्दर था । कुश्ती, दौड़, घुड़दौड़ और तैराकी आदि की प्रतियोगिताओं में वे उत्साह-पूर्वक भाग लेते थे ।

युवक नरेन्द्र अक्सर धार्मिक प्रश्नों में विचार मग्न रहते थे । पाश्चात्य विज्ञान और दर्शन का भी उन्होंने अध्ययन किया था । किन्तु उनके जिज्ञासु मन को शान्ति नहीं मिल रही थी । ब्रह्मसमाज की बैठको में बराबर भाग लेते थे, किन्तु इससे भी उन्हें संतोष नहीं हो रहा था । जीवन के पूर्व हम कहाँ थे ? मृत्यु होने पर कहाँ जायेंगे । सृष्टि कोई घटना है या रचना ? क्या इसका कोई निर्माता है ? परमात्मा क्या है ? है भी या

नहीं ? इत्यादि प्रश्न उनके मन में उठा करते थे, पर कोई समाधानकारक उत्तर उन्हें नहीं मिल रहा था।

उन्हीं दिनों रामकृष्ण परमहंस दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में पुजारी थे। जन-साधारण को उनके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। एक दिन तरुण नरेन्द्र भी उनके पास पहुँचे पर श्रद्धाभाव से नहीं वरन् केवल कौतूहल से प्रेरित होकर। स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस से अपनी पहली भेंट का वर्णन इस प्रकार किया है, "वे बिलकुल साधारण आदमी दिखाई पड़ते थे। उनके रूप में कोई विशेष आकर्षण नहीं था। बोली बहुत सरल और सीधी थी। मैंने सोचा कि क्या यह संभव है कि वे सिद्ध पुरुष होंगे। मैं उनके पास पहुंचा और सीधे ही प्रश्न किया—"महाराज, क्या आप ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं?" उन्होंने बड़े शान्त भाव से कहा—"हाँ!" फिर मैंने पूछा—"क्या आपने उसे देखा है।" जवाब मिला—"हाँ देखा है और देख रहा हूं, वैसे ही जैसे तुम्हें या उस दीवार को।" मैंने इस प्रकार के प्रश्न पहले भी कई लोगों से किए थे परन्तु किसी ने ऐसा निर्भीक और स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। मुझे विस्मय हुआ। पुनः मैंने केवल इतना पूछा—"तो क्या आप किसी दूसरे को भी परमात्मा दिखा सकते हैं?" परमहंस ने मुस्कराकर अत्यन्त शान्त भाव से कहा—"हाँ, यदि कोई देखने वाला हो।" मैं कुछ और न पूछ सका। मुझ पर उनके शब्दों का गहरा प्रभाव पड़ा।

नरेन्द्र ने बी० ए० पास कर कानून का अध्ययन आरम्भ किया। इसी बीच उनके पिता का देहावसान हो गया। नरेन्द्र पर आपत्तियाँ आ पड़ीं। हड़बड़ाकर रामकृष्ण के पास पहुँचे और बोले, "आप अपनी माताजी से मेरे लिए प्रार्थना कीजिए, मुझसे कुटुम्ब का कष्ट नहीं देखा जाता।" उत्तर में उन्होंने इतना ही कहा कि "जा और माता के सामने खड़े होकर जो चाहे वह माँग ले।" नरेन्द्र पर ब्रह्म-समाज का प्रभाव था, मूर्ति में उन्हें विश्वास नहीं था, पर स्वार्थवश वे गये। किन्तु जब माँगने के लिए मुँह खोला तो विवेक, ज्ञान और वैराग्य का ही वरदान माँग बैठे। अपने तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति के लिए कुछ माँगने की उनकी इच्छा ही नहीं हुई। लौटने पर रामकृष्ण ने पूछा भी—"जगदम्बा से तुमने क्या माँगा?" नरेन्द्र ने उत्तर दिया—"जगदम्बा से दुनिया की चीजें माँगना मुझे नहीं सूझा।" रामकृष्ण ने हँसकर कहा—"मैं जानता था, तू तुच्छ वस्तु माता से नहीं माँगेगा।" नरेन्द्र के मन पर इस भेंट का भी बड़ा प्रभाव पड़ा। वे उस समय तो घर लौट गए, पर उनका मन अब सांसारिक जीवन में लगता न था। वकालत की पढ़ाई-लिखाई पिछड़ने लगी। माँ विवाह के लिए आग्रह कर रही थीं। पर जो संसार से ही विरक्त होता जा रहा हो, वह विवाह के बन्धन में कैसे पड़ता? आखिर एक दिन नरेन्द्र ने घर छोड़ दिया और सदा के लिए रामकृष्ण के पास जा पहुंचे। रामकृष्ण को एक सच्चा शिष्य मिल गया। नरेन्द्र अब संन्यासी हो गये और उनका नाम विवेकानन्द हो गया।

1886 में रामकृष्ण परमधाम सिधारे। विवेकानन्द ने रामकृष्ण का संदेश विश्व में फैलाने का व्रत लिया। इसके लिए वे 6 वर्ष तक संन्यासी के रूप में चारों ओर

घूमकर अपने ज्ञान की वृद्धि तथा आत्मिक शक्ति का संचय करते रहे। उसके बाद वे अपने संकल्प के अनुसार देश-विदेश में भारतीय धर्म और दर्शन के प्रसार के महान् कार्य में जुट पड़े। अपनी आध्यात्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में विवेकानन्द अपने-आपको रामकृष्ण परमहंस का चिरऋणी मानते थे। उन्होंने लिखा भी है—"यदि वास्तविक सत्य कुछ है और संसार में यदि दार्शनिकता के बारे में मैंने कुछ भी कहा है, तो उसका श्रेय उन्हीं को (रामकृष्ण परमहंस को) है---धर्म अनुभूति की वस्तु है, तर्क की नहीं।"

भारतीय जीवन-दर्शन तथा तत्वज्ञान से पश्चिमी देशों को परिचित कराने के लिए वे 31 मई सन् 1893 को बम्बई से रवाना हुए और संयुक्त राज्य अमेरिका के शिकागो नगर में होने वाले सर्व-धर्म-समेम्लन में सम्मिलित होने के लिए पहुंचे। उनके पास कोई परिचय-पत्र अथवा किसी संस्था की ओर से प्रतिनिधि-पत्र नहीं होने के कारण पहले तो उन्हें कोई उस महासभा में प्रवेश देने को तैयार नहीं हुआ, किन्तु अन्त में उनके दृढ़ संकल्प और विश्वास की विजय हुई, और उन्हें उक्त महासभा में बोलने का अवसर मिल गया। बस बोलने भर की देर थी श्रोताओं पर उनकी योग्यता और उनके व्यक्तित्व की धाक जम गयी। विवेकानन्द ने भारतीय धर्म की उदारता, सहिष्णुता तथा आध्यात्मिकता आदि गुणों की ऐसी सुन्दर और प्रभावमयी व्याख्या सुनायी कि सुनने वाले मन्त्रमुग्ध हो गए।

इस पहले ही व्याख्यान से स्वामीजी की कीर्ति सर्वत्र फैल गई। प्रायः सभी समाचारपत्रों ने स्वामीजी के व्याख्यानों की प्रसंशा की। 'न्यूयार्क हेरल्ड' ने लिखा, "सर्व-धर्म-सम्मेलन में सबसे महान् व्यक्तित्व विवेकानन्द का है। उनका भाषण सुन लेने पर अनायास यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि ऐसे ज्ञानवान् देश को सुधारने के लिए हमारे यहाँ से धर्म-प्रचारकों (मिशनरियों) को भेजना कितनी मूर्खता है।" सम्मेलन के सभापति ने भी अपने भाषण में कहा कि "जिस धर्म और देश के प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द हैं, वह देश निस्संदेह महान् धर्म-क्षेत्र है।"

अमेरिका के प्रवास में से समय निकालकर विवेकानन्द इंग्लैण्ड और स्वीट्जरलैण्ड की यात्रा भी कर आए। अगस्त 1895 में उन्होंने अमेरिका छोड़ा। जनवरी, 1897 में वे लंका की राजधानी कोलम्बो पहुंचे। इस समय तक उनका नाम संसार के हर कोने में फैल चुका था। अमेरिका की तरह इंग्लैण्ड आदि देशों में भी स्वामीजी के भाषणों की बड़ी धूम रही। इंग्लैण्ड में 'आत्म-ज्ञान' विषय पर उन्होंने जो भाषण दिया था, उसकी चर्चा करते हुए एक पत्र ने लिखा था कि "राजा राममोहनराय और केशवचन्द्र सेन के पश्चात् विवेकानन्द पहले भारतीय हैं, जिन्होंने अपने व्याख्यान द्वारा इस देश के लोगों पर इतना गहरा प्रभाव डाला है। उनका भाषण सचमुच बड़ा गम्भीर और मार्मिक था।"

कुछ ही दिनों में स्वामीजी के सदुपदेशों का विदेशों में इतना प्रभाव जम गया कि कई नर-नारी उनके शिष्य बन गये। इनमें कुमारी नोबल भी थीं, जो विवेकानन्द की अनुयायिनी बनकर 'भगिनी निवेदता' के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

कोलम्बो से विवेकानन्द भारत लौटे। देश-विदेशों में भारतीय संस्कृति और तत्त्वज्ञान का डंका बजाकर लौटने वाले इस महापुरुष के स्वागत में भारतीय जनता ने अपनी आँखें बिछा दीं। भारत लौटने पर भी स्वामीजी का सद्धर्मोपदेश का काम पूर्णवत् चलता रहा। देश में स्थान-स्थान पर वे गये और उन्होंने अन्धविश्वासों और रूढ़ियों से मुक्त भारतीय तत्त्वज्ञान और धर्म का ठीक-ठीक परिचय जनता को देने का प्रयत्न किया। स्वामीजी के व्याख्यानों में व्यावहारिक पक्ष पर अधिक ध्यान दिया जाता था। उन्होंने लोगों को आवश्यकता के अनुरूप ही धर्म-तत्त्व समझाये। इंग्लैण्ड और अमेरिका को उन्होंने संयम और त्याग का महत्त्व सिखाया तो भारतवासियों का ध्यान उन्होंने विशेष रूप से देश की आर्थिक और सामाजिक दुरवस्था की ओर खींचा। भारत में दिए गए अपने भाषणों में उन्होंने अधिक जोर समाज-सेवा पर दिया। एक संन्यासी को शान्ति के सम्बन्ध में उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था, "भाई, जिस शान्ति को तुम पाना चाहते हो, वह आँखें बन्द करने से नहीं मिलेगी। यदि तुम सच्ची शान्ति चाहते हो तो खुले नेत्रों से अपने आस-पास की दरिद्रता और दुःख से कराहती मानवता को देखो। यथाशक्ति उसकी सहायता करो। यदि लोगों के पास कपड़ा नहीं है तो कपड़े का प्रबन्ध करो। रोगों से सन्तप्त लोगों के लिए दवादारू का प्रबन्ध करो। यही परमात्मा की सच्ची सेवा है। मनुष्य का हृदय ईश्वर का सबसे बड़ा मन्दिर है। इसी मन्दिर में उसकी आराधना करनी चाहिये। इससे तुम्हें शान्ति मिलेगी।" सन् 1897 में जब प्लेग और अकाल का प्रकोप भारतवासियों को परेशान कर रहा था और हजारों व्यक्ति भूख और रोग के शिकार हो रहे थे, तब स्वयं स्वामीजी बड़ी तन्मयता के साथ लोगों की सेवा में जुटे हुए थे।

इस सेवा-कार्य को एक नियमित और व्यवस्थित रूप देने के लिए कलकत्ता लौटने पर विवेकानन्द ने अपने गुरु के नाम पर 'रामकृष्ण-मिशन' की स्थापना की। पहले तो संन्यासियों ने इस कार्य को दुनिया के बन्धन में फँसाने वाली वस्तु समझकर उसमें पड़ना अस्वीकार किया। पर अंत में वे सेवा का रहस्य समझकर इसमें भाग लेने के लिए तत्पर हो गए। आज रामकृष्ण-मिशन की शाखाएँ भारत के कोने-कोने में फैली हुई हैं और रोगी, भूखे, अपाहिज, अपढ़ और अछूतों की सेवा कर रही हैं। इस मिशन के अन्तर्गत पहला आश्रम कलकत्ता के निकट बेलूर में और दूसरा अल्मोड़ा जिले में मायावती नामक स्थान पर खुला।

स्वामीजी भारतीय दर्शन तथा तत्त्वज्ञान के अन्यतम व्याख्याता थे। उन्होंने वेदान्त की दार्शनिक विचारधारा को सामाजिक उपयोगिता की भूमि पर ला उतारा। अज्ञान, अन्धविश्वास, अशिक्षा, विदेशी अनुकरण, दासता, दुर्बलता आदि बुराइयों पर उन्होंने कठोरता से चोट की। दीर्घकालीन विदेशी प्रभुत्व में रहते-रहते भारतीयों के हृदय में हीनता की भावना ने जड़ पकड़ ली थी, उसे दूर करने के लिए उन्होंने आत्मवाद का प्रचार किया। उन्होंने बल देकर कहा कि वेदान्त पुरुषार्थ का समर्थक है, अकर्मण्यता का नहीं। अपने एक भाषण में उन्होंने कहा था—

"अद्वैतवाद हम लोगों को अपने को दुर्बल समझने का उपदेश नहीं देता, वरन् अपने को तेजस्वी, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ समझने का उपदेश देता है। हममें से प्रत्येक के अन्दर अनन्त शक्ति, अनन्त पवित्रता और अमरता का विशाल सिन्धु भरा हुआ है। हम लोगों को इस महामहिम आत्मा के प्रति विश्वास जगाना होगा, तभी बल आयेगा। तुम जो चिन्तन करोगे, वही बनोगे। अगर तुम अपने को दुर्बल समझोगे तो तेजस्वी कैसे बनोगे!"

देश की सामाजिक और आर्थिक दशा उस समय बुरी तरह से गिर रही थी, उसकी ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्होंने अपनी तेजस्वी वाणी में घोषणा की थी कि, "अब अधिक रोने-धोने का समय नहीं है। इस समय साहस और बल की आवश्यकता है। मैं ही ब्रह्म हूँ, इस ज्ञान की सहायता से स्वयं अपने पैरों पर खड़े होओ और फिर देखो कि अपने में कैसी अपूर्व शक्ति का संचार होता है।"

धर्म के नाम पर देश की दीन-हीन शोषित जनता को भुलावे में रखने का प्रयत्न करने वालों को भी ललकार कर उन्होंने सावधान किया और स्पष्ट शब्दों में कहा— "पहले रोटी, पीछे धर्म। जब तुम्हारे देशवासी भूखों मर रहे हैं, तब तुम उन्हें धर्म सिखा रहे हो, याद रखो! भूख की अग्नि को धर्म कभी शान्त नहीं कर सकता। मैं तुम्हें फिर याद दिलाता हूँ कि सबसे पहले तुम्हें अपने देश के असंख्य पतित भाइयों का उद्धार करना होगा।"

दो-ढाई वर्ष तक भारत में कार्य करने के बाद स्वामीजी को अपने विदेशी भक्तों के अनुरोध पर एक बार फिर इंग्लैण्ड और अमेरिका जाना पड़ा। लगभग एक वर्ष तक वहाँ उन्होंने लोगों को अध्यात्म का सन्देश सुनाया। अकेले सान्फ्रांसिस्को में ही उन्होंने पचास व्याख्यान दिये। अपने शिष्यों और भक्तों की सहायता से वहाँ वेदान्त-सोसायटी और शान्ति-आश्रम नाम की दो संस्थाएं भी स्थापित कीं जो आज भी बड़ा अच्छा काम कर रही हैं। वहाँ से स्वामीजी पेरिस के धार्मिक सम्मेलन में सम्मिलित होने गए। वहाँ से चलकर यूरोप के कई अन्य देशों की यात्रा करते हुए भारत लौटे।

स्वामीजी को अपने देश की मिट्टी और उसकी सन्तान से सच्चा प्रेम था। वे देश की तरुण पीढ़ी को शक्तिमान् देखना चाहते थे। देश के तरुणों को सम्बोधित कर वे प्रायः कहा करते थे कि "मेरे नवयुवक मित्रो, बलवान बनो। भगवद्गीता के स्वाध्याय से पहले अपने शरीर और मन को दृढ़ और पुष्ट करो। यदि तुम्हारी रगें और पुट्ठे अच्छी तरह पुष्ट होंगे तो तुम भगवद्गीता पर भी अधिक अच्छी तरह आचरण कर सकोगे। याद रखो, गीता का उपदेश कायरों को नहीं दिया गया था, वरन् अर्जुन जैसे वीर, पराक्रमी और साहसी क्षत्रिय को दिया गया था।"

विवेकानन्द की अपने देश के प्राचीन आचार्यों पर बड़ी श्रद्धा थी। अपने एक भाषण में उन्होंने कहा था, "प्यारे देशवासियों, वीर बनो। ललकार कर कहो कि मैं भारतीय हूं; भारत मेरा प्राण है, मेरा जीवन है; प्रत्येक भारतीय मेरा भाई है, अपढ़ भारतीय, निर्धन भारतीय, ऊँची जाति का भारतीय, नीची जाति का भारतीय, सब मेरे

भाई हैं; उनकी प्रतिष्ठा मेरी प्रतिष्ठा है, उनका गौरव मेरा गौरव है।" इतने बड़े धर्मोपदेशक होते हुए भी स्वामी विवेकानन्द की यह बहुत बड़ी विशेषता थी कि उनमें दुराग्रह कहीं नाममात्र को भी न था। उदारता तथा हृदय की विशालता उनके महानतम गुण थे। धर्म की उनकी व्याख्या बड़ी उदार और व्यापक थी। उनका कहना था कि—"समस्त संसार में किसी भी समय एक ही धर्म नहीं रह सकता।"

देश का दुर्भाग्य था कि स्वामी विवेकानन्द ने दीर्घ आयु नहीं पायी। स्वभाव से वे अत्यन्त परिश्रमी थे। उनका सिद्धान्त था कि इस क्षणभंगुर जीवन में लेशमात्र भी आलस्य नहीं करना चाहिए। जीवन के अन्तिम दिनों में उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, किन्तु इतने पर भी उनकी जीवन-चर्या में कोई अन्तर नहीं आया। वे अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक जागरूक तथा कर्मरत बने रहे। 4 जुलाई, 1902 को अपने विद्यार्थियों का पाठ समाप्त कर स्वामीजी टहलने गये, लौटकर आए तो ध्यान-मग्न होकर बैठ गए। यही ध्यान उनकी महासमाधि थी। यों स्वामीजी अमर हैं, उनका कार्य अमर है, उनका सन्देश अमर है।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

(1)

सन् अठारह सौ तिरेसठ, बारह जनवरी प्रातःकाल।
माँ भुनेश्वरी के गर्भ से, जन्मे थे नरेन्द्र लाल॥
कलकत्ता में पिता विश्वनाथ, हाईकोर्ट के वकील थे।
आध्यात्मिक आदर्शों के, नरेन्द्र अनुपम ज्योतित दीप थे॥
भारतीय संस्कृति, ग्रन्थों का, ज्ञान दिया संसार को।
अनुपम आदर्शों का नूतन प्रभात दिया संसार को॥
मानव के अंधकार को हर, 'नाथ' लाए नव बहार को।
मातृभाषा में ऋषि-मुनियों का, ज्ञान दिया संसार को॥
विश्व-प्रेम के राग मनोहर, सारे जग में भर डाले।
परमहंस से ज्ञान-ज्योति ले, भव के सब तिमिर हर डाले॥
सर्व धर्म परिषद् शिकागो में, स्वज्योति पुँज प्रकाश दिया।
कठिन तपस्या, गुरु आशीष से, जगती को नव प्रवास दिया॥
ओजस्वी, तूफानी व्याख्यानों से, सारे जग को मोह लिया।
अपने अथाह ज्ञान-भण्भार से, भारत को जग यशस्वी किया॥
परमहंस मिशन की स्थापना कर, मानव का कल्याण किया।
स्वधर्म-स्वदेश का विवेकानन्द ने सदैव उत्थान किया॥

(2)

महान्, कौन, वंदनीय-प्राण-पुरुष-पूजनीय
आत्म-ज्ञान-दर्शनीय-शास्त्रकार, कौन तुम ?

सदैव दिव्य-धाम से सुना रहे सुघोषणा,
'अभिन्न-भाव' के प्रत्यक्ष सूत्र-धार, कौन तुम??

पवित्र भूमि भारत भूमि
धन्य आज मानती
सुपुत्र तुम समान पा
कृतार्थ गोद जानती।
कलित कीर्ति व्याप्त है
समस्त मृत्यु-लोक में;
समत्व भाव भर दिया;
महत्त्व, हर्ष-शोक में।
असत्य-मोह-सिन्धु से रहे उतार, कौन तुम?
'अभिन्न भाव' के प्रत्यक्ष, सूत्रधार, कौन तुम?
महान् कौन वंदनीय—

अतीव उच्च शव्द थे,
महान् हर्ष में भरे—
कहा "जगो, उठो, चलो
विमोह जाल से परे;
परे, महान् ज्योति है,
उसे विलोक लो अरे!
हृदय विलोक कर उसे,
अमर सुधा पिया करे॥
जगा रहे, प्रसाद से, रहे उबार, कौन तुम?
'अभिन्न भाव' के प्रत्यक्ष सूत्रधार, कौन तुम??
महान् कौन वंदनीय—

अनंत-विजय घोप है
त्रिलोक में समा गया;
प्रत्येक बन्धु बन्धु के
विचार में रमा हुआ;
उदीयमान राष्ट्र में;
समर्थ भाव हैं भरे;
गिरे स्वधर्म मार्ग से
सुचेत है पुनः किये;
हिन्दू देश के सुपुत्र, हृदय-हार, कौन तुम?
'अभिन्न भाव' के प्रत्यक्ष सूत्रधार कौन तुम?
महान् कौन वंदनीय—

सुभाष-जयंती : 23 जनवरी

उत्सव की तैयारी

(1) उत्सव दिवस के दो दिन पूर्व सभी छात्रों व शिक्षकों को उत्सव के कार्य-क्रम की सूचना देनी चाहिए जिससे वे उत्सव में बोली जाने वाली सामग्री का संकलन व बोलने की तैयारी कर सकें।

(2) उत्सव सम्बन्धित महापुरुष। पर्व पर छात्रों को प्रेरित करने हेतु सभा-स्थल पर आदर्श वाक्य लिखने व महापुरुष का चित्र लगाना चाहिए।

(3) उत्सव में बोली जाने वाली सामग्री का संकलन कर विद्यालय पत्रिका में उसे स्थान देना चाहिए।

(4) कार्यक्रम का समायोजन छात्रों की एक कार्यक्रम समिति द्वारा करवाया जाना चाहिए।

(5) नेताजी सुभाष चन्द्र बोस पर विशेष झाँकी आयोजित की जानी चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

भौगोलिक आस्था—बिहार राज्य से सटे दक्षिण में उड़ीसा राज्य है। पहले बिहार और उड़ीसा दोनों प्रान्त संयुक्त थे। उड़ीसा की राजधानी कटक है। कटक शहर महानदी के तट पर बसा हुआ है। इस शहर में राय बहादुर जानकी नाथ बोस रहते थे। इन्हीं के पुत्र श्री सुभाषचन्द्र बोस थे, जिनका जन्म 1897 ई० की 23 जनवरी को हुआ था।

राजनैतिक आस्था—जिस समय सुभाष बाबू का जन्म हुआ था, उस समय देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' का संगठन 1885 में हो चुका था। देश में थोड़ी-बहुत राजनैतिक चेतना आ रही थी।

जीवन-वृत्त—बाल्यकाल में ही सुभाष विचित्र स्वभाव के थे। उनके पिता जानकीदास बोस कटक की नगरपालिका तथा जिला-परिषद् के प्रधान एवं नगर के मेधावी और गण्य-मान्य वकीलों में थे। सुभाष बाबू की माता का नाम प्रभावती बोस था। वह कट्टर धार्मिक विचारों में विश्वास रखती थीं और सरल सहृदय स्वभाव की सीधी-सादी महिला थीं। सुभाष बाबू की पाँच बहनें और छः भाई और थे। इनमें से

सभी भाइयों ने अपने-अपने क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की। सुभाष को उनकी मां 'सुब्बी' कह-कर पुकारती थीं।

प्रारम्भिक शिक्षा—सुभाष की प्रारम्भिक शिक्षा एक यूरोपियन स्कूल से हुई। इस स्कूल के 'प्रोटेस्टेंट' वातावरण का बालक सुभाष के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। धर्म के नाम पर जो ढोंग और दिखावा चलता है, उसमें सुभाष की आस्था कभी नहीं रही थी, यद्यपि वह स्वयं प्रकृति से धार्मिक व्यक्ति थे। जीवन भर उन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन किया। स्कूल में प्रथम वर्ग में 'प्रवेपिका' परीक्षा उत्तीर्ण होकर वह कलकत्ता पहुँचे। सन् 1913 ई० में उन्होंने कलकत्ता के 'प्रेसीडेन्सी कॉलिज' में नाम लिखवाया। इस कॉलिज में उनकी पढ़ाई अधिक दिन नहीं चली, क्योंकि एकाएक उनका मन आध्यात्मिक वृत्तियों की ओर चला गया। उन्होंने सोचा कि वह स्वामी विवेकानन्द के समान आध्यात्मिक शक्ति उपलब्ध करके विश्व में एक चमत्कार प्रदर्शित करेंगे। इन्हीं विचारों के भाव-प्रवाह में डूबकर वह सोलह-सत्रह वर्ष की आयु में ही बिना किसी को सूचित किये हिमा-लय की ओर गुरु की खोज में चल दिये। कहते हैं इस मौन-त्याग से उन्हें गुरु तो नहीं मिला किन्तु स्वामी विवेकानन्द का सन्निध्य अवश्य प्राप्त हुआ, जिससे 'रामकृष्ण मिशन' के बारे में उन्हें कुछ ज्ञान मिला।

छः महीने तक बेकार घूमने के बाद भी जब सत्य के दर्शन न हुए और न कोई गुरु ही मिला, तब सुभाष किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर अपने घर लौट आये। वे अपनी माँ के चरणों में पड़ गये। अविरल अश्रुधारा बहाती हुई माँ ने बेटे को गले लगाकर कहा, "सुब्बी! तूने तो मुझे मार ही डाला था।"

सुभाष बाबू पर जोर डाला गया कि इंग्लैण्ड जाकर आई० सी० एस० की परीक्षा पास कर आयें। न चाहते हुए भी सुभाष बाबू को यह करना पड़ा। अगस्त 1920 ई० में आप आई० सी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण हो गये। परीक्षा पास करने पर उन्होंने घर पर एक पत्र लिखा—"दुर्भाग्य से मैं इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया हूँ, परन्तु मैं अफसर बनूँगा या नहीं यह मैं नहीं कह सकता। मुझे लगता है कि मैं अपने देश और ब्रिटिश साम्राज्य, दोनों की सेवा एक साथ नहीं कर सकता। शीघ्र ही मुझे इन दोनों में से एक को चुनना होगा।" और सुभाष ने सुखमय विलास के जीवन को ठुकराकर देश-सेवा का कठिन मार्ग अपनाया और त्यागपत्र ब्रिटेन-स्थित भारत सचिव को देकर भारत लौट आये। बम्बई आते ही आप उसी शाम को (16 जुलाई 1921 ई०) 'मणि भवन' में महात्मा गांधी से मिले और लगभग एक घंटे तक उनसे राजनैतिक बातचीत की। वार्तालाप के दौरान ही कुरुक्षेत्र के कृष्ण के पुजारी सुभाष ने बापू से पूछा था—"असहयोग तो मेरी समझ में आता है, लेकिन यह अहिंसा क्या है?"

अहिंसा के अर्थ पर ही गांधीजी से उनका सदा मतभेद रहा। वह राजनीति में अहिंसा का कोई स्थान मानने को तैयार नहीं थे। उन्होंने देशबन्धु चितरंजनदास को अपना राजनैतिक गुरु बनाया। सुभाष से प्रभावित होकर दास बाबू ने उन्हें 'नेशनल कॉलेज ऑफ कलकत्ता' का प्रिंसिपल बना दिया। यह याद रखने की आवश्यकता है कि

कॉलेज उन विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए खोला गया था, जिन्हें असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण सरकारी शिक्षणालयों से निकाल दिया गया था।

सार्वजनिक जीवन में—सुभाष बाबू को सार्वजनिक आन्दोलन में भाग लेने का पहला अवसर तब मिला जब 25 दिसम्बर 1921 ई० को प्रिन्स ऑफ वेल्स कलकत्ता आये। सारे देश में एक स्वर से उनके स्वागत का विरोध किया गया था। कलकत्ता में इस विरोध-प्रदर्शन का नेतृत्व दास बाबू और सुभाष बाबू ने किया। इस प्रदर्शन के अभियोग में सुभाष बाबू को छः महीने कैद की सजा मिली। यह आपकी प्रथम जेल-यात्रा थी।

33 वर्ष की उम्र में सुभाष बाबू कलकत्ता के मेयर और सन् 1938 ई० में कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। पुनः 1939 ई० में महात्मा गांधी के विरोध के बावजूद वे कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। परन्तु कुछ समय के बाद कांग्रेस से सैद्धान्तिक मतभेद हो जाने के कारण आपने कांग्रेस छोड़कर नये दल 'फारवर्ड ब्लॉक' की स्थापना की। 'आजाद हिन्द फौज' और नेताजी—भारतीय सुरक्षा अधिनियम के अनुसार जुलाई, 1940 ई० में सुभाष बाबू को गिरफ्तार करके कारागार में बन्द कर दिया गया। परन्तु वहां अस्वस्थ हो जाने के कारण बाद में उन्हें घर पर नज़रबन्द रखा गया। 26 जनवरी 1941 ई० को सुभाष बाबू एक अनोखे ढंग से वहाँ से निकल पड़े और उत्तरी भारत, अफगानिस्तान, रूस तथा जर्मनी आदि विभिन्न देशों में भ्रमण करते रहे। जुलाई, 1943 ई० में उन्होंने दक्षिण-पूर्व एशिया में साठ हज़ार भारतीय सैनिकों से संगठित 'आजाद हिन्द फ़ौज' के नेतृत्व का भार अपने हाथों में लिया जिसका संगठन रासबिहारी बोस ने सितम्बर, 1941 में किया था। यह फ़ौज रासबिहारी बोस को भारतीय स्वतन्त्रता-प्राप्ति के सहायतार्थ मिली थी। इनमें वे सैनिक थे जिन्हें जापानियों ने अंग्रेजों को हराकर बन्दी बना लिया था। सेना-संचालन का अनुभव न होने पर भी सुभाष बाबू ने अपने अपूर्व व्यक्तित्व, संगठन-क्षमता तथा जोशीले भाषणों के बल पर 'आजाद हिन्द फौज़' को और भी प्रवीण बना डाला। इसका परिणाम यह हुआ कि 'आजाद हिन्द फौज़' ने पूरी दृढ़ता से कठिन-से-कठिन युद्ध का सामना किया। वर्मा की लड़ाई में 'आजाद हिन्द फौज़' ने सुभाष बाबू के नेतृत्व में अपनी वीरता का परिचय दिया और तत्पश्चात् कुछ समय के लिए यह सेना असम तक पहुँच गई। इस फौज ने कुछ समय तक मणिपुर और अन्दमान में कार्य किया। परन्तु रसद-अस्त्र-शस्त्र, पराजित जापानियों की सहायता इत्यादि के अभाव के कारण 'आजाद हिन्द फौज' को मित्र राष्ट्रों के सामने अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी।

कुछ लोगों का कथन है कि जापान के आत्म-समर्पण (14 अगस्त 1945 ई०) के कुछ समय उपरान्त ही एक हवाई-दुर्घटना से सुभाष बाबू की मृत्यु हो गई।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

तेईस जनवरी अठारह सौ—
सत्तानवे का दिवस महान्,

परतन्त्रता की बेड़ी काटने—
सुभाष प्रगटे कोडोलिया ग्राम।

पिता जानकीनाथ आपके—
कटक में सुप्रसिद्ध वकील थे,
सुसंस्कृत सुशिक्षित परिवार के—
सुभाष तेजस्वी कुलदीप थे।

विद्याध्ययन में बाल सुभाष ने—
निज कुशाग्र बुद्धि का प्रमाण दिया,
आई० सी० एस० में सफलता पाकर—
विदेश में भारत का नाम किया।

आध्यात्मिक जिज्ञासा प्रबल हुई—
जिज्ञासु ने सब तीर्थ छान डाले,
संन्यासियों को विलासमय देखकर—
पड़े अन्तस में दुखों के छाले।

ओटन प्राध्यापक ने इंगलैण्ड में—
भारतीय छात्र अपमानित किए,
स्वाभिमान जाग उठा सुभाष का—
झट ओटन के मुख पर चपत दिए।

रहे निष्कासित महाविद्यालय से—
पर झुकना वीर को नहीं भाया,
फिर क्रान्ति की नूतन ज्योति जगाकर—
भारत से फिरंगी-सूर्य छिपाया।

देश के प्राण

भारत माता के अधरों की, मुस्कान नेताजी।
सच पूछो तो इस देश के हैं, प्राण नेताजी॥
जय नेताजी! जय नेताजी!! जय नेताजी!!!

जानकीनाथ नन्दन बन गए, जन-मन दुलारे।
भारत माँ की आँखों के, जगमग करते तारे॥
तेजस्वी शौर्य शक्ति के, नव अभियान नेताजी।
साक्षात दुर्गा माता के, समान नेताजी॥
सच पूछो तो इस देश के हैं, प्राण नेताजी।
जय नेताजी! जय नेताजी!! जय नेताजी!!!

स्वतन्त्रता की प्रचण्ड आँधी, नेताजी लाए।
इस अजर-अमर शक्ति से, सब अंग्रेज थर्राए॥
स्वतन्त्रता संग्राम की रहे, जान नेताजी।
आजाद हिन्द फौज निर्माता प्रधान नेताजी॥
सच पूछो तो इस देश के हैं, प्राण नेताजी।
जय नेताजी! जय नेताजी!! जय नेताजी!!!

26 जनवरी : गणतंत्र दिवस

उत्सव की तैयारी

25 जनवरी को ही स्कूल विघटित करने के पहले विद्यार्थियों तथा शिक्षकों की एक सभा होनी चाहिए। उस सभा में प्रधानाध्यापक यह घोषणा करें कि 26 जनवरी कैसे मनायेंगे, किसके सभापतित्व में करेंगे, झण्डोत्तोलन कौन करेगा तथा उसका रचनात्मक कार्य कैसे किया जायगा। इसकी पूरी सूचना छात्रों को दे देनी चाहिए। 26 जनवरी को प्रभात-फेरी होनी चाहिए। प्रभात-फेरी के बाद सामूहिक प्रार्थना, उसके उपरान्त वृहद् सफाई का कार्य करना चाहिए। इसके बाद स्नानादि से निवृत्त होकर झंडोत्तोलन की तैयारी करनी चाहिए।

झंडा-स्थान गोबर से लीप-पोतकर स्वच्छ करने के बाद भारत का मानचित्र चूने से खींचना चाहिए और उसमें हिमालय के ऊपर स्तम्भ देना चाहिए। ध्वज-स्तम्भ पर झंडा बाँधकर फूल रखकर इस प्रकार लपेटना चाहिए कि जिस समय झंडा खोला जाय उस समय फूल खोलने वाले के शरीर पर गिरे।

झंडा फहराने का समय दिल्ली और राज्य की राजधानी के झंडों के फहराने के समय के बाद रखना चाहिए। झंडा फहराते समय दर्शक तथा विद्यार्थी अनेक पंक्तियों में पंक्तिबद्ध होकर अर्द्धचन्द्राकार खड़े हो जाएँ और सन्नद्ध की आस्वथा में रहें। झंडा फहराने के समय झंडा तेजी से ऊपर की ओर ले जाना चाहिए और धीरे-धीरे नीचे उतारना चाहिए।

झंडा फहराने के समय यह ध्यान देना चाहिए कि केसरिया रंग सदा ऊपर की ओर रहे। जिस समय राष्ट्र-ध्वज ऊपर की ओर जा रहा हो उस समय सभी व्यक्तियों को शान्तिपूर्वक सावधान की स्थिति में खड़े होकर प्रणाम करना चाहिए या सलामी देनी चाहिए। उस समय किसी के मुँह से चूँ तक भी नहीं निकलनी चाहिए। चाहे सीने से गोली ही क्यों न पार कर जाय। जब राष्ट्रीय गान होता रहे या बैण्ड पर बजता रहे उस समय सभी को शान्तिपूर्वक खड़ा रहना चाहिए और टोपी से सिर को ढंक लेना चाहिए।

जिस समय झंडे को नीचे उतारा जाय उस समय यह ध्यान रखना चाहिए कि झंडे का कोई भाग ज़मीन या किसी चीज से छू न जाए। झंडा फहराते समय सावधान की स्थिति में सम्मिलित 'वन्दे मातरम्, गान गाना चाहिए।

वन्दे मातरम् !

सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्
शस्य-श्यामलाम् मातरम् ! वन्दे मातरम् !
शुभ्रज्योत्स्नां पुलकित-यामिनीम्,
फुल्ल-कुसुमित द्रुमदल-शोभिनीम्
सुहासिनीम्, सुमधुर-भाषिणीम्,
सुखदां, वरदां मातरम् ! वन्दे मातरम् !

—बंकिमचन्द्र चटर्जी

इस गान के बाद झंडे को फहरा देना चाहिए। झंडा फहराने के बाद सभी को ताली बजाकर हर्षनाद करना चाहिये। इसके बाद राष्ट्र-ध्वज-गान होना चाहिए। इसे सभी मिलकर गायेंगे।

हिन्द देश का प्यारा झंडा ऊँचा सदा रहेगा।
केसरिया बल भरने वाला, सादा है सच्चाई।
हरा रंग है हरी हमारी धरती की अँगराई।
और चक्र कहता है हमारा क़दम कभी न रुकेगा।
ऊँचा सदा रहेगा॥

शान हमारी यह झंडा है, यह अरमान हमारा।
यह बल-पौरुष है सदियों का, यह बलिदान हमारा।
जीवन-गीत बनेगा, यह अँधियारा दूर करेगा।
ऊँचा सदा रहेगा॥

नहीं चाहते इस दुनिया को अपना दास बनाना।
नहीं चाहते औरों के मुँह की रोटी खाना।
सत्य, न्याय के लिए हमारा लोहू सदा बहेगा।
ऊँचा सदा रहेगा॥

आसमान में फहराए यह सागर में लहराये।
जहाँ-जहाँ जाए यह झंडा वह संदेश सुनाए।
है आज़ाद हिन्द यह दुनिया को आज़ाद करेगा।
ऊँचा सदा रहेगा॥

हम कितने सुख-सपने लेकर इसको फहराते हैं।
इस झंडे पर मर मिटने की क़सम सभी खाते हैं।
हिन्द देश का यह झंडा घर-घर में लहरायेगा।
ऊँचा सदा रहेगा॥

—रामदयाल पाण्डेय

इसके बाद कुछ नारे लगाने चाहिए। पुनः किसी व्यक्ति द्वारा इस झंडे का इतिहास और 26 जनवरी का इतिहास दुहराना चाहिए। अन्त में राष्ट्र-गान (जन-गण-मन) के साथ सभा विघटित करनी चाहिये।

राष्ट्र-गान

जन गण मन अधिनायक जय हे
भारत-भाग्य-विधाता ।
कामरूप, पंजाब, मराठा, द्राविड़, उत्कल, बंगा ।
विन्ध्य, हिमाचल, यमुना, गंगा उच्छल जलधि तरंगा ।।
तव शुभ नामे जागे
तव शुभ आशिष माँगे
गाए तव जय-गाथा
जन गण मंगलदायक जय हे
भारत-भाग्य-विधाता !
जय हे, जय हे, जय हे,
जय, जय, जय, जय हे ।

इन सभी कार्यक्रमों के उपरान्त किसी जगह छाया में बैठकर कम-से-कम दो घंटे तक सूत्र-यज्ञ चलना चाहिए। फिर सूत्र-यज्ञ समाप्त होने पर भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास को सभी के समक्ष रखना चाहिये और तब छुट्टी हो जानी चाहिए।

शाम के समय सूर्यास्त के बाद अर्ध-चन्द्राकार अवस्था में सावधानी के साथ खड़े होकर झंडे को नीचे उतारेंगे। झंडा उतारने के पूर्व झंडा नमस्कार-गान गाना चाहिये। सभी को अपने सिर को ढंके रहना चाहिये। अन्त में 'जन मन गण' के साथ झंडे को सम्मानपूर्वक लपेटकर रखना चाहिये।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

भारत में ब्रिटिश राज्य पर विद्रोह की काली घटाएँ छा चुकी थीं। स्वतन्त्रता की माँग पूरे जोरों पर थी। सदियों की गुलामी की बेड़ियां तो वास्तव में 15 अगस्त, 1947 को टूटीं और भारत अंग्रेजी शासन से मुक्त हुआ, लेकिन हम 'गणतन्त्र-दिवस' 26 जनवरी को मनाते हैं। 26 जनवरी के पीछे वास्तव में भारतीय स्वतन्त्रता का एक करुण इतिहास छिपा हुआ है। यह हमारे त्याग, हमारे उत्सर्ग, हमारी शहादत का संवेदनापूर्ण इतिहास है। उसका कारण जानने के लिए भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास पर एक दृष्टिपात करना होगा।

26 जनवरी खुशी का दिन है। उस दिन वर्षों की तपस्या पूरी हुई। उस दिन करोड़ों की आशाएँ पूरी हुईं। सदियों के बाद भारत की सारी जंजीरें कट गईं। जिस दिन के लिऐ हजारों भारतीय हँसते-हँसते फांसी के तख्ते पर झूल गए, बेंतों की मार खाई परन्तु उफ तक नहीं की, जिस दिन की प्रतीक्षा में लाखों लोग जेलों में सड़ गए, वही दिन है 26 जनवरी।

भारतीय स्वतन्त्रता के संग्राम का श्रीगणेश यों तो 1857 ई० से ही हो गया था, पर कांग्रेस की स्थापना से भारत में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में अहिंसात्मक संग्राम फिर

शुरू हो गया। शनैः-शनैः देश में जागरण आया। सुषुप्त जनता ने फिर से अँगड़ाई ली।

1885 ई० में जब कांग्रेस की स्थापना हुई, उस समय यह एक सामाजिक संस्था-मात्र थी। जब कलकत्ते में कांग्रेस का 22वाँ अधिवेशन दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में हुआ तो उस संस्था में सर्वप्रथम राष्ट्रीयता की भावना आई और विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार कांग्रेस में राजनीति का प्रवेश हुआ और यह राजनैतिक संस्था बन गई। धीरे-धीरे इसने प्रगति की और औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की। यह माँग 1929 ई० तक चलती रही।

1928 ई० में कांग्रेस का महत्त्वपूर्ण अधिवेशन पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में कलकत्ता में हुआ। उस अधिवेशन में इस प्रश्न पर विचार किया गया कि सर्वदलीय कांग्रेस द्वारा प्रस्तुत नेहरू रिपोर्ट के अनुसार औपनिवेशिक स्वराज्य को ध्येय बनाया जाए अथवा पूर्ण स्वाधीनता को। श्री सुभाषचन्द्र बोस तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू आदि नवयुवक नेता पूर्ण स्वाधीनता के पक्ष में थे। लेकिन कांग्रेस के वयोवृद्ध नेतागण औपनिवेशिक स्वराज्य तक ही अपनी माँग सीमित रखना चाहते थे। अन्त में महात्मा गांधी ने दोनों दलों में समझौता कराया और सर्वसम्मति से औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की अवधि 31 दिसम्बर 1929 तक रखी गई।

इस घोषणा से घबराकर ब्रिटिश सरकार से 9 नवम्बर, 1929 को घोषणा की कि भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देना अंग्रेजी शासन का लक्ष्य है और इसके लिए भारतीय नेताओं की एक 'गोलमेज़ कान्फ्रेंस' (Round table conference) आगामी अप्रैल तथा मई माह में होगी। लेकिन इस घोषणा से किसी को संतोष नहीं हुआ और लाहौर-कांग्रेस ने रावी के पुनीत तट पर पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में यह घोषणा प्रसारित की—"यदि ब्रिटिश सरकार औपनिवेशिक स्वराज्य देना चाहे तो 31 दिसम्बर, 1929 के 12 बजे रात तक अर्थात् पहली जनवरी, 1930 से लागू होने की प्रत्यक्ष घोषणा करे, अन्यथा पहली जनवरी, 1930 से हमारी माँग पूर्ण स्वाधीनता होगी।"

अभी पूर्ण स्वाधीनता की माँग के समर्थन में 26 जनवरी, 1930 को रविवार के दिन सारे भारत में राष्ट्रीय झंडे के नीचे जुलूस निकाला गया, सभाएँ की गईं और प्रस्ताव पास करके प्रतिज्ञाएँ की गईं कि जब तक हम पूर्ण स्वाधीन न होंगे तब तक हमारा स्वतन्त्रता-संग्राम चलता रहेगा। लाठियों, डण्डों, तोपों, पिस्तौलों और बन्दूकों से सजी हुई फौज और पुलिस से घिरे रहने पर भी हमने प्रतिवर्ष यह दिवस अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता के संकल्प को दुहराते हुए मनाया। इस दिवस को मनाने में अनेक सपूतों ने स्वतन्त्रता की वेदी पर हँस-हँसकर रक्त-तर्पण किया। सन् 1930 से प्रतिवर्ष हम 26 जनवरी का दिन राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाते आ रहे हैं।

15 अगस्त, 1947 को जब ब्रिटेन ने सत्ता भारतीयों को हस्तांतरित की तब देश को औपनिवेशिक स्वराज्य मिला। ब्रिटेन का राजा भारत का सम्राट बना रहा।

लेकिन 26 जनवरी, 1950 को भारत ने पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और हमारा भारत गणतन्त्र राज्य बन गया। ब्रिटेन के राज्य का भारत के साथ पुराना सम्बन्ध टूट गया ? भारत का सर्वोच्च शासक राष्ट्रपति के नाम से पुकारा जाने लगा और यह जनता द्वारा निर्वाचित विधायिका-सभा के सदस्यों द्वारा चुना जाने लगा। इसीलिए 26 जनवरी को हम गणतन्त्र-दिवस के रूप में मनाते रहे हैं। स्वर्गीय डा० राजेन्द्र प्रसाद भारतीय गणतन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति हुए।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

सामूहिक गान

हिमालय की बुलन्दी से, सुनो आवाज है आई।
कहो माँओं से दे बेटे, कहो बहनों से दे भाई।।
वतन पे जो फिदा होगा, अमर वो नौजवां होगा।
रहेगी जब तलक दुनिया, ये अफसाना बयाँ होगा।। वतन···
हिमालय कह रहा है इस, वतन के नौजवानों से,
खड़ा हूँ सन्तरी बन के, मैं सरहद पे जमानों से।
भला इस वक्त देखूँ, कौन मेरा पासवाँ होगा।। वतन···
चमन वालों की गैरत को है सय्यादों ने ललकारा।
उठो हर फूल से कह दो के, बन जाये वो अंगारा।।
नहीं तो दोस्त को रुसवा, हमारा गुलसिता होगा।। वतन···
हमारे एक पड़ौसी ने, हमारे घर को लूटा है,
भरम इक दोस्त की बस, दोस्ती का ऐसे टूटा है।
के अब हर दोस्त पे दुनिया को, दुश्मन का गुमाँ होगा।। वतन···
सिपाही देते हैं आवाज, माताओं को बहनों को,
हमें हथियार ले दो, बेच डालो अपने गहनों को।
के इन कूरबानों पे कुरबाँ, हमारा हर जवाँ होगा।। वतन···
रहेगी जब तलक दुनिया, ये अफसाना बयाँ होगा।
वतन पे जो फिदा होगा, अमर वो नौजवाँ होगा।।

सामूहिक गान

चम-चम चमकें तलवारें, तोपें बरसातीं गोले।
पीछे ना हटना वीरो, पीछे ना हटना।।
वीर सिपाही समर भूमि में, सोते हैं—सोते हैं।
नाम अमर दुनिया में उनके होते हैं—होते हैं।।
पीठ ना रण में दिखलाना विजयी हो देश तुम्हारा।
पीछे न हटना वीरो, पीछे ना हटना ।।1।।

राणा प्रताप की अमर कहानी याद रहे—याद रहे।
चित्तौड़ की क्षत्राणी की, मर्याद रहे—मर्याद रहे ॥
जिन्दा चिता में जल गई, दुश्मन के हाथ ना आई।
पीछे ना हटना वीरो, पीछे ना हटना ॥2॥

गुरु गोविन्दसिंह इसी देश में, हो गए—हो गए।
बालक उनके दीवारों में, सो गए—सो गए ॥
अमर रहे उनका बलिदान, वीरों की रक्खी शान।
पीछे ना हटना वीरो, पीछे ना हटना ॥3॥

वीर शिवाजी भारत रक्षक, हो गए—हो गए।
बीज वीरता का घर-घर में, बो गए—बो गए ॥
अमर पताका तिरंगा, घर-घर में लहराओ।
पीछे ना हटना वीरो, पीछे ना हटना ॥4॥

चम-चम चमकें तलवारें, तोपें बरसातीं गोले।
पीछे ना हटना वीरो, पीछे ना हटना ॥5॥

अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं

अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं,
सर कटा सकते हैं लेकिन सर झुका सकते नहीं।

हमने सदियों में यह आजादी की न्यामत पाई है,
सैकड़ों कुरबानियाँ देकर यह दौलत पाई है।

मुस्कराकर खाई हैं हमने सीने पर गोलियाँ,
कितने वीरानों से गुजरे हैं तो जन्नत पाई है।

खाक में हम अपनी इज्जत को मिटा सकते नहीं,
अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं।

क्या चलीं जुल्म की राहें वफा के सामने,
जल नहीं सकता कोई शोला हवा के सामने।

लाख फौजें लेके आए अमन दुश्मन कोई,
रुक नहीं सकता हमारी एकता के सामने।

हम पत्थर हैं जिसे दुश्मन हिला सकते नहीं,
अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं।

वक्त की आवाज के हम साथ चलते जायेंगे,
हर कदम पे जिन्दगी का रुख बदलते जायेंगे।

गर वतन में भी मिलेगा कोई गद्दारे वतन,
अपनी ताकत से हम उसका सर कुचलते जायेंगे।

एक धोखा खा चुके हैं और खा सकते नहीं,
अपनी० वन्दे मातरम् वन्दे मातरम् ।
हम वतन के नौजवाँ हैं हम से जो टकरायेगा
वक्ते-तूफाँ में बह जायेंगे जुल्मो-सितम ।
आसमाँ पर यह तिरंगा उमर भर लहराएगा,
जो सबक बापू ने सिखलाया भुला सकते नहीं ।
सर कटा० वन्दे मातरम् वन्दे मातरम् ।
दुश्मनों के हैं दुश्मन यह दुश्मन यार के हम यार हैं ।
अमन में फूलों की डाली जंग में तलवार है,
जिस किसी में हौसला हो आजमा कर देख ले ।
जिन्दगी के वास्ते हम मरने को तैयार हैं,
बढ़ चुके हैं जो कदम पीछे हटा सकते नहीं ।
यह हमारे ऊँचे पर्वत यह हमारी नदियाँ,
यह हमारी मुस्कुराती लहलहाती खेतियाँ ।
इन पे डालेगा कोई दुश्मन अगर नजरें बुरी,
हम तो उस जालिम की रख देंगे उड़ाके धज्जियाँ ।
आबरू अपने वतन की हम गवाँ सकते नहीं···

शहीद दिवस : 30 जनवरी

उत्सव की तैयारी

गांधीजी की पुण्य-तिथि के एक दिन पूर्व ही छात्रों और शिक्षकों की एक सम्मिलित गोष्ठी होनी चाहिए। उसमें 30 तारीख को होने वाले कार्यक्रमों को बनाकर सबों के बीच प्रचारित कर देना चाहिए। प्रातःकाल प्रभात-फेरी होनी चाहिए। पुनः सफ़ाई का कार्यक्रम रखना चाहिए। सुबह से शाम तक बारी-बारी से 10 व्यक्तियों की लगातार कताई चलनी चाहिए। शाम को एक गोष्ठी हो जिसमें छात्र, शिक्षक तथा समीपवर्ती ग्रामीण भी सम्मिलित हों। उसमें गांधीजी के बारे में सभी अपने-अपने विषय रखें। कविता-पाठ हो, प्रहसन हो और निबन्ध आदि भी पढ़े जाएँ। जितने निबंध-प्रहसन आदि पढ़े जाएँ, उन सभी को पुस्तक का रूप देना चाहिए और पुस्तकालय में रख देना चाहिए। 30 जनवरी के तीन दिन पूर्व से ही अन्न वस्तु का संग्रह करना चाहिए और 30 जनवरी को उस सभी को असहाय जनता के बीच वितरित कर देरा चाहिए। शिक्षा और शिक्षार्थियों से गांधीजी को विशेष स्नेह था। इस दिन शिक्षकों और शिष्यों को विशेष रूप से शपथ लेनी चाहिए कि वे समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्य निभाएँगे। तभी वे राष्ट्रपिता को अपनी सच्ची श्रद्धांजलि दे सकेंगे। विद्यालय के प्रधान जी के भाषण के उपरान्त छुट्टी हो जाए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

महात्मा गांधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 को वर्तमान गुजरात राज्य के पोरबन्दर नगर में हुआ था। यह नगर प्राचीन सुदामापुरी भी कहा जाता है। गांधीजी के पिता राजकोट से यहाँ आए थे। इसके बाद वे वापस राजकोट जाकर रहने लगे। गांधीजी का नाम था मोहनदास तथा उनके पिता का नाम कर्मचन्द। इस प्रकार गांधीजी का पूरा नाम मोहनदास कर्मचन्द गांधी पड़ा।

गांधीजी के पिता बड़े सत्यवादी तथा स्पष्टवक्ता थे। वे साफ-साफ बात कहते हुए किसी से नहीं डरते थे। उनकी माता पुतलीबाई बड़ी धर्मात्मा महिला थीं। वे व्रत-उपवास बहुत करती थीं। नियमित रूप से भगवान के दर्शन तथा पूजा के लिए मन्दिर जाती थीं। उनका स्वभाव बड़ा सरल तथा दयालु था। इस प्रकार बचपन से ही गांधीजी को ऐसा वातावरण मिला, जिससे उनमें सत्य, अहिंसा, करुणा और संयम के सुसंस्कार

पनपने लगे।

बाल्यावस्था में गांधीजी पढ़ाई में तेज नहीं थे। वे शाला में मितभाषी, शर्मीले विद्यार्थी माने जाते थे। एक बार जब उनकी शाला का निरीक्षण करने इन्सपेक्टर महोदय आए तो उन्होंने गांधीजी की कक्षा के विद्यार्थियों से कुछ प्रश्न पूछे, जिनमें केटल (चाय की केटली) शब्द हिज्जे (स्पेलिंग) भी एक था। गांधीजी ने इस प्रश्न का उत्तर गलत लिखा। अध्यापक ने अपने जूते से उनके पाँव पर हल्की-सी ठोकर लगाकर इशारा किया कि वे अपने आगे बैठे विद्यार्थी का उत्तर देख लें। पर गांधी इस इशारे को समझ न सके, क्योंकि उन्हें स्वप्न में भी यह विचार नहीं था कि अध्यापक उन्हें दूसरे विद्यार्थी के उत्तर को नकल करने के लिए प्रेरणा दे सकता है। वैसे यदि वे इस इशारे को समझ भी जाते, तो भी नकल न करते।

गांधीजी का विवाह 13 वर्ष की आयु में हो गया था। तब वे स्कूल में पढ़ते थे। उनकी पत्नी का नाम कस्तूरबा बाई था। कस्तूरबा बाई सारे भारत में 'बा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने 60 वर्ष से भी अधिक समय तक गांधीजी के साथ रहकर देश की सेवा में उनका हाथ बँटाया।

प्रारम्भ में गांधीजी को कुछ बुरी आदत लग गई। उनके एक सम्बन्धी की सोहबत से उन्हें धूम्रपान का शौक हो गया। छिप-छिपकर बीड़ी-सिगरेट पीने लगे। उनके चाचा सिगरेट पीते थे। उनके फेंके हुए सिगरेट के टुकड़े एकत्र कर वे फूँकने लगे। पर इतने में सन्तोष कैसे होता, इसलिए नौकरों की जेबों में से पैसे-दो पैसे चुराना शुरू किया। इससे भी तसल्ली नहीं हुई। उन्हें अपनी पराधीनता बड़ी अखरने लगी। उस सम्बन्धी तथा गांधीजी दोनों ने धतूरे के बीज खाकर आत्महत्या करने का निश्चय किया। परन्तु तीन-चार से अधिक बीज न खा सके और मन्दिर में जाकर मानसिक शान्ति प्राप्त करने का प्रयत्न किया। आत्महत्या का विचार मन से निकाल दिया और साथ ही साथ धूम्रपान भी छोड़ दिया।

इसी तरह उन दिनों गांधीजी को मांस खाने की आदत भी पड़ गई। उनके कुछ मित्रों ने कहा कि यदि हम लोग अंग्रेजों को भारत से निकाल कर देश को स्वतंत्र बनाना चाहते हैं तो बलिष्ठ बनना चाहिए और बलिष्ठ बनने के लिए मांसाहार जरूरी है। अस्तु वे छिप-छिपकर एकान्त स्थानों में जाकर मांस खाने लगे। गांधीजी लिखते हैं कि पहले दिन जब उन्होंने मांस खाया तो उन्हें चैन नहीं पड़ा। रात को नींद नहीं आई। उन्हें ऐसा महसूस होने लगा कि मानो पेट में बकरा बोल रहा हो। अन्ततः वे अपने हृदय की करुणा दबा न सके और न अपने किसी भले-बुरे काम को अपने माता-पिता से छिपा सके। अतएव उन्होंने मांसाहार छोड़ दिया। एक भूल जिसके लिए गांधीजी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ, वह थी चोरी की। गांधीजी के मंझले भाई ने 25 रुपए का कर्ज कर लिया था। वे और गांधीजी दोनों भाई इस चक्कर में थे किस तरह यह कर्ज चुकाया जाए। अन्त में उन्हें यह सूझा कि भाई के हाथ में जो सोने का कड़ा है उसे कटवाकर एक तोला सोना निकलवा लें और उसे बेचकर ऋण चुका दें। यही किया गया, लेकिन इससे गांधीजी के मन में बड़ी

ग्लानि हुई। वे इस अपराध को छिपा न सके। पिताजी से सब कुछ कहकर क्षमा माँगने का प्रयत्न किया। उन दिनों उनके पिताजी बीमार थे, और बिस्तर पर लेटे रहते थे। क्षमा माँगने को गांधीजी की जबान नहीं खुलती थी, अतएव उन्होंने एक पत्र लिखकर पिता के सिरहाने रख दिया। इस पत्र में उन्होंने अपनी भूल का वर्णन कर उसके लिए पश्चात्ताप प्रकट किया था तथा क्षमा माँगी थी। पिताजी को दुःख तो बहुत हुआ, परन्तु पुत्र के पश्चात्ताप की आँच से उनका क्रोध आंसू बनकर टपक पड़ा। उन आँसुओं से पत्र भीग गया। गांधीजी भी वेदना और पश्चात्ताप के आंसू बहा रहे थे। पश्चात्ताप के इन आँसुओं से उनका हृदय शुद्ध हो गया और भविष्य के लिए उन्हें शक्ति और दृढ़ता मिली।

18 वर्ष की अवस्था में गांधीजी ने मैट्रिक की परीक्षा पास की। इससे पहले ही उनके पिताजी का देहान्त हो चुका था। इनके कुटुम्ब के कुछ शुभचिन्तकों ने राय दी कि मोहनदास को बैरिस्टर बनाने के लिए इग्लैंड भेजना चाहिए। परन्तु उनकी माता को आशंका थी अतः उन्होंने विलायत भेजने के प्रस्ताव का विरोध किया। जब सम्बन्धियों, मित्रों ने बहुत समझाया और गांधीजी ने एक जैन साधु के पास जाकर ये तीन व्रत लिए कि वे (1) माँस नहीं खायेंगे, (2) मदिरा नहीं पियेंगे तथा (3) ब्रह्मचर्य से रहेंगे, तब कहीं उन्होंने गांधीजी को विदेश जाने की अनुमति दी। गाँधीजी बड़े अरमान लेकर लन्दन पहुंचे। परन्तु इन व्रतों के कारण उन्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। डाक्टरों ने उन्हें राय दी कि इंगलैण्ड की ठण्डी आबहवा में मांसाहार जरूरी है। वहाँ जो निरामिष आहार मिलता है वह एक युवक की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए पर्याप्त नहीं है। परन्तु हजार कठिनाइयों के होते हुए भी गाँधीजी मांस या मदिरा का सेवन करने के लिए तैयार नहीं हुए। उन्होंने निरामिष भोजन को अधिक पौष्टिक और स्वास्थ्यप्रद बनाने के लिए कई प्रयोग किए, जिनकी कहानी अत्यन्त रोचक है। महापुरुष अपने सिद्धान्तों पर सदैव दृढ़ रहते हैं। वे आस-पास के वातावरण तथा फैशन के प्रवाह में अपने सिद्धान्तों को बहाने के लिए तैयार नहीं होते।

यों विलायत जाकर गांधीजी ने फैशन के अनुसार रहने तथा नृत्य, वायलिन, वादन तथा भाषण देने की कला सीखने की बड़ी कोशिशें कीं। इन पर धन भी खर्च किया परन्तु अनुभव से धीरे-धीरे वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि विदेशियों की नकल कर हम उनकी संस्कृति नहीं अपना सकते। हमारे लिए यह अन्धानुकरण उचित नहीं।

तीन वर्ष लन्दन में शिक्षा प्राप्त कर गाँधीजी बैरिस्टर बनकर भारत लौटे। लौटने पर उन्हें यह समाचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ कि उनकी स्नेहमयी माता का, जो उनके स्वदेश लौटने की प्रतीक्षा करती रही थीं, देहान्त हो चुका था।

भारत लौटकर गांधीजी वकालत करने लगे, परन्तु इंगलैण्ड में पढ़कर परीक्षा पास करना एक बात थी, और अदालत में सफल वकील बनना दूसरी बात। अपनी प्रारम्भिक वकालत का वर्णन स्वयं उन्होंने इस प्रकार किया :

'खफीफा-अदालत' की देहली लाँघने का यह पहला अवसर था। मैं मुद्दालय का

ओर से था। अब मुझे जिरह करनी थी। मैं खड़ा तो हुआ पर पाँव काँप रहे थे, सिर चकरा रहा था। जान पड़ता था—कचहरी घूम रही है। सवाल सूझते ही न थे। जज हंसा होगा। वकीलों को तो मजा ही मिल गया होगा पर मेरी आँखें क्या देख पाती थीं। मैं बैठ गया। दलाल से बोला—मुझसे तो यह मुकदमा न चल सकेगा। पटेल को कर लीजिए। मुझे दिया हुआ मेहनताना वापस ले लीजिए। मैं भागा। मुवक्किल जीता या हारा इसकी मुझे याद नहीं।

लगभग डेढ़ वर्ष तक असफल वकालत करने पर गाँधीजी को दक्षिण अफ्रीका के एक व्यापारी ने अपने एक मुकदमे में सहायता करने के लिए बुलाया। इस घटना से गाँधीजी के जीवन में बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। दक्षिण अफ्रीका में उस ससय भारत-वासियों की स्थिति खराब थी। उन्हें पग-पग पर अपमान सहने पड़ते थे। गाँधीजी को भी कई बार बुरी तरह से अपमानित किया गया। एक बार वे डरबन से प्रिटोरिया जा रहे थे। पहले दर्जे का टिकट लिया था। जब रात के 9 बजे वे नेटाल की राजधानी मेरिप्सबर्ग पहुंचे तो वहाँ रेल के कर्मचारियों ने उनसे डिब्बा बदलने को कहा। उनके मना करने पर सिपाही को बुलाया गया, जिसने उनको पकड़ा और एक धक्का मार कर उन्हें डिब्बे से बाहर निकाल दिया। उनका सामान भी बाहर फेंक दिया गया और गाड़ी चल दी। रात भर गाँधीजी वेटिंग रूम में ठण्ठ से ठिठुरते रहे और दूसरे दिन चलकर प्रिटोरिया पहुंचे।

एक और भी घटना इसी प्रकार की हुई। गाँधीजी एक बार घोड़ागाड़ी से सफर कर रहे थे। कुछ गोरे उसी गाड़ीमें आ बैठे। वे एक हिन्दुस्तानी के साथ नहीं बैठना चाहते थे। इसलिए उन्हें जबरदस्ती बाहर निकाल कर कोचवान के पास बैठाया गया। फिर थोड़ी देर बाद वहाँ से भी हटा कर कोचवान के पाँव के पास बैठने को मजबूर किया गया। यों ही कई बार उन्हें धक्के-मुक्के व लातें खानी पड़ीं—केवल इसलिए कि वे हिन्दु-स्तानी थे। उन दिनों दक्षिण अफ्रीका में एक हिन्दुस्तानी के साथ, चाहे वह कितना ही विद्वान या प्रतिष्ठित व्यक्ति क्यों न हो प्राय: दुर्व्यवहार किया जाता था। परन्तु गांधीजी के मन में इतना अपमान सहकर भी दक्षिण अफ्रीका की सरकार अथवा वहाँ के गोरे निवासियों के प्रति कभी द्वेष उत्पन्न नहीं हुआ, और न उनके विरुद्ध भारतीयों में कभी द्वेष या हिंसा जागृत करने का प्रयत्न ही किया। उन्होंने अत्याचार का विरोध किया, पर अत्याचारी के प्रति क्रोध या द्वेष कभी नहीं रखा।

गाँधीजी ने दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों को अपने आत्म-सम्मान के लिए संघर्ष करने को तैयार किया। उन लोगों की ओर से दक्षिण अफ्रीका की सरकार तथा ब्रिटिश सरकार को आवेदन पत्र भेजे गये। समाचार पत्रों में उनकी उचित माँगों का समर्थन किया गया। सभाएँ कर हजारों व्यक्तियों के हस्ताक्षर करवाकर तथा अन्य वैधानिक साधनों को अपनाकर भी जब काम न चला तो सरकारी नियमों को अहिंसात्मक ढंग से तोड़ने का कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इसे ही सत्याग्रह कहते हैं। यह राजनीति को गांधीजी की विशेष देन है। गांधीजी का दृष्टिकोण यह था कि अन्यायपूर्ण कानून को

मानना आवश्यक नहीं है। उसे बदलवाने का प्रयत्न करना चाहिए। यह प्रयत्न यथासंभव वैधानिक अर्थात् कानून के अनुसार होना चाहिए परन्तु अन्त में यदि वैधानिक कार्यवाही से सफलता न मिले तो अहिंसात्मक ढंग से उस नियम को तोड़कर उसका विरोध किया जाना चाहिए।

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में पहले-पहल सत्याग्रह का प्रयोग किया। उन दिनों एक नया कानून बना था, जिसके अनुसार कोई भी भारतीय बिना 3 पौंड टैक्स दिए तथा अपनी दसों अंगुलियों की छाप लगाये ट्रांसवाल नामक प्रदेश में जा नहीं सकता था इस नियम के विरुद्ध दो-ढाई हजार भारतीयों ने गांधीजी के नेतृत्व में जुलूस बनाकर ट्रांसवाल में प्रवेश किया। उन्हें कैद कर लिया गया और तरह-तरह की तकलीफे दी गई परन्तु अन्त में सत्याग्रह आन्दोलन सफल रहा और भारतीयों की मांगें मान ली गईं। कुल मिलाकर गाँधीजी 21 वर्ष दक्षिण-अफ्रीका में रहे। उन्होंने वहाँ रहकर अफ्रीका-निवासी भारतीयों की बड़ी सेवा की। उन्हें संगठित किया। सच्चाई और नैतिकता से अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना सिखलाया। स्वयं गांधी को इन 21 वर्षों में अमूल्य अनुभव प्राप्त हुए। राजनीतिक संगठन और सत्याग्रह के जो प्रयोग उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में किये उन्ही का भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम में भी उपयोग किया। उन्हीं प्रयोगों के आधार पर गांधीजी के नेतृत्व में हमने स्वतन्त्रता प्राप्त की।

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में कई अन्य प्रयोग भी किए। उन्होंने सादगी और स्वावलम्बन को प्रमुखता दी। उन्होंने स्वावलम्बन के कई प्रयोग किए—जैसे अपना भोजन स्वयं बनाना, अपने वस्त्र स्वयं धोना और स्वयं ही उन पर इस्त्री करना, अपने घर की नालियाँ व पाखाने साफ करना आदि-आदि। उन्होंने वहाँ दो आश्रम भी खोले जिनमें कई लोग सादगी और स्वावलम्बन को अपनाकर साथ-साथ रहने लगे।

सन् 1914 में गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से रवाना हुए और कुछ दिन इंगलैण्ड में रुक कर भारत लौट आये। उन दिनों गोपालकृष्ण गोखले भारत के स्वतन्त्रता-आंदोलन के एक प्रमुख नेता थे। गांधीजी उन्हें अपना गुरु मानते थे। उन्होंने गांधीजी को राय दी कि तुम कुछ वर्ष भारत की स्थिति का अध्ययन करो, फिर विचारकर अपने कार्य की योजना बनाना। उनके परामर्श के अनुसार गांधीजी ने कुछ वर्ष तक देश में भ्रमण कर यहाँ की मुख्य-मुख्य समस्याओं का अध्ययन किया।

इसके बाद गांधीजी के जीवन का एक नया दौर शुरू हुआ। प्रथम महायुद्ध समाप्त होने के बाद उन्होंने देश के स्वतन्त्रता-संग्राम का नेतृत्व किया। इस संग्राम की कहानी यहाँ दोहराना आवश्यक नहीं है। यहाँ हम यही देखेंगे कि किस प्रकार गांधीजी अपने राजनीति के सिद्धान्त में भी सत्य और अहिंसा पर दृढ़ रहे। इन सिद्धान्तों का राष्ट्रीय राजनीति में उपयोग मानव-जाति को गांधीजी की महान देन है। गांधीजी के भारत की राजनीति में प्रवेश के पहले हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन अधिकतर पढ़े-लिखे मध्यम वर्ग तक ही सीमित था।

गांधीजी ने उसे जन-आन्दोलन बनाया और वह भी अहिंसात्मक जन-आन्दोलन।

सन् 1919-20 में इस आन्दोलन ने असहयोग का रूप लिया, 1930-32 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन का रूप, और सन् 1942-44 में यह भारत छोड़ो आन्दोलन कहलाया जिससे हमारे राष्ट्र ने भारत में अंग्रेजों के सम्पूर्ण शासन को अस्वीकार कर उनकी सत्ता के विरुद्ध देशव्यापी विद्रोह कर दिया। परन्तु गांधीजी ने इस सब आन्दोलनों को अहिंसा पर आधारित रखने पर अधिकाधिक बल दिया। सन् 1921 में जब उत्तर प्रदेश के चोरी-चोरा स्थान पर उत्तेजित जनता ने एक थाने पर आक्रमण किया, जिसमें 20 व्यक्ति मारे गए, तो गांधीजी ने इस आधार पर कि राष्ट्र अभी तक अहिंसात्मक संग्राम के लिए तैयार नहीं है, असहयोग आन्दोलन तुरन्त बन्द कर दिया। वे हिंसा द्वारा स्वतन्त्रता-आन्दोलन के नेतृत्व के लिए तैयार नहीं थे। द्वितीय महायुद्ध के दिनों जापानियों का भारत पर आक्रमण होने की संभावना हो गई थी। गांधीजी ने उनका भी अहिंसात्मक विरोध करने का कार्यक्रम बनाया और राष्ट्र के सामने रखा।

सन् 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में उनके आदेश के अनुसार लाखों व्यक्तियों के जुलूस तथा सभाएं पूर्णरूप से अहिंसक रहे और जनता ने लाठियाँ पड़ने पर क्रुद्ध होकर हिंसात्मक प्रतिकार नहीं किया। गाँधीजी ने इस बात पर बड़ा जोर दिया कि हमें अत्याचार का विरोध करना चाहिए। किन्तु अत्याचारी के प्रति द्वेष या क्रोध नहीं करना चाहिये। विश्व के इतिहास में अहिंसा का इतने बड़े पैमाने पर प्रयोग और कोई नहीं हुआ। सदियों से मनुष्य की यही धारणा रही है कि प्रशासन और राजनीति में असत्य व्यवहार के बिना काम नहीं चलता इसलिए उसे कूटनीति का नाम दिया जाता है। अपने विरोधी के प्रति स्नेह और अहिंसा की भावना राजनीति में नई चीज है। परन्तु गाँधीजी ने अपने राजनीतिक विरोधियों के प्रति भी सहानुभूति और स्नेह का व्यवहार किया। यद्यपि स्वर्गीय श्री जिन्ना ने वर्षों गाँधीजी और काँग्रेस का विरोध किया और अन्त में पाकिस्तान बनवाकर इस देश के दो टुकड़े करवा डाले, फिर भी गांधीजी का उनके प्रति व्यवहार अत्यन्त सौजन्यपूर्ण था और उनके मन में जिन्ना के प्रति कोई द्वेष नहीं था। हमारे देश के अंग्रेज शासक गांधीजी को अंग्रेजी-साम्राज्य का सबसे बड़ा दुश्मन मानते थे, परन्तु गाँधीजी का उनसे भी कोई द्वेष नहीं था। उनके प्रति भी उन्होंने कभी क्रोध नहीं किया और न कभी कोई हिंसात्मक भावना ही रखी। इसीलिए वे भी गांधीजी का बड़ा आदर करते थे। दक्षिणी अफ्रीका के प्रधानमंत्री जनरल स्टमस गांधीजी को अपना बड़ा विरोधी मानते थे, फिर भी गांधीजी के लिए उनके मन में बड़ा सम्मान था।

केवल राजनीति ही नहीं, अर्थनीति को भी गांधीजी अहिंसा के सिद्धान्तों पर चलाना चाहते थे। उन्होंने देखा कि आजकल औद्योगिक युग में कारखाने के पूँजीपति मालिक और संचालक मजदूरों का शोषण करते हैं। उनसे अधिक से अधिक काम लेकर कम वेतन देना चाहते हैं, उनके पसीने की कमाई पर शान-शौकत से रहते हैं। बड़े-बड़े कारखानों में बहुत-सी पूँजी लगानी पड़ती है अतः उनकी सारी व्यवस्था कुछेक पूँजीपतियों तथा उनके द्वारा नियुक्त कार्यकर्त्ताओं के हाथ में रहती है। ऐसी दशा में यह

स्वाभाविक है कि कारखानों की आमदनी का बड़ा भाग वे अपने लिए रख लें और मजदूरों का शोषण करते रहें। समाजवादी अर्थव्यवस्था में बड़े-बड़े उद्योग राज्य के हाथ में रहते हैं, इसलिए पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों के शोषण का खतरा नहीं है, परन्तु गांधीजी इसे भी उचित नहीं समझते थे। उनकी राय थी कि धन या शक्ति का केन्द्रीकरण चाहे पूंजीपतियों के हाथ में हो चाहे राज्य के हाथ में हो, खतरनाक है। यदि राज्य के हाथ में शक्ति केन्द्रित हो गयी तो भी नागरिकों की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जायेगी। इसलिए वे बड़े-बड़े उद्योगों के ही विरोधी थे। उनकी राय थी कि यथासम्भव सभी सामान्य उपयोग की वस्तुओं का उत्पादन छोटे-छोटे उद्योगों द्वारा होना चाहिए इसे "विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था" कहते हैं क्योंकि इसमें उत्पादन बिखरे हुए छोटे-छोटे कुटीर-उद्योगों द्वारा होता है। गांधीजी की राय में विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था होने से पूंजीपति व मजदूर की समस्या नहीं रहेगी, और आर्थिक शोषण मिटाया जा सकेगा। ऐसी व्यवस्था स्थापित करने के लिये गांधीजी ने बड़ा प्रयत्न किया। उन्होंने खादी ग्रामोद्योग और कुटीर व्यवसाय को महत्त्व दिया और ऐसी संस्थाएँ स्थापित कीं जो ग्रामोद्योग को पनपा सकें। इस प्रकार गांधीजी अहिंसा के सिद्धान्त के आधार पर विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था कायम करना चाहते थे।

गांधीजी की यह भी राय थी कि अहिंसा और विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर ही स्वतन्त्र भारत का ढाँचा अर्थात् संविधान बनाया जाये। वे ग्राम स्वराज्य के पक्ष में थे। वे चाहते थे कि प्रत्येक गाँव या कुछ गाँव मिलकर अपना शासन आप चलावें, प्रादेशिक या केन्द्रीय सरकार उनके स्थानीय मामलों में हस्तक्षेप न करे। शासन-तन्त्र जितना विकेन्द्रित होगा उतना ही नागरिक अपने उत्तरदायित्व और अधिकार की ओर जागरूक होंगे। शासन व्यवस्था जितनी ही केन्द्रित होती जायेगी, उतना ही स्वतन्त्र और जनतन्त्र के लिए खतरा बढ़ता जायेगा। इसी दृष्टि से वे साम्यवाद तथा राज्य-समाजवाद के विरुद्ध थे।

गांधीजी ने अपने मूल सिद्धान्त अहिंसा के द्वारा हमारे सामाजिक जीवन के शुद्धीकरण का भी प्रयत्न किया। उन्होंने यह समझ लिया था कि हमारे समाज में दो महान् दोष ऐसे हैं, जो हिंसा और कलह के कारण बने हुए हैं—एक तो छुआछूत का अभिशाप और दूसरा हिन्दू-मुस्लिम-द्वेष। 'छुआछूत' हिन्दू समाज के विभाजन तथा विघटन का कारण बना हुआ है। यह भावना तथाकथित उच्चवर्णों तथा अछूतों दोनों के लिए हानिकारक है तथा हिन्दू समाज के लिए कलंक है। गांधीजी ने अछूतों को 'हरिजन' अर्थात् भगवान के प्रेमपात्र कहकर पुकारा। उनकी उन्नति के लिए 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की और अपने जीवन के कई बहुमूल्य वर्ष उनकी सेवा में लगाये। यह मुख्यत: गांधीजी की प्रेरणा का फल है कि आज स्वतन्त्र भारत के संविधान में "छुआछूत" को गैर कानूनी बना दिया गया है। पिछले वर्षों में छुआछूत और हरिजनों की समस्याओं का अन्त करने की दिशा में बहुत प्रगति हुई।

गांधीजी के मानव-प्रेम का एक पक्ष था—उनका सर्व-धर्म-समभाव उन्हें यहभी।

पसन्द नहीं था कि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों को अपने धर्म में मिलाने का प्रयत्न करे। जब गांधीजी के आश्रम में सामूहिक प्रार्थना होती थी तो उसमें गीता, कुरान शरीफ, बाइबिल, आदि विभिन्न महान धर्मग्रंथों में से चुनी हुई प्रार्थना की जाती थीं, अपनी प्रिय रामधुन जिसे वे अपने साथियों के साथ गाते थे—

"ईश्वर अल्लाह तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान्"

उन्हें ईश्वर में पक्का विश्वास था। वे मानते थे कि मनुष्य तो कर्त्तव्य मात्र कर सकता है, सफलता प्रदान करना भगवान के हाथ में है। सन् 1942 में जब वे 'भारत छोड़ो आन्दोलन' आरम्भ करने वाले थे तो किसी साथी ने कहा, बापू आप अंग्रेजों को अन्तिम चुनौती दे रहे हैं। वे आसानी से भारत का राज्य छोड़ने वाले थोड़े ही हैं। मेरी राय में इतनी बड़ी चुनौती है जिसके लिए आपने तैयारी नहीं की है। गांधीजी ने उत्तर दिया—मैंने जिस हद तक संभव था, अपना कर्त्तव्य किया है; बाकी मैं भगवान पर छोड़ता हूं। संकट तथा दुविधा के समय ईश्वर सही मार्ग दिखलायेगा, यह उनका दृढ़ विश्वास था।

गांधीजी सत्य को भगवान का स्वरूप मानते थे। अपना सारा जीवन उन्होंने सत्य की खोज में लगा दिया था। उनकी दृष्टि में यही सत्य की खोज थी। उनका यह भी विश्वास था कि पूर्णरूप से अहिंसा को स्वीकार किए बिना मनुष्य सत्य या ईश्वर की खोज नहीं कर सकता। यदि मन द्वेष, क्रोध या हिंसा से दूषित हो, मनुष्य सत्य की तह में कैसे पहुंच सकता है? सत्य रूपी ईश्वर की खोज कैसे कर सकता है?

गांधीजी की अहिंसा प्रेम का ही दूसरा नाम है। उन्होंने कहा भी है—"मैं अपने प्रभु से साक्षात्कार करने के लिए व्यग्र हूं। मेरा प्रभु सत्यस्वरूप है। लेकिन अपनी साधना के आरम्भ में ही मैंने पहचान लिया था कि अगर मुझे जीवन का चरम सत्य पाना है तो मुझे प्रेम की हुकूमत के आगे अपने को झुका देना होगा।"

लेकिन हमें प्रेम का विस्तार करना चाहिए। हमें अपने गांवों को प्यार करना चाहिए, फिर जिले को प्यार करना चाहिए, फिर देश को और अन्त में हमें अपने को विश्वप्रेम में लीन कर देना चाहिए।

"मेरे पास तो सिवाय प्रेम के किसी और का अधिकार नहीं है। प्रेम देता है, कभी कुछ माँगता नहीं। प्रेम सदा दुःख सहता है, कभी दुःख देता नहीं, कभी बदला नहीं लेता।"

"जहाँ प्रेम है वहीं भगवान है। गांधीजी ने अपने जीवन में ऐसे ही निःस्वार्थ प्रेम साकार किया था।"

सन् 1947 में भारत की स्वतन्त्रता और देश के भारत और पाकिस्तान के रूप में विभाजन के साथ ही जब देश में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे तो गाँधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए बंगाल के नोआखली क्षेत्र में पैदल घूम-घूम कर साम्प्रदायिक उन्माद में पागल बने लोगों को उसी प्रेम का अमृत-मंत्र दिया और साम्प्रदायिकता की दावाग्नि को शांत किया। किन्तु कुछ साम्प्रदायिक लोगों को गांधीजी का मुसलमानों और पाकिस्तान के प्रति प्रेम और न्यायपूर्ण व्यवहार सहन नहीं हुआ, फलस्वरूप 30

जनवरी 1948 को दिल्ली में प्रार्थना-सभा में जाते हुए गांधीजी के सीने में पिस्तौल से तीन गोली दाग कर एक 'पागल'—नाथूराम गोडसे ने उनकी हत्या कर दी और देश के स्वतन्त्रता-संग्राम का सेनानी, मानव जाति का अनन्य सेवक, अहिंसा का साधक और सत्य का दीप पार्थिव रूप से निर्वाण को प्राप्त हो गया।

आइन्स्टीन ने ठीक ही कहा था—"हो सकता है कि आने वाली पीढ़ियाँ ऐसा विश्वास भी न कर सकें कि इस प्रकार का कोई रक्त-माँस वाला पुरुष पृथ्वी पर कभी गुजर कर गया भी होगा।"

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

बापू की अमर कहानी

सुनो-सुनो ए दुनिया वालो, बापू की ये अमर कहानी।
वह बापू जो पूज्य है इतना, जितना गंगा माँ का पानी।।
पोरबन्दर गुजरात देश में, एक ऋषि ने जनम लिया।
मात-पिता ने मोहनदास करमचन्द गांधी नाम दिया।।
बचपन खेल-कूद में गुजारा, लन्दन जाकर विद्या पाई।
बैरिस्टर बन अफरीका में, जाकर अपनी धाक जमाई।।
लेकिन जो फानी दुनिया में, अमर कहाने आते हैं।
वो कब माया मोह में फंसकर, अपना समय गँवाते हैं।।1।।
सुनो···

अफरीका में हिन्दी जन की, बड़ी दुर्दशा पाई।
गोरे राज से टक्कर लेकर सत्य की ज्योति जलाई।।
फिर भारत में सेवा करने अपने देश में आया।
साबरमती में सत्याग्रह का आश्रम आन बनाया।।
और खिलाफत कान्फ्रेन्स में सभापति का दर्जा पाया।
इस्लामी अधिकार की रक्षा में भी हाथ बटाया।।
हिन्दू-मुस्लिम दोनों उसकी आँखों के तारे थे।
दुनिया के सारे ही मजहब बापू को प्यारे थे।।2।।
सुनो···

भारत कौमी कांग्रेस की ऐसी धूम मचाई।
कौमी झण्डे के नीचे फिर जनता दौड़ी आई।।
खादी का प्रचार किया फिर घर-घर खादी आई।
और विदेशी माल की होली गांधी ने जलवाई।।
चरखे की आवाज जो गूंजी हुई मशीनें ठण्डी।
और शान से लहराई भारत की तिरंगी झंडी।।3।।

भाग—2

फिर पूरन स्वराज्य का नारा जा लाहौर पुकारा।
आजादी का वीर सिपाही कभी न हिम्मत हारा॥
फिर डांडी पर जाकर अपने हाथों नमक बनाया।
सारे देश को सत्याग्रह का सुन्दर सबक पढ़ाया॥

म्हारा गांधी बावा

म्हारा गांधी बावा आवो जी आवो म्हारे देश।
म्हारा प्यारा बापू···
काँधे कमरिया हाथ लकुटिया घुटने धोती धारी।
जेल न जीवे तीरथ बणायां आजादी थी प्यारी।
म्हारा···॥1॥
चाल्यो नमक कानून तोड़वा,
बाँध कसोटी बंध तोड़बा,
सारे जहाँ में हलचल मचेगी,
काँपे सताहारी। म्हारा···॥2॥
घर-घर में जा अलख जगायो,
स्वतन्त्रता रो मन्त्र सिखाओ,
खादी धारी हमें बणायों,
वाने (गांधीजी को) एकता प्यारी।
म्हारा···॥3॥
घर-घर चरखो चलवायो,
छूत छात रो भेद मिटायो,
सत्य अहिंसा सम्बल जाको,
भारत तेरा पुजारी। म्हारा···॥4॥
तुकड्या की आवाज, भारत सदा रहे सरताज है।
ये फूलेगा राज चाहे हो जावे बलिदान है॥
प्यारा···

शहीद दिवस

शत-शत प्रणाम शहीदों को, बलिदानी निजी उम्मीदों को।
अपने घर छोड़े जिन्होंने फिर लौट के घर नहीं आए॥
वन्दे मातरम्! वन्दे मातरम्!! वन्दे मातरम्!!!
दुल्हन की मांग सिन्दूरी अधूरी भरी नहीं पूरी।
प्यास अपने पति चितवन की, बुझी नहीं जीवन भर पूरी॥
नित बच्चे तरसे दरशन को, नहीं पिता लौट घर पाए।

शत-शत प्रणाम शहीदों को, बलिदानी निजी उम्मीदों को ॥
वन्दे मातरम् ! वन्दे मातरम् !! वन्दे मातरम् !!!

गालियों से तन छन छन के, बदन में घाव हुए कितने ।
तख्ते फाँसी के चूमकर, भगत बलिदान हुए कितने ॥
नेताजी गए भारत से, जो आज तलक नहीं आए ।
शत शत प्रणाम शहीदों को, बलिदानी निजी उम्मीदों को ॥
वन्दे मातरम् ! वन्दे मातरम् !! वन्दे मातरम् !!!

समर भूमि के बलिदानी दे गए स्वतन्त्रता निशानी ।
वतन पर बलि-बलि जाने की, लो कर गए पूरी कहानी ॥
गांधीजी गए मन्दिर में जो कभी लौट नहीं पाए ।
शत-शत प्रणाम शहीदों को बलिदानी निजी उम्मीदों को ॥
वन्दे मातरम् ! वन्दे मातरम् !! वन्दे मातरम् !!!

मुक्तक

शहीदों ने तो वतन को तन मन धन दिया है—
बदले में नहीं वतन से, आज तक कुछ लिया है—
नाखून कटा कर शहीद होने वाले कहो—
तुमने अपने वतन की खातिर क्या किया है ?

माघ सुदी पंचमी : बसंत पंचमी

उत्सव की तैयारी

एक सप्ताह पहले से अर्थ-संग्रह का कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिये। आम सभा करके अर्थ-संग्रह की रकम निश्चित कर लेनी चाहिये। आय-व्यय का बजट बना लेना चाहिये। प्रत्येक वर्ग के मन्त्री अर्थ-संग्रह करें। उत्सव के दो दिन पूर्व आम सभा हो, जिसमें आय-व्यय के बजट पर पुनः विचार-विमर्श हो और विभिन्न समितियों का निर्माण हो। जैसे—पूजा-समिति, अभ्यागत-अतिथि-सत्कार-समिति, सुरक्षा-समिति, प्रसाद-वितरण-समिति और सांस्कृतिक-समिति आदि। प्रत्येक समिति का एक संयोजक रहे और उस पर ही उस समिति का सारा उत्तरदायित्व रहे।

बसन्तोत्सव के एक दिन पहले ही जगह-जगह पर बन्दनवार लगा दिये जायें। पूजा की सामग्री इकट्ठी कर ली जाय। केले के स्तम्भों से प्रवेश-द्वार को सुसज्जित कर दिया जाय। फल आदि प्रसाद की सामग्री को तैयार कर लिया जाय। मिष्टान्न की तैयारी बसन्तोत्सव के दिन ही हो। कपड़े पीले रंग से रंगवा लेने चाहिये।

बसन्तोत्सव के दिन सरस्वती-मंडप की सजावट हो जानी चाहिये। गान-वाद्य का भी प्रबन्ध हो। मंडलियों को निमन्त्रित करके उनको रामायण-गान के लिए उचित स्थान पर बैठा देना चाहिये और हवन होने के उपरान्त प्रसाद-वितरण हो। प्रसाद-वितरण में अन्न का समावेश हो और आम मंजरियों का उपयोग हो। सभी लोग पीले वस्त्रों में सुसज्जित रहें।

रात्रि के समय भोजन का प्रबन्ध होना चाहिये तथा रसवर्द्धन और आत्म-तृप्ति के लिए कोई शिक्षाप्रद सांस्कृतिक कार्यक्रम का अयोजन होना चाहिये। इस प्रकार वह दिन और रात्रि आनन्द और उल्लास में व्यतीत करनी चाहिये।

मूर्ति-विसर्जन के दिन रामायण-मंडलियों के गाने के साथ मूर्ति का जुलूस निकाला जाना चाहिये। ढोल, झाल आदि का प्रबन्ध होना चाहिये। साथ में हाथी, घोड़े आदि यानों का प्रबन्ध रहे। एक गाड़ी पर मूर्ति रहे और दूसरी गाड़ी पर रामायण गाने की मंडली रहे। तत्पश्चात् किसी समीप के पोखर, नदी या नहर में प्रतिमा का सिर्जन करना चाहिये और इसके बाद मंडली विघटित कर देना चाहिये।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

यह उत्सव ऋतुराज बसंत के आगमन में माघ सुदी पंचमी को मनाया जाता है। किसानों के घर में लक्ष्मी का आगमन हो जाता है और चैत की बुआई के साथ-साथ उनके परिश्रम के दिन भी लद जाते हैं। उसी दिन प्रकृति धानी साड़ी पहनकर, फूलों से लदकर मोहक और मादक रूप धारण करती है। किसानों के घर में अगहनी धान की फसल लक्ष्मी के रूप में तैयार रहती है और इस प्रकार आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त होकर तथा परिश्रम से विरत होकर ऋतुराज के मादक आगमन के कृषक उत्फुल्ल हो जाता है और खुलकर प्रकृति से फाग खेलता है। यह पर्व उस समय आरम्भ हुआ जब भारत सम्पन्न था और ऋतुराज के आगमन पर भोग और विलास के अतिरिक्त भारतियों का अन्य कोई कार्यक्रम नहीं रह जाता था। ऐसा कहा जाता है कि यह मौर्यों के समय में शुरू हुआ और गुप्तकाल में लोकप्रिय उत्सव बन गया। आज भी यह पर्व पंजाब, बिहार और बंगाल में खूब घूमधाम के साथ मनाया जाता है। इसी दिन कृषक अपने हल की पूजा करता है और नये वर्ष की खेती का अभियान करता है। भारत कृषि-प्रधान देश है। उस समय अगहनी की फ़सल समाप्त हो जाती है। चेती फ़सल का कोई झंझट नहीं रहता और इस प्रकार खेती के समस्त कार्यों से उन्मुक्त किसान प्रकृति के साथ विचरण करता है। भारत में खेती के साथ-साथ बारी का भी महत्त्व है। साधारण बोल-चाल की भाषा में हम खेती-बारी एक साथ बोलते हैं। जब आम्र में मंजरियां आ जाती हैं तो हम बारी से भी निश्चिन्त हो जाते हैं। इस प्रकार खेती और बारी दोनों के सधने के उपरान्त भोजन और भजन के अतिरिक्त रह ही क्या जाता है। इसीलिए तो बंसत पंचमी के दिन हम लोग पीत-पट धारण करके नये अन्न का उपभोग करते हुए आनन्द और उल्लास मनाते हैं एवं सरस्वती की पूजा करते हैं।

यह विद्यार्थियों का विशेष पर्व है। भारत का विद्यार्थी-समुदाय इस पर्व को अपना विशेष पर्व मानता है। इसीलिए तो विद्यालयों में अन्य पर्वों की अपेक्षा इस पर्व को अत्यधिक घूमधाम से मानने हैं।

शिक्षाएँ—सफाई का महत्त्व सीखते हैं और सरस्वती की वन्दना कर अध्ययन एवं अध्यापन की रुचि का वर्द्धन करते हैं। नये अन्न को ग्रहण कर शक्ति प्रदान करते हैं तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा उत्सवों द्वारा हृदय एवं मानस को विकसित करते हैं और रामायण-मंडलियों एवं अभिभावकों को बुलाकर प्रसाद-वितरण करते हैं और जन-सम्पर्क को बढ़ाते हैं, इस प्रकार जनता जनार्दन का दर्शन करते हैं। अभिनय एवं संगीत द्वारा ऐतिहासिक पुरुषों से परिचय प्राप्त करते हैं और शिक्षा ग्रहण करते हैं। आनन्द और उल्लास की घड़ियों में बसंत-पंचमी के दिन वर्ण, सम्प्रदाय तथा लिंग की दीवारें टूट जाती हैं और हम मनुष्यमात्र ही नहीं बल्कि हवन और पूजन से प्राणीमात्र के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

वसन्ती पवन

धीरे-धीरे बहो ऐ वसन्ती पवन।
लचके ना देखो दुल्हन का बदन॥

रुत होती है हरदम नहीं प्यार की—
नहीं खिलती हैं कलियाँ नित बहार की,
भँवरों से कहो गुन-गुन धीरे करें—
वो चल कर रुके हैं, कदम दो कदम;

धीरे-धीरे बहो ऐ बसन्ती पवन।
लचके ना देखो दुल्हन का वदन॥

न हरदम कली मुस्कराई कभी—
न हरदम जवानी ही आई कभी,
चन्दा से कहो वो कुछ ठहरे जरा—
महका है अभी तो बसन्ती बदन;

धीरे-धीरे बहो ऐ वसन्ती पवन।
लचके ना देखो दुल्हन का बदन॥

कुछ मौसम गुलाबी-गुलाबी हुआ—
कुछ बहकी-बहकी चलती हवा,
फूलों से कहो नित ही महका करें—
उन्हीं से तो महका है ये गुलबन्दन;

धीरे-धीरे बहो ऐ बसन्ती पवन।
लचके ना देखो दुल्हन का बदन॥

वसन्ती दुल्हन

सुमन बसन्ती, पवन वसन्ती बासन्ती हर शाख फली।
बासन्ती दुल्हन की देखो, लगती है हर बात भली॥

है बसन्ती मुख मण्डल पर—
झील से गहरे नयन सलोने,
नील कमल से इन नयनों में—
बासन्ती डोरे रस डोने;
रूप अनूप बासन्ती चितवन !
पायल की झनकार में मधुवन !
कोकिल कण्ठी मल्हार मल्हारे—
लगती है फनकार भली।

सुमन बसन्ती, पवन बसन्ती, बासन्ती हर शाख फली।
बासन्ती दुल्हन की देखो, लगती है हर बात भली।।
झिलमिल सोनिल भाल पै बिंदिया —
चिकुरन जाल उड़ाए निंदिया,
पूनम का चन्दा मुख मण्डल,
गौरवर्ण बासन्ती कुण्डल—
दुल्हन ठुमक ठुमक बल खाए,
बासन्ती चूनर लहराए—
नयनों में कजरे की घटा।
यह छटा निरख हर कली खिली।
सुमन बसन्ती पवन बसन्ती, बासन्ती हर शाख फली।
बासन्ती दुल्हन की देखो, लगती है हर बात भली।।

बसन्त-बहार

है आज बसन्त पंचमी—
ऋतुराज बसन्त पंचमी,
माँ सरस्वती का वन्दन—
मंगलकारी सब माने।
ये रंग-बिरंगी तितली—
फूलों के सुख से निकली,
लो गुन गुन करते भँवरे—
गाते हैं गीत सुहाने।
खेतों में सरसों फूली—
कोयलिया डाल पै झूली,
लो महकीं मस्त हवाएँ—
कहतीं दिल के अफसाने।
अम्बर की चादर नीली—
धरती पर सरसों पीली,
इन्साँ की क्या हस्ती है ?
इन सबको रब ही जाने।
यह महकन है गुलशन की—
या कोई गुलबदन की,
कचनार की ये कलियाँ—
भँवरे इनके दीवाने।

कही गेंदा कहीं चमेली—
कहीं सुरजमुखी कही वेली,
कहीं महके फूल हजारा—
जो देखे वही सब जाने ।

कहीं महके रात की रानी—
कमलों में आई जवानी,
मेहकी केसर कस्तूरी—
कोई माने या ना माने ।

कलियों ने घूंघट खोले—
मुख निरखा भँवरे बोले,
आम व जामुन बौराए—
मधुमास चला है गाने ।

भोले बच्चों की टोली,
फूलों से हँसकर बोली,
क्या माया है भगवन की !
हर कली लगी रंग लाने ।

ये कली कली की रंगत—
फूलों के दिल से संगत,
तुम भी बन जाओ बसन्ती—
दिल दारा तुमको माने ।

गुलशन महक रहे हैं—
पक्षी चहक रहे हैं,
हर दिल की धड़कन में—
बसन्त के नए तराने ।

दयानंद-दिवस

उत्सव की तैयारी

(1) उत्सव की तैयारी के दो दिन पूर्व सभी छात्रों व शिक्षकों को उत्सव के कार्य-क्रम की सूचना देनी चाहिए जिससे वे उत्सव में बोली जाने वाली सामग्री का संकलन व बोलने की तैयारी कर सकें।

(2) उत्सव सम्बन्धित महापुरुष। पर्व पर छात्रों को प्रेरित करने हेतु सभा-स्थल पर आदर्श वाक्य लिखने व महापुरुष का चित्र लगाना चाहिए।

(3) उत्सव में बोली जाने वाली सामग्री का संकलन कर विद्यालय पत्रिका में उसे स्थान देना चाहिए।

(4) कार्यक्रम का संयोजन छात्रों की एक कार्यक्रम समिति द्वारा करवाया जाना चाहिए।

(5) दयानंद सरस्वती के जन्म-दिन के रोज आर्यसमाज के उपदेशों व कार्य-क्रमों का प्रचार-प्रसार करना चाहिए तथा कुरीतियों और अन्धविश्वासों को समाज से दूर करने हेतु छात्रों को प्रेरणा देनी चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

आज से लगभग सवा सौ वर्ष पहले की बात है, जबकि यह देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। उस समय हमारे देश की सामाजिक स्थिति बड़ी ही दयनीय थी

झूठे-सच्चे मत-मतान्तरों से देश का लोक-जीवन ध्वस्त हो रहा था। छूत-छात जात-पाँत तथा अनेक मिथ्या अन्धविश्वास देश के सामाजिक जीवन को भीतर ही भीतर से खोखला किये दे रहे थे। उपयुक्त समय था कि कोई दृढ़ और सामर्थ्यवान् व्यक्तित्व देश को इस स्थिति से उबारने का भागीरथ प्रयत्न करे। आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द देश की इस सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही जैसे इस पृथ्वी पर आये। उनका जन्म विक्रम सं० 1881 (22 फरवरी) में सौराष्ट्र प्रदेश के टंकारा नामक ग्राम में हुआ था। उनका पहला नाम मूलशंकर था। मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण सौराष्ट्र की प्रथा के अनुसार उनका यह नाम रखा गया था, परन्तु घर

में उनका प्रचलित नाम दयाराम था। संन्यास लेते समय उन्होंने अपना नाम बदलकर दयानन्द कर लिया।

ब्राह्मण कुल में उत्पन्न बालक की जिस प्रकार की शिक्षा-दीक्षा उन दिनों हुआ करती थी, वैसी मूलशंकर की भी हुई। संस्कृत, व्याकरण, रुद्राध्यायी तथा यजुर्वेद-संहिता का अध्ययन उन्होंने कोई तेरह वर्ष की आयु तक समाप्त कर लिया।

उनके पिता कर्षनलाल जी त्रिवेदी मोर्वी राज्य की ओर से गाँव के जमादार (तहसीलदार) थे। वे सामवेदी ब्राह्मण थे, किन्तु शिवोपासक होने के कारण यजुर्वेद को बहुत मानते थे। पिता ने पुत्र को भी धार्मिक ज्ञान दिया। और शिव-भक्ति की ओर अग्रसर किया।

आयु का 13वाँ वर्ष समाप्ति पर था, जब संवत् 1894 विक्रमी में मूलशंकर के जीवन में एक ऐसी घटना घटित हुई जिसने उनके जीवन का प्रवाह ही बदल दिया। शिवरात्रि का दिन था। पिता ने अपने साथ उन्हें भी शिवरात्रि का व्रत रखने के लिए कहा। माता की इच्छा न थी, पर पिता के आग्रह से मूलशंकर ने भी उपवास रखा।

दिन तो बीत गया किन्तु जब रात्रि हुई और शिव-भक्त-जन जागरण के लिए मन्दिर में एकत्र हुए तो मूलशंकर को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अपने को परम शिव-भक्त मानने वाले कई लोग जिनमें उनके पिता भी सम्मलित थे, नींद को नहीं रोक सके और खर्राटे भरने लगे। बालक मूलशंकर में बाल्यकाल से ही एक बड़ा गुण था और वह था—विचार और विश्वास की दृढ़ता। परिणामतः जिस दृढ़ता से वह दिन-भर भूखा रहा था, उसी दृढ़ता से रात-भर जागने के लिए भी बैठा रहा।

उधर भक्त लोगों के सो जाने पर जब निस्तब्धता छा गयी तो मन्दिर के एक कोने से एक चूहा निकला और शिवमूर्ति पर चढ़े हुए पदार्थों को कुतर-कुतर कर खाने लगा। मूलशंकर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पिता को जगाया और उनसे पूछा कि अपार शक्ति वाले भगवान शिव के मस्तक पर एक साधारण-सा चूहा चढ़ गया, यह कैसे सम्भव हो सका ? पिता ने इस प्रश्न को मूर्खता मात्र समझा और डाँट-डपट कर मूल-शंकर को घर भेज दिया।

घटना साधारण थी किन्तु उस दिन बालक मूलशंकर के मन में जो जिज्ञासा उत्पन्न हुई, वह उनके भावी तत्त्वज्ञान का बीज बन गयी। आगे 16 वर्ष की अवस्था में जो एक और घटना घटी, उसका वर्णन स्वयं ऋषि दयानन्द ने अपनी आत्मकथा में इस प्रकार किया है—

"मेरी 16 एर्ष की आयु के पीछे मेरी 14 वर्ष की बहिन थी। उसे हैज़ा हुआ। एक रात्रि में, जिस समय कि नाच हो रहा था, नौकर ने खबर दी कि उसे हैजा हुआ है, तब सब जन वहाँ से तत्काल आये और वैद्य आदि बुलाये गये और औषधि भी की। पर चार घण्टे में उसका शरीर छूट गया। जन्म से लेकर उस समय तक मैंने यही प्रथम बार मनुष्य को करते देखा था। उससे मेरे हृदय पर वज्रपात हुआ। सब लोग रोने लगे। मुझको रोना तो नहीं आया, परन्तु मन में भय उत्पन्न हुआ कि देखो संसार में कुछ भी

में उनका प्रचलित नाम दयाराम था। संन्यास लेते समय उन्होंने अपना नाम बदलकर दयानन्द कर लिया।

ब्राह्मण कुल में उत्पन्न बालक की जिस प्रकार की शिक्षा-दीक्षा उन दिनों हुआ करती थी, वैसी मूलशंकर की भी हुई। संस्कृत, व्याकरण, रुद्राध्यायी तथा यजुर्वेद-संहिता का अध्ययन उन्होंने कोई तेरह वर्ष की आयु तक समाप्त कर लिया।

उनके पिता कर्षनलाल जी त्रिवेदी मोर्वी राज्य की ओर से गाँव के जमादार (तहसीलदार) थे। वे सामवेदी ब्राह्मण थे, किन्तु शिवोपासक होने के कारण यजुर्वेद को बहुत मानते थे। पिता ने पुत्र को भी धार्मिक ज्ञान दिया। और शिव-भक्ति की ओर अग्रसर किया।

आयु का 13वाँ वर्ष समाप्ति पर था, जब संवत् 1894 विक्रमी में मूलशंकर के जीवन में एक ऐसी घटना घटित हुई जिसने उनके जीवन का प्रवाह ही बदल दिया। शिवरात्रि का दिन था। पिता ने अपने साथ उन्हें भी शिवरात्रि का व्रत रखने के लिए कहा। माता की इच्छा न थी, पर पिता के आग्रह से मूलशंकर ने भी उपवास रखा।

दिन तो बीत गया किन्तु जब रात्रि हुई और शिव-भक्त-जन जागरण के लिए मन्दिर में एकत्र हुए तो मूलशंकर को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अपने को परम शिव-भक्त मानने वाले कई लोग जिनमें उनके पिता भी सम्मलित थे, नींद को नहीं रोक सके और खर्राटे भरने लगे। बालक मूलशंकर में बाल्यकाल से ही एक बड़ा गुण था और वह था—विचार और विश्वास की दृढ़ता। परिणामतः जिस दृढ़ता से वह दिन-भर भूखा रहा था, उसी दृढ़ता से रात-भर जागने के लिए भी बैठा रहा।

उधर भक्त लोगों के सो जाने पर जब निस्तब्धता छा गयी तो मन्दिर के एक कोने से एक चूहा निकला और शिवमूर्ति पर चढ़े हुए पदार्थों को कुतर-कुतर कर खाने लगा। मूलशंकर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पिता को जगाया जौर उनसे पूछा कि अपार शक्ति वाले भगवान शिव के मस्तक पर एक साधारण-सा चूहा चढ़ गया, यह कैसे सम्भव हो सका ? पिता ने इस प्रश्न को मूर्खता मात्र समझा और डाँट-डपट कर मूल-शंकर को घर भेज दिया।

घटना साधारण थी किन्तु उस दिन बालक मूलशंकर के मन में जो जिज्ञासा उत्पन्न हुई, वह उनके भावी तत्त्वज्ञान का बीज बन गयी। आगे 16 वर्ष की अवस्था में जो एक और घटना घटी, उसका वर्णन स्वयं ऋषि दयानन्द ने अपनी आत्मकथा में इस प्रकार किया है—

"मेरी 16 एर्ष की आयु के पीछे मेरी 14 वर्ष की बहिन थी। उसे हैजा हुआ। एक रात्रि में, जिस समय कि नाच हो रहा था, नौकर ने खबर दी कि उसे हैजा हुआ है, तब सब जन वहाँ से तत्काल आये और वैद्य आदि बुलाये गये और औषधि भी की। पर चार घण्टे में उसका शरीर छूट गया। जन्म से लेकर उस समय तक मैंने यही प्रथम बार मनुष्य को करते देखा था। उससे मेरे हृदय पर वज्रपात हुआ। सब लोग रोने लगे। मुझको रोना तो नहीं आया, परन्तु मन में भय उत्पन्न हुआ कि देखो संसार में कुछ भी

नहीं है। इसी प्रकार किसी दिन मैं मर जाऊंगा। इसलिए कुछ ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे जन्म-मरण रूपी बन्धनों से छूटकर मुक्ति हो। यह विचार मन में रहा। किसी से कुछ कहा नहीं।"

तीन वर्ष बाद जबकि मूलशंकर 19 वर्ष के ले, एक और घटना घटी। उसका वर्णन भी स्वामी जी के शब्दों में ही सुनिये---

"इतने में उन्नीस वर्ष की अवस्था हो गयी। तब जो मुझसे अति प्रेम रखने वाले, बड़े धर्मात्मा मेरे चाचा थे उनको विशूचिका (हैजा) ने आ घेरा। मरते समय उन्होंने मुझे पास बुलाया। लोग उसकी नाड़ी देखने लगे। मैं भी समीप बैठा हुआ था। मेरी ओर देखते ही उनकी आँखों से अश्रु बहने लगे। मुझे भी उस समय बहुत रोना आया। इससे पूर्व मुझे कभी रोना नहीं आया था। उस समय मुझे प्रतीत हुआ कि मैं भी चाचा-जी के सदृश एक दिन मरने वाला हूं। उनकी मृत्यु से वैराग्य उत्पन्न हुआ कि संसार में कुछ भी नहीं है। परन्तु यह बात माता-पिता से नहीं कही। अन्य मित्रों से कहा कि मेरा मन गृहस्थाआश्रम नहीं करना चाहता। उन्होंने माता-पिता से कहा। माता-पिता ने विचार किया कि इसका विवाह शीघ्र कर देना ही ठीक है। जब मुझे मालूम हुआ कि वे बीस वर्ष में ही विवाह कर देंगे, तब मित्रों से कहा कि हमारे पिता तथा माता से कहो कि मेरा विवाह न करें। फिर उन्होंने एक वर्ष जैसे-तैसे रोका।"

यह थी घटनाओं की वह श्रृंखला, जिससे मूलशंकर के हृदय में वैराग्य की भावना विकसित हुई। बहुत कुछ कहने-सुनने पर भी जब माता-पिता विवाह के लिए तुले रहे तो 21 वर्ष की आयु में मूलशंकर ने अपने जीवन रूपी जहाज का लंगर खोलकर उसे अथाह समुद्र में छोड़ दिया। वे घर से उठकर निकल भागे।

घर से निकलकर यह जिज्ञासु युवक लगभग 15 वर्ष तक किसी योग्य गुरु की तलाश में घूमता रहा। गृह-त्याग की पहली रात्रि उसने अपने नगर से 6 कोस की दूरी पर व्यतीत की। इसके बाद वह प्रतिदिन आगे बढ़ता गया। अपनी इस ज्ञान-यात्रा में वह युवक कहाँ-कहाँ नहीं घूमा। हिमालय की गुफाओं में,सघन वनों में किन्हीं मठों में तो कभी किन्हीं तीर्थ-स्थानों में वह भटका। सर्दी-गर्मी,भूख और प्यास सभी प्रकार के कष्ट आये, किन्तु उसके हृदय में ज्ञान की सच्ची लगन लग चुकी थी, उसके सामने ये सब कष्ट उसे नगण्य-से लगे। इसी ज्ञान-यात्रा में वह पहले एक ब्रह्मचारी से दीक्षा लेकर शुद्ध चेतन ब्रह्मचारी बना और फिर नर्मदा के तट पर एक विद्वान संन्यासी श्री पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास ग्रहण कर उसने दयानन्द सरस्वती नाम धारण किया।

संन्यासी होकर भी इस महान जिज्ञासु की सद्गुरु की खोज बराबर चलती रही। अन्त में वह खोज फलवती हुई और मथुरा में दण्डी श्री विराजानन्द जी महाराज के रूप में उन्हें एक योग्य गुरु प्राप्त हो गया। ढाई वर्ष तक उनके चरणों में बैठकर दयानन्द ने प्रकाण्ड विद्वत्ता प्राप्त की। इन वर्षों में उन्होंने गुरु-सेवा, ब्रह्मचर्य और परिश्रम द्वारा अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया। दीक्षा के उपरान्त गुरुजी ने उनसे गुरु-दक्षिणा के रूप में यह माँगा कि—"बेटा, जा, लिखा-पढ़ा सफल कर। देश का सुधार और

उपकार कर। सत्य का प्रचार कर। मत-मतान्तर की अविद्या को मिटा।"

अपने गुरु से यह स्फूर्तिदायक सन्देश लेकर स्वामी दयानन्द सरस्वती वैशाख संवत् 1920 में उनके आश्रम से विदा हुए। अब उन्होंने धर्मोपदेश प्रारम्भ किया। थोड़े ही समय में यह ब्रह्मचारी साधु भारत-भर में प्रसिद्ध हो गया। उनके व्याख्यनों में इतनी प्रबल सच्चाई, ज्ञान की ऐसी गहराई और हृदय की ऐसी सच्ची भावना रहती थी कि जो कोई उनकी बात सुनता वह मुग्ध हो उठता। कई बड़े-बड़े विद्वानों और तर्क-शास्त्रियों से भी उनके शास्त्रार्थ भी हुए।

शास्त्रार्थों में जीत-हार का निश्चय तो श्रोताओं की रुचि के अनुसार ही होता है परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनके तेजस्वी व्यक्तित्व, अद्भुत पांडित्य और दृढ़ विश्वास के कारण प्रत्येक शास्त्रार्थ किसी न किसी रूप में उनके विचारों और सिद्धान्तों के प्रचार में सहायक होता गया। काशी के पण्डितों के साथ उनका जो शास्त्रार्थ हुआ, वह तो एक प्रकार से शंकराचार्य और मंडन मिश्र के शास्त्रार्थ की तरह प्रसिद्ध हो गया। स्वामी दयानन्द की वेदों में बड़ीआस्था थी। वेदों का उन्होंने बड़ी गम्भीरता से अध्ययन किया। वैदिक धर्म के नाम पर जो अनेक कुरीतियाँ रूढ़ियाँ और मिथ्या-विश्वास जन-साधारण में घर कर गये थे, उनके निवारण के लिए तथा वैदिक दृष्टिकोण को सही रूप में जनता के सामने रखने के लिए उन्होंने भगीरथ प्रयत्न किया। पण्डे-पुजारियों आदि के द्वारा जहाँ-तहाँ जो पाखण्ड-लीला चला करती थी, उसका उन्होंने दृढ़ता से प्रतिवाद किया छुआछूत तथा ऊँच-नीच की भावनाओं का भी उन्होंने बड़ी तीव्रता से विरोध किया। रूढ़िवाद और 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' की भावना का भी उन्होंने खण्डन किया तथा विचार और विवेकपूर्वक तथ्यातथ्य के निर्णय का उपदेश किया।

उनका उपदेशों का सार यह था कि मनुष्य-मात्र समान हैं। गुणों और कर्मों से ही उनमें भिन्नता आती है, किन्तु भिन्नता को आधार बनाकर मानव-जाति को जात-पाँत के कठघरे में बाँधना अथवा छूआछूत के विष का बीज बोना न उचित है और न बाँछनीय। परमात्मा की प्रार्थना व उपसना तथा अन्य मानवीय अधिकारों के उपभोग का मनुष्य मात्र को समान अधिकार है। क्या स्त्री और क्या पुरुष सभी को शिक्षा-दीक्षा की समुचित सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिये। इसमें जाति, वर्ण और वर्गगत भेद-भाव जैसी कोई बात बाधक नहीं बननी चाहिये।

पारिवारिक जीवन में दयानन्द ने बहुविवाह का विरोध किया तथा उसे वैदिक सिद्धान्तों के विपरीत बताया। वे बाल-विवाह के उग्र विरोधी थे। बाल-विवाह के परिणामस्वरूप ससाज में बाल-विधवाओं की संख्या में जो चिन्ताजनक वृद्धि हो रही थी, उधर भी उनका ध्यान गया था। बाल-विवाह को उन्होंने व्यक्ति के समुचित आत्म विकास तथा सम्पूर्ण समाज के मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक बताया तथा उसे बन्द करने का उपदेश दिया। दूसरी ओर समाज में विधवाओं की दयनीय दशा पर भी उनकी दृष्टि गयी। उन्हें परिवार तथा समाज में सम्मानपूर्वक स्थान दिये जाने का उन्होंने दृढ़ता से समर्थन किया। विधवा-विवाह को अनुचित या धर्म-विरुद्ध कहने

वालों को भी उन्होंने चुनौती दी। सती-दाह की जो अमानुषिक प्रथा भारत के कई भागों और वर्गों मे प्रचलित थी, उसका भी उन्होंने बड़ी सशक्त भाषा में विरोध किया और उसे धर्म के विरुद्ध बताया।

उपासना के क्षेत्र में ऋषि दयानन्द ने निराकार ईश्वर की उपासना पर अधिक बल दिया। उन्हें अपने जीवन में जिस प्रकार के अनुभव हुए थे, उनसे मूर्ति-पूजा से उनका विश्वास उठ गया था। हिन्दू-समाज में जो अन्धविश्वास और निरर्थक कर्मकाण्ड बढ़ गया था, उसका उन्होंने विरोध किया। मरने पर श्राद्ध करने के बजाय जीवित माता-पिता व गुरुजनों की सेवा तथा अकर्मण्य संन्यासी जीवन के स्थान पर संसार का उपकार करने वाले संन्यासी रूप का प्रतिपादन कर उन्होंने धार्मिक सुधार के लिए महान् प्रयत्न किया।

शास्त्रार्थ, व्याख्यान, चर्चा आदि के साथ-साथ स्वामीजी ने अपने सिद्धान्तों के प्रसार के लिए साहित्य भी तैयार किया। प्रसार के लिए वे जहाँ जाते, ग्रन्थ लिखने की सामग्री और लेखकों को भी साथ ले जाते। सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका, वेद-भाष्य तथा उनके अन्य सब ग्रन्थ प्राय: उनकी प्रचार-यात्राओं में ही लिखे या लिखाये गये।

अपने विचारों और सिद्धान्तों के प्रचारार्थ ऋषि दयानन्द ने कई देशव्यापी यात्राएँ कीं। काशी, प्रयाग, कलकत्ता आदि अनेक स्थानों पर होते हुए वे बम्बई गये। बम्बई में जो व्यक्ति उनके उपदेशों से प्रभावित होकर उनके अनुयायी बने उनमें महादेव गोविन्द रानाडे का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अपने सिद्धान्तों के प्रचार को स्थानीय रूप देने की दृष्टि से स्वामीजी ने बम्बई में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की। इसके दो वर्ष बाद दूसरे आर्यसमाज की स्थापना लाहौर में हुई। दक्षिण भारत की यात्रा समाप्त कर स्वामीजी पुन: उत्तर भारत आये। उनके जीवन का अधिकांश समय यात्रा करते ही बीता और इसका वांछनीय परिणाम भी निकला। देश के कोने-कोने में अनेक लोग उनके अनुयायी बन गये, जिसमें स्वामी श्रद्धानन्द आदि जैसे कई महापुरुष भी थे।

वाणी और लेखनी द्वारा अपने सिद्धान्तों और विचारों के प्रचारार्थ स्वामीजी ने महात्मा बुद्ध की भाँति लोक-भाषा का प्रयोग किया। वे संस्कृत के भी प्रकाण्ड विद्वान थे और उन्हें संस्कृत में लिखने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। किन्तु उन्होंने संस्कृत को छोड़कर अपना समस्त प्रचार देश में सबसे अच्छी तरह बोली और समझी जाने वाली, भाषा हिन्दी में ही किया। स्वामीजी को अपने उद्देश्य में जो असाधारण सफलता मिली, उसका एक मुख्य कारण उनकी यह सूझबूझपूर्ण भाषा-नीति भी थी।

स्वामीजी के मन में भारतीय संस्कृति के प्रति गहरी निष्ठा थी। उनके ग्रन्थों और भाषाओं ने भारतवासियों का ध्यान अपनी प्राचीन संस्कृति के गौरवमय इतिहास की ओर आकर्षित किया जिससे उनके निराश हृदय में एक नवीन आशा और आत्म-सम्मान का भाव जाग्रत हुआ। उन्होंने स्थान-स्थान पर अपने देशवासियों का स्वतन्त्रता

की प्राप्ति के लिए आह्वान किया। कांग्रेस की स्थापना से कई वर्ष पूर्व 'सत्यार्थप्रकाश' नामक ग्रन्थ में उन्होंने यह लिखा था कि "कोई कितना ही करे परन्तु जो 'स्वदेशी राज्य' होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है, जबकि मत-मतान्तर के आग्रह से रहित, अपने और पराये के पक्षपात से शून्य तथा प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है।"

स्वामीजी ने अपने ग्रन्थों में जिस सुराज्य का चित्र खींचा था, वह लगभग एक सौ वर्ष के बाद स्वतन्त्र भारतीय गणराज्य के रूप में सार्थक हुआ। स्वामीजी के पारमार्थिक जीवन की चर्चा करते हुए उनके वैयक्तिक चरित्र के संतोष, क्षमा, सरलता, शान्तिप्रियता आदि गुणों का उल्लेख भी भुलाया नहीं जा सकता। उनके खण्डन से क्रुद्ध होकर कई बार लोग उनकी हत्या तक के लिए कटिबद्ध हो गये थे। एक दिन की बात है कि एक ब्राह्मण स्वामीजी के समीप आया और उन्हें एक पान भेंट किया। स्वामीजी ने सहजभाव से उसे मुंह में रख लिया। उसका रस लेते ही वे जान गये कि यह विषयुक्त है। ब्राह्मण से कुछ न कहकर वे उसी समय गंगा पार चले गये और वस्ति और न्योली-क्रिया कर विष को निकाल आये। स्वामीजी को विष देने का यह भेद किसी तरह स्थानीय तहसीलदार को मालूम हो गया। वह स्वामीजी का भक्त था। उसने विष देने वाले को बुलाकर कैद कर दिया। जब स्वामीजी को यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने कहला भेजा, "मैंने सुना है कि मेरे लिए आज आपने एक व्यक्ति को कैद किया है। मैं मनुष्यों को मुक्ति दिलाने आया हूँ, बन्धन में डलवाने नहीं। अस्तु आप उसे स्वतन्त्र कर दें।" स्वामीजी की क्षमावृत्ति देखकर तहसीलदार चकित रह गया।

निर्भयता भी स्वामीजी में उच्चतम कोटि की थी। एक बार जब वे अजमेर आये हुए थे, उनकी एक पादरी के साथ भेंट हुई। भेंट के समय पादरी साहब ने उन्हें कहा कि "यदि आप इसी तरह खण्डन करते रहे तो किसी दिन जेल चले जायेंगे।" स्वामीजी ने बड़ी गम्भीरता के साथ मुस्कराते हुए कहा—"मैं लोगों के डराने से सत्य नहीं छोड़ सकता। ईसा को भी लोगों ने फाँसी पर लटका दिया था।"

स्वामीजी बड़े-छोटे में कोई भेद नहीं करते थे। उनकी दृष्टि में सब प्रकार के कार्यों का एक ही समान स्थान था। एक दिन एक भक्त धुनिये ने प्रार्थना की—"स्वामी जी, जप के अतिरिक्त मुझे और क्या कर्म करना चाहिए, जिससे मेरा कल्याण हो ?" स्वामीजी ने कहा—"सदाचारपूर्वक जीवन बिताओ। जितनी रुई किसी से लो, धुनकर उतनी ही उसे लौटा दो। यही सद्-व्यवहार तुम्हारे लिए एक उत्तम कल्याणकारी मार्ग है।"

छुआछूत में स्वामीजी का विश्वास नहीं था। उनकी दृष्टि सबके लिए सम थी। अनूपशहर की बात है, एक दिन एक हरिजन बड़ी भक्ति-भावना के साथ थाल में भोजन परोस स्वामीजी की सेवा में लाया। स्वामीजी ने भोजन ले लिया। संयोग की बात कि उस समय वहाँ कुछ रूढ़िवादी व्यक्ति भी बैठे हुए थे। वे कह उठे—"छि: छि: स्वामीजी, यह क्या करते हैं ? यह रोटी तो अछूत की है।" स्वामीजी ने हँसते हुए उत्तर दिया—

"नहीं, यह रोटी तो गेहूँ की है, इसलिए मैं इसे अवश्य खाऊँगा।"

स्वामीजी की क्षमाशीलता का सबसे बड़ा उदाहरण उनके जीवन की अन्तिम दुर्घटना में मिलता है। राजस्थान की तत्कालीन विविध रियासतों में भ्रमण करते हुए वे जोधपुर आये हुए थे। जोधपुर के महाराजा की उन पर बड़ी श्रद्धा थी। राजवंश के इस प्रकार सत्पथ पर चले जाने की आशंका से कुछ स्वार्थी लोग बहुत झुंझला उठे। महाराजा की एक मुंहलगी वेश्या थी। वह महाराजा पर स्वामीजी के बढ़ते हुए प्रभाव से बहुत ही सशंक और रुष्ट थी। उसने कुछ कट्टरपंथी लोगों के साथ मिलकर षड्यंत्र किया और स्वामीजी के रसोइये के द्वारा उन्हें दूध में घोलकर पिसा हुआ काँच पिलवा दिया। काँच ने शरीर पर भयानक विष का असर किया। शरीर भर में फोड़े फूट पड़े, जिससे दो मास तक पीड़ित रहकर 30 अक्टूबर, 1883 को भारत के इस महान् सुधारक संत का देहान्त हो गया। स्वामीजी को उक्त घटना के तुरन्त बाद ही वस्तुस्थिति का पता चल गया था। किन्तु उन्होंने अपने रसोइये को, जिसका नाम जगन्नाथ था, कुछ भला-बुरा कहने या दण्डित करने के बजाय अपने पास बुलाया और कुछ रुपये देकर कहा, "जो कुछ होना था, वह हो गया। अब तुम तुरन्त यहाँ से कहीं दूर चले जाओ, नहीं तो बात फूटने पर यहाँ तुम्हारी कुशल न रहेगी।" ऋषि दयानन्द के क्षमाभाव का यह एक ऐसा उदाहरण है जिसकी समता के उदाहरण मानव-इतिहास में विरले ही मिलते हैं।

स्वामी दयानन्द ने अन्धविश्वास तथा निरर्थक सामाजिक रूढ़ियों का विरोध कर समाज-सुधार के लिए भगीरथ प्रयत्न किया। भारतीय समाज उनका सदैव कृतज्ञ रहेगा।

"मैं किसी भी भय से आक्रान्त होकर सन्मार्ग का त्याग नहीं कर सकता।"

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

दयानन्द सरस्वती-जयन्ती

काठियावाड़ मोरवी राज्य में, ग्राम नाम टंकारा है।
अठारह सौ चौबीस में, यहाँ दयानन्द ने शरीर धारा है॥
उदीच्च ब्राह्मण पिता कर्षन जी, जमींदार भू-स्वामी थे।
मूल को पाला लाड़-प्यार से, वैभव सम्पन्न स्वामी थे॥
जब मूलशंकर हुए पाँच साल के, विद्यालय में पठा दिए।
तीव्र बुद्धि बालक ने विद्याध्ययन में, बड़े चमत्कार किए॥
शिवजी के भक्त पिताजी थे, जो धर्म-कर्म को निभाते थे।
अपने साथ मूलशंकर को वह, मन्दिर नित ले जाते थे॥
मूल जी ने शिवरात्रि को, पिता के संग व्रत-उपवास किया।
रात्रि को शिव मन्दिर गए, प्रभु भजन में गहन विश्वास किया॥
आधी रात ढली सत्संगी सोए, मन्दिर में चहुँ ओर।
सुनसान हो गया सारा मन्दिर, था खर्राटों का शोर॥

मूल जी बैठे हाथ जोड़कर, ध्यान लगा शिव प्रतिमा पर।
उसी समय एक चुहिया चढ़कर, घूमी-फिरी शिव-प्रतिमा पर ।।
यह दृश्य देख मूलशंकर का, शिव प्रतिमा से विश्वास गया।
हृदय पलट गया उसका, वह फिर नहीं मूर्ति के पास गया ।।
गहरी चोट लगी दिल पर, मूर्ति-पूजा से विश्वास गया।
पत्थर भगवान हो नहीं सकता, वह सच्चे शिव को तलाश गया ।।
अपनी शंका मिटाने खातिर, वह अपने पिता से बोल उठा।
शिव-प्रतिमा पर चुहिया चढ़ बैठी, प्रतिमा उसे न सकी हटा ।।
कर्षन ने बहुत समझाया मूल को, पर वह एक नहीं माने।
व्रत तोड़ डाला अपना, और झट से लगे खाना खाने ।।
लगा गहरा धक्का मूल को, जब प्यारी बहन का देहान्त हुआ।
चित्त उठ गया भव सागर से, नहीं सच्चे गुरु बिन शान्त हुआ ।।
ऐश्वर्य-भोग विलास पर, नहीं मूल ने तनिक विचार किया।
अकस्मात घर छोड़ा, विवाह-बन्धन नहीं स्वीकार किया ।।
शुद्ध चैतन्य अमर जीवन की, बूटी खातिर जग में घूमे।
ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया, फिर योगाभ्यास में रमे झूमे ।।
ज्वालानन्द-शिवानन्द ने, मूल को योग का ज्ञान दिया।
विरजानन्द ने मूल को, सरस्वती दयानन्द बना दिया ।।
अठारह सौ चौहत्तर में, 'सत्यार्थप्रकाश' का प्रकाश किया।
पाखण्ड मिटा हिन्दू धर्म के, आर्यसमाज का सुविकास किया ।।
बाल-विवाह, सती-प्रथा, अन्ध रूढ़िवादिता को दूर दिया।
अज्ञानता, पर्दाप्रथा-छुआछूत के भूत को चूर किया ।।
मातृभाषा हिन्दी का, आर्यवर्त में नित प्रचार किया।
नारी-शिक्षा का प्रबल समर्थन, दयानन्द ने शत बार दिया ।।
विधवा, विवाह का प्रचार कर, स्वामी ने नारी-जीवन उबार दिया।
बलि-प्रथा को रोक स्वामी ने, मानवता पर उपकार किया ।।
शुद्धि मन्त्र द्वारा हिन्दुओं को पुनः हिन्दुत्व प्रदान किया।
बेड़ी काटी जाति-पाँति की, हर मानव को सम्मान दिया ।।
एकेश्वरवाद-ईश्वरोपासना, को महत्त्व अपार दिया।
ढोंग पाखण्ड अज्ञान हरकर ब्रह्मचर्य को मोक्ष आधार दिया ।।
वैदिक धर्म, प्राचीन संस्कृति का, स्वामी ने नित प्रचार किया।
संस्कृत का उत्थान कर गुरुकुल प्रणाली का प्रसार किया ।।
वेदों के ज्ञान भण्डार का, जन मन में नित प्रचार किया।
विद्यालय-महाविद्यालय, स्थापित कर, अज्ञान को निवार दिया ।।
स्वदेश, स्वधर्म, स्वभाषा, स्वाभिमान, को नित उजागर किया।
स्वराज्य का शंखनाद कर, स्वामी ने स्वयं को निसार दिया ।।

राजस्थान-दिवस : 30 मार्च

उत्सव की तैयारी

राजस्थान-दिवस का हमारे प्रांत के नव-निर्माण में विशेष महत्त्व है। उससे पूर्व राजस्थान अनेक इकाइयों में विभक्त था। इस दिन छात्रों को राजस्थान स्वतन्त्रता दिवस, के पूर्व एवं स्वतन्त्रता के पश्चात् का तुलनात्मक विवरण करते हुए, प्रगति के चरणों की व्याख्या करनी चाहिए। मानचित्र द्वारा राजनीतिक स्थिति के विभिन्न सोपानों को दर्शाया जा सकता है। यदि सुविधा हो तो राजस्थान की आर्थिक प्रगति के सम्बन्ध में प्रदर्शनी का आयोजन किया जाय। बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रगति का ब्योरा भी प्रस्तुत करना चाहिये। राजस्थान शासन के नये बीस संकल्पों की जानकारी भी दी जानी चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

राजस्थान आज एक इकाई के रूप में दिखाई दे रहा हैं, प्राचीन काल में ऐसा नहीं था। राजस्थान अनेक छोटी-छोटी रियासतों में बँटा हुआ था। प्रत्येक रियासत अपने आप में स्वतन्त्र इकाई थी। वे दिल्ली के बादशाह को निश्चित धनराशि नजराने से रूप में दिया करते थे। छोटी-छोटी बातों पर आपसी युद्ध होते रहते थे। इस प्रकार इस प्रान्त की संयुक्त क्षमता का हम लाभ नहीं प्राप्त कर सकते थे। आपसी युद्ध एवं बाह्य आक्रमणों ने प्रगति के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था।

राजस्थान का नव-निर्माण—यह क्षेत्र प्राचीन काल में 'राजपूताना' के नाम से प्रसिद्ध था। इसमें अनेक छोटी-छोटी रियासतें थीं। यहाँ राजा राज्य करते थे पर उन पर केन्द्रीय सरकार (अंग्रेजों) का नियन्त्रण था। इन रियासतों में जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर और कोटा मुख्य थीं। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत के तत्कालीन गृह-मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल के प्रयत्नों से इन रियासतों का भारत संघ में विलय हो गया।

राजस्थान का एकीकरण—सरकार सामन्ती परम्पराओं को समाप्त करके प्रजातांत्रिक परम्परा को स्थापित करने के लिए दृढ़ संकल्प थी। इस सम्बन्ध में प्रयत्न

किये गये और 30 मार्च 1949 को राजस्थान का प्रारम्भिक एकीकरण हो गया। प्रशासनिक दृष्टि से राजस्थान एक हो गया।

नवम्बर 1956 में भारत के राज्यों का पुनर्गठन हुआ। उस समय राजस्थान की सीमाओं में परिवर्तन एवं वृद्धि की गयी। राजस्थान में राजप्रमुख और महाराज प्रमुख के पदों को समाप्त कर राज्यपाल का पद तय किया गया। राजस्थान में अनेक राजनीतिक परिवर्तन आते रहे हैं। पर उसके विकास की गति पर उसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। आशा है अपने ऐतिहासिक गौरव की तरह ही वर्तमान में भी राजस्थान प्रगति के मार्ग पर अपना कीर्तिमान स्थापित करेगा।

राजस्थान

अरावली अरु सतपुडा
पौरुष प्रबल प्रदत्त
रज रज में बलिदान का
राजपूताना मत्त
कण-कण शुचि अभिमान युत
रज रज शुचि माता प्रेम
बलिदानों की अमर भू
राजस्थानी क्षेम
हँस हँस कर जौहर करें
ललक चढ़ावें प्राण
बलिदेवी की शुचि धरा
राजस्थान महान
गर्वोन्नत नभ चूमता
गढ़ चित्तौड़ महान
स्वर्णाक्षर अंकित कथा
कुंभाजी की शान
सांगा की ललकार वह
राणा की परताप
हठी हमारी कीर्तियुत
राजसिंह अनुताप
पद्मिनी की ज्वाला उठो
गोरा की ललकार
वीर प्रसू रस रागिनी
भरो ओज आगार
ढूंढो तो यदि मिल सके
इतिहासों के माँय

पूत कटा दे वचन हित
वह पन्ना सी धाय
अलबेली पन्ना भई
अरे कसौटी धीर
तब ममता निष्ठुर भई
अब नयनों में नीर
धन धण धन भट्ट गोद मां
धन रज धन सरदार
आन राखवें को सजें
मृत्युन के त्यौहार
जिन चाहा आश्रय दिया
राखी है निज बान
रणत भँवर की यश कथा
हठी हमारा मान
हाडी रानी की कथा
रानी का सम्मान
सूझ बूझ अनुपम रही
हाडौती कीं शान
स्वामी हित सम्मान हित
जुझे अंतिम स्वास
मरुथल मुख उज्ज्वल हुआ
धन धन दुर्गादास
वीरप्रसू जो मरुस्थल
भक्ति तीर्थ का देश
श्रीजी, पुष्कर पुण्यथल
नाथद्वार मथुरेश
हल्दीघाटी हींडती
चेतक चेतै नाथ
आबू उत दरगाह इत
रामदेव नत माथ
इत मरुथल उत लहरते
जय अरु राजसमंद
मस्त पिछोला झूमती
चम्बल देत अनंद

कैसे अलबेलो मिलन
राग रचें रण सूर
कै असिधारा चूमते
कै काव्यन रस चूर
झंझन करते शस्त्र हैं
यश गाता कवि चंद
राणा को यश दे गये
पृथ्वीराज के छंद
मस्त भई मीरा भगति
बही काव्य की धार
दादू सुन्दरदास के
भजन गवें हर द्वार
सूर्यमल्ल की वह तड़प
रजवाड़े धिक्कार
रग रग शौर्य उँडेलती
वीरशती अधिकार
सत्तावन मचला जहाँ
वह कोटा की भूम
'बॉटन' सिर गोली दगी
वह चौराहा चूम
चूंटया चौंटत चित है
राणा पलटत लीक
धन्य केसरीसिंह जी
बारहटों की सीख
प्रथम बिगुल करशाँ बज्यो
बिजोलिया के गाँव
पथिक और साधू उठे
उपरमाल के ठाँव
अलबेली राजस्थली
शौर्य प्रीति का बीज
जितनी तीखी खंग है
उतनी मीठी तीज

हाड़ौती

दक्खन पूरब शुचिधरा
राजस्थानी गोद
अरावली अरु मुकुन्द्रा
लहरै आँचल मोद
हाड़ौती अंचल मुदित
वन खंडों के बीच
कालिसिन्ध, चम्बल महा
पार्वती जल सींच
गढ़ गढ़ियों का क्षेत्र है
खंडहर मिते विशेष
भरे पुरातन यश कथा
हाड़ौती का देश
गागरोन अरु शाहगढ़
बूंदी दुर्ग निहार
भड देवरा, शेरगढ़
चम्पावती विहार
पुरातत्त्व भरमार है
देवालय सुललाम
शिव, माता बृजराज के
पग पग मिलते धाम

चैत्र शुक्ला रामनवमी

उत्सव की तैयारी

स्कूल बन्द होने के पूर्व सबको सूचना दे देनी चाहिये कि हम लोग रामनवमी का पर्व मनायेंगे। यदि आसपास के गाँव में मठ हो या राम का मन्दिर आदि हो तो वहीं पहुंचकर ग्रामीणों के साथ रामनवमी का पर्व मनाना चाहिए। वहाँ के ग्रामीणों से यह पता लगा लेना चाहिए कि वहाँ पर लोग अर्थ-संग्रह भी कर रहे हैं ? यदि कर रहे हैं तो विद्यालय से भी कुछ आर्थिक सहायता कर देनी चाहिए। दूसरे दिन छात्र एवं शिक्षक विद्यालय की सफाई करके मन्दिर में पहुंचें, वहाँ की सफाई करें और वहीं पर सूत्र-यज्ञ करें। फिर राम की कथा-चर्चा हो, उनके विषय में कविताएं और लेख पढ़े जाएं। अन्त में रामायण-पाठ और प्रसाद-वितरण हो।

छात्रों को उत्सव में रामचरितमानस के उदाहरणों द्वारा मर्यादा पुरुषोत्तम राम और अन्य पात्रों के आदर्श जीवन से प्रेरणा देनी चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

बहुत पुराने समय में इक्ष्वाकु-वंश में दशरथ नाम के राजा अयोध्या में राज्य करते थे। उनकी तीन रानियाँ थीं—कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। उनके कोई भी संतान नहीं थी, अतः ऋषियों ने कहा कि आप यज्ञ करें। राजा दशरथ ने एतदर्थ वसिष्ठ को आज्ञा दी। वसिष्ठ ऋषि ने श्रृंगी ऋषि को यज्ञ करने के लिए बुलाया। यज्ञ प्रारंभ हुआ। उस यज्ञ में खीर बनी। उस खीर को दो भागों में बाँटकर कौशल्या और कैकेयी को दे दिया गया। कौशल्या और कैकेयी ने अपने-अपने हिस्से से थोड़ी-थोड़ी खीर निकालकर सुमित्रा को भी दे दी, अत: कौशल्या को एक पुत्र राम, कैकेयी को एक पुत्र भरत, तथा सुमित्रा को दो पुत्र लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न हुए। राम का जन्म चैत्र सुदी नवमी सोमवार को हुआ था। चारों भाई क्रमश: बढ़ने लगे। इसी समय विश्वामित्र मुनि राम की बहादुरी को सुनकर दशरथ के पास राम और लक्ष्मण को कुछ दिनों के लिए लेने आए। उन्होंने जंगल में राक्षसों को मारकर उनके यज्ञ को निर्विघ्न कर दिया। विश्वामित्र मुनि उन्हें परि-भ्रमण के लिए जनकपुर ले गए। उसी समय सीता का स्वयंवर हो रहा था। देश-विदेश

के भूपति उस स्वयंवर में आये थे। किन्तु उसमें एक शिव-धनुष रखा हुआ था। उसे चढ़ाना था। किन्तु सभी राजे हार गये, किसी से कुछ न हो सका; यहाँ तक कि कई राजाओं ने एक साथ उठाने की भी कोशिश की, वह भी व्यर्थ सिद्ध हुई। "भूप सहस दस एकहि बारा, लगे उठावन टरे न टारा।" अत: जनक जी उदास होकर बोले—

"वीर विहीन मही मैं जाना।"

अब लक्ष्मण का क्रोध भभक उठा। राम ने उन्हें शान्त करके धनुष तोड़ा और सीता से शादी करके धूमधाम से अयोध्या लौटे। राजा दशरथ अब बूढ़े हो चले थे। उन्होंने सोचा कि राम को गद्दी देकर स्वयं वन में तपस्या करूँ। ऐसा सोचकर उन्होंने एक सभा बुलाई जिसमें राम को युवराज बनाने और तदनन्तर उन्हें सिंहासनारूढ़ करने की बात की। इसी समय उन्हें खबर लगी कि कैकेयी कोप भवन में है। वे वहाँ पर घबराते हुए आए। कैकेयी को उन्होंने देवासुर-संग्राम के समय दो वर माँगने के लिए कहा था। कैकेयी ने तब कहा था कि मैं अवसर आने पर माँग लूंगी। अवसर देखकर उसने वही दो वर माँगे। उसने माँगा कि राम को चौदह वर्ष का वनवास और भरत को राजगद्दी दें। यह वचन सुनते ही राजा के पैरों तले की मिट्टी खिसक गई।

पिता द्वारा दिये वचन निभाने को उधर राम वन गये और इधर राम के वियोए में दशरथ के प्राण-पखेरू उड़ गए। अयोध्या की जनता राम के रथ के पीछे चिल्लाती हुई दौड़ी—"सुमन्त, रथ रोको ! सुमन्त रथ रोको !" उस समय भरत ननिहाल में थे। वसिष्ठ ने उन्हें दशरथ की मृत्यूपरान्त बुलाया और आने पर उन्हे सारा सम्वाद सुनाया। किन्तु यहाँ पर कुछ दूसरा ही समा बंधा हुआ था। वहाँ की जनता में न तो कोई सम्मान था और न दिल में कोई अरमान। सारी जनता विह्वल थी राम के शोक में। भरत अयोध्या की जनता के साथ राम को पुन: जंगल से वापस लाने के लिए चल पड़े। चित्रकूट में दोनों भाइयों की मुलाकात हुई। भरत और अयोध्या की जनता की कातर वाणी को सुनकर भी राम नहीं लौटे। वे तो पृथिवी पर अवतीर्ण हुए थे कि उन्हें पापियों के अत्याचारों से लोगों को मुक्ति दिलानी थी। अन्त में भरत राम की खड़ाऊं लेकर अयोध्या लौट गए और अयोध्या के समीप के वन में निवास करने लगे। खड़ाऊं को सिंहासन पर रख राम की प्रतिमूर्ति के रूप में उनकी पूजा करते हुए वे राज्य-संचालन करते रहे।

राम जंगल में एक दिन एक स्वर्ण-मृग के पीछे उसका वध करने के लिए दौड़े। किन्तु वह तो मायावी मृग था। कुछ दूर जाने पर वह गायब हो गया। इधर राम के न लौटने पर सीता अति व्याकुल हुईं। उन्होंने लक्ष्मण को राम को खोजने के लिए भेजा। लक्ष्मण को नारी-हृदय पर विश्वास नहीं हुआ, अत: उन्होंने झोंपड़ी के चारों ओर एक लकीर खींच दी और उसके बाहर जाने से निषेध कर दिया। उसी समय लंकाधिपति रावण को सुअवसर प्राप्त हुआ और भिखारी का भेष धारण करके सीता को चुराने के निमित्त भिक्षा लेने आया। सीता खींची लकीर के भीतर से ही भिक्षा देने लगीं। किन्तु रावण ने, जो भिखारी था, कहा कि "मैं रेखा के भीतर से भिक्षा नहीं लूंगा।" ज्योंही

सीता रेखा के बाहर आईं, रावण उन्हें हरकर लंका ले गया। बीच में जटायु, जो राम का परम भक्त था, रावण से लड़ पड़ा, किन्तु रावण ने उसका एक पंख काट दिया। जब राम अपनी कुटिया में लौटे तो सीता को न देखकर विचलित हुए। सर्वत्र उन्होंने सीता की खोज की। यहाँ तक कि वन के पेड़-पौधों से भी पूछते चलते, "हे खग ! मृग ! हे मधुकर-श्रेणी ! तुमने देखी सीता मृगनयनी ?"

मार्ग में घायल जटायु से भेंट हुई। उसने सारा विवरण कह सुनाया। अब राम का क्रोध भड़क उठा। मार्ग में उन्होंने किष्किंधा पर बालि का वध किया और सुग्रीव से मैत्री कर वानर जाति के लोगों की सेना जुटाई और उस सेना को लेकर लंका पर चढ़ाई करने के लिए प्रस्थान किया। सेतु बाँध रामेश्वरम् में उन्होंने शिव-पूजा की और इसके बाद समुद्र पर पुल बाँध सेना सहित पार उतर गए। इस प्रकार वहाँ के अत्याचारी राजा रावण को युद्ध में मारकर भारत की लक्ष्मी को अयोध्या ले आए और पृथिवी को उसके भीषण दमनचक्रों से मुक्ति दिलाई। लंका के राज्य को रावण के भाई विभीषण को सौंप दिया। अयोध्या में खूब आनन्द मनाया गया और खूब धूमधाम के साथ उनका राज्याभिषेक किया गया। आज हम लोग उन्हीं की यादगार में उनकी जन्मतिथि मानते हैं।

शिक्षाएं—राम की तरह पितृ-मातृ-भक्त एवं देश-भक्त होना चाहिए। राम की तरह मातृ-प्रेम रखना चाहिए। हम सभी को इस जनराज्य को रामराज्य में बदलने के लिए बनना चाहिए। भरत और राम के बीच राज्य गेंद की तरह लुढ़क रहा था। इससे हम असंग्रह तथा निर्लोभ की शिक्षा ग्रहण करते हैं। सीता के पातिव्रत से और राम के पत्नीव्रत से प्रेरणा लेनी चाहिए। राम के पुरुषार्थ और कष्टसहिष्णु जीवन से भी प्रेरणा प्राप्त होती है। सदा अपने वचन का पालन करना चाहिए। सीता जैसी लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए जनक जैसे विदेह (स्थितप्रज्ञ) को भी हल उठाकर कर्मठ बनना पड़ा। इससे कर्म तथा ज्ञान का समन्वय करने की प्रेरणा मिलती है।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

दोहा

सुर मुनि अति व्याकुल भए, असुर बिगाड़े काज।
खल दलन खातिर प्रगटे, अवधिपति महाराज॥

चौपाई

चैत्र शुक्ला नवमी मलहारी। अवधहि जन्में अवधनिहारी॥
हरसत देव सुमन बरसाए। सुरमुनि राम दरस को धाए॥
दशरथ तनय मंजु मनोहारीज न मन ताहि निरख बलिहारी॥
पुलकित मुदित कैकेयी गाए। सुमित्रा मोती कोष लुटाए॥

अवधपुरी में हर्ष अपारा। मंगल गावत नर नारि सारा ।।
भवन आँगन अटारी बजार। ज्योतित दीप मालाएं अपार ।।
दशरथ पुलकित मन दान किया। गुरु मुनियों का सम्मान किया ।।
राम निधि कौशल्या ने पाई। अवध नगरिया बंटत बधाई ।।

दोहे

दशरथ घर पैदा हुए, विष्णु रूप श्रीराम।
कोटिक भव बाधा हरी, सुखधाम ।।

जो सुख चाहो जीव का जपो निरन्तर राम।
भव बन्धन कट जाएँगे जीवन ही सुचि धाम ।।

राम नाम सुमिरन करो, तजो कपट व्यापार।
सबके खेवट राम हैं, लग जाओगे पार ।।

राम-महिमा

नघुनाथ अवधपति रघुवर की हम कथा सुनाते हैं :
हम राम प्रेम की गंगा में सबको ही नहलाते हैं ।।

जब जब संकट छाया धरा पर—
तब तब राम ने जन्म लिया,
भक्तों की लाज बचाने को—
भगवन् ने विषघट पान किया;
हे राम ! तुम्हारे दर्शन को हम, प्रतिपल अकुलाते हैं।
हम राम प्रेम की गंगा में, सबको ही नहलाते हैं ।।

विश्वामित्र जी के यज्ञ में—
असुरों ने बाधा डाली थी,
ताड़का और सुबाहु बध कर—
यज्ञ की की रखवाली थी,
शिव धनुष को तोड़ राम, जनक सुता वर लाते हैं।
हम राम प्रेम की गंगा में सबको ही नहलाते हैं ।।

शाप से शापिथ अहल्या का—
श्री रघुवर ने उद्धार किया,
खा झूठे बेर शबरी के—
अछूतों पर उपकार किया;
मुनिवर पुरुषोत्तम की वीरता पर, वलि-वलि जाते हैं।
हम राम प्रेम की गंगा में सबको ही नहलाते हैं ।।

मंथरा के बहकाने से कैकेयी ने—
वचन दो माँग लिए,
राज भरत को राम को—
चौदह वर्ष वनवास के दिए;
रघुकुल रीत निभाने को, वन में अवधिपति जाते हैं।
हम राम प्रेम की गंगा में, सबको ही नहलाते हैं।।
राम ने माँगी नाव केवट से
नदी पार कर जाने को—
राम के चरण केवट ने धोये—
भव से पार लग जाने को;
राम ने की नदी पार, केवट भव से तर जाते हैं।
हम राम प्रेम की गंगा में, सबको ही नहलाते हैं।।
ऋषियों को सताने वाले—
विराध का वध तुमने किया—
सूर्पणखा को कुरूप करके—
मद-मर्दन उसका किया;
लो पंचवटी में अवधपति, कुटिया अपनी सजाते हैं।
हम राम प्रेम की गंगा में, सबको ही नहलाते हैं।।
खर दूषण मारीच को मारा,
जटायु का उद्धार किया,
बलि वध करके तुमने,
सुग्रीव पर उपकार किया;
हे नाथ ! तुम्हारे नाम से पत्थर, जल पर तर जाते है।
हम राम प्रेम की गंगा में, सबको ही नहलाते हैं।।

दोहा

अवधपति श्री राम की, महिमा अपरम्पार।
राम राज फूले, जग में शत-शत बार।।

महावीर-जयन्ती

उत्सव की तैयारी

वैसे समय की परिस्थितियों के अनुसार ही मनाया जाय, किन्तु सुझावात्मक ढंग से मनाया जाय तो अति उत्तम रहेगा। प्रातःकाल जुलूस के रूप में ग्राम-भ्रमण किया जावे जिसमें ग्रामीण भी सम्मिलित हो सकें तो अति उत्तम रहेगा। जिसमें महावीर स्वामी सम्बन्धी भजनों का उपदेश किया जा सकता है, क्योंकि इनका जानकार कोई न कोई अवश्य मिल सकता है। खास स्थानों पर (चौराहे पर) कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाय जिससे यह मालूम हो कि आज महावीर-जयन्ती है जैसे—"अहिंसा परमो धर्मः", "वन्दे वीरम्", "धर्मस्य मूलम् दया", "महावीर स्वामी की जय।" फिर शाला में ही एक सभा का आयोजन किया जावे, जिसमें महावीर भगवान् के विषय के जानकार को भी आमन्त्रित किया जाय ताकि विस्तृत रूप से छात्रों को अवगत कराया जा सकता है, खासकर शिक्षा द्वारा छात्रों को अधिक आसक्त किया जाय जिससे नैतिक विकास जो कि इन उत्सवों का खास उद्देश्य है—सम्भव होकर योजना साकार रूप में परिणित हो जाय। सम्भवतया मिठाई-वितरण का भी आयोजन रखने का प्रयास किया जावे।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

आज से करीब 26 शताब्दी पूर्व की बात है कि बिहार प्रान्त में वैशाली का एक भाग 'क्षत्रिय कुण्ड' नामक नगर है। पुरातत्त्ववेताओं के मत के अनुसार बिहार प्रान्त के गया नामक जिले में जहाँ आज लखवाड़ ग्राम बसा है, वही क्षत्रिय कुण्ड नामक ग्राम की अवस्थिति रही है। वहीं पर चैत सुदी 13 ईस्वी सन् के 599 वर्ष पहले इस दिव्य पुरुष ने सिद्धार्थ राजा की रानी त्रिशलादेवी के गर्भ से जन्म लिया, तब से पापियों की, हिंसकों की मनोवृत्ति में अन्तर पड़ना आरम्भ हो गया; जैसे मयूर ध्वनि सुनने मात्र से चन्दन के वृक्ष पर लिपटे हुए विषधर ढीले हो जाते हैं। आपका बचपन का नाम वर्द्धमान रखा गया था, परन्तु आगे चलकर जब वे अतीव साहसी, दृढ़-निश्चयी और विघ्न-बाधाओं पर विजय पाने वाले महापुरुष के रूप में सामने आये तब से ही आप महावीर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

महापुरुष बचपन से पवित्र संस्कार लेकर आते हैं। उनका जीवन कई जन्मों से बनता-बनता अन्तिम जन्म में जाकर पूर्ण होता है। महावीर प्रारम्भ से ही दयालु नीतिमान और मुमुक्षु प्रकृति के थे। आप जब कभी एकान्त पाते, चिन्तन में लग जाते और घण्टों आध्यात्मिक विचार सागर में डुबकियाँ लगाते रहते।

विवाह और वैराग्य की ओर— राजा सिद्धार्थ महावीर की चिन्तनशील प्रकृति से डरते थे, अतः शीघ्र समवीर राजा की सुपुत्री यशोदा के साथ महावीर का विवाह कर दिया। महावीर विवाह के बन्धन में बँध गए। धर्मपत्नी भी सुन्दरी व सुशीला थी, राज्य वैभव चरणों में हर समय न्योछावर था। सांसारिक सुख-भोगों में कमी न थी परंतु महावीर का वैरागी हृदय दुनिया की उलझनों में न उलझा, वह रह-रहकर मोह-बन्धनों को तोड़कर उठ खड़ा होता था। उसके समक्ष एक महान् भविष्य का उज्ज्वल चित्र अंकित जो हो रहा था।

राजकुमार महावीर 29 वर्ष की अवस्था के थे कि इसी बीच माता-पिता का देहान्त हो गया। राज-सिंहासन के लिये महावीर से समस्त परिवार और प्रजा की ओर से आग्रह किया परन्तु उन्होंने स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया। आखिर महावीर के बड़े भ्राता वन्दीवर्द्धन को राज-सिंहासन पर बिठा दिया गया। अन्ततः महावीर ने वैराग्य लेने का प्रस्ताव परिवार के सामने रखा, किन्तु बड़े भाता के आग्रह से 2 वर्ष और गृहस्थाश्रम में रहे। इस प्रकार कुल 30 वर्ष का जीवन गृहस्थ दशा में बिताया।

अन्ततोगत्वा भगवान् महावीर इसी निर्णय पर पहुंचे कि भारत का यह असाध्य रोग साधारण राजनीतिक हलचलों से दूर होने वाला नहीं है। इसके लिए तो सारा जीवन ही उत्सर्ग करना पड़ेगा, क्षुद्र परिवार का मोह छोड़कर विश्व परिवार का आदर्श अपनाना होगा। राजकीय वेशभूषा से सुसज्जित होकर साधारण जनता में नहीं घुला-मिला जा सकता है। उस तक पहुंचने के लिए लघुत्व स्वीकार करना पड़ेगा अर्थात् भिक्षुत्व स्वीकार करना होगा।

अतः राजकुमार महावीर अगहन कृष्णा दशमी को विश्वकल्याण हेतु राज्य-वैभव को ठुकराकर भोग-विलास को तिलांजलि देकर अपने पास की करोड़ों की सम्पत्ति दीन-हीनों को लुटाकर अकिंचन भिक्षुक बन गये।

साधना के पथ पर—इतिहास के पृष्ठों पर हम हजारों की संख्या में नेताओं को असफल हुआ पाते हैं। इसका कारण यह है कि वे सर्वप्रथम अपने जीवन का सुधार नहीं कर पाये थे। हृदय में मामूली-सा जोश आते ही विश्व का सुधार करने को मैदान में कूद पड़ते हैं, परन्तु विघ्न-बाधाओं का भयंकर तूफान सामने आते ही हताश होकर लौट जाते हैं।

परन्तु भगवान् महावीर ने दीक्षा लेते ही धर्म-प्रचार की शीघ्रता न की। पहले उन्होंने अपने आपको साध लिया। फलतः अन्तस्तथ में यह दृढ़ प्रतिज्ञा की, "जब तक कैवल्य (पूर्ण बोध) प्राप्त न होगा तब तक सामूहिक जन-सम्पर्क से अलग रहूंगा। एकांत में वीतराग भाव की साधना करूँगा ? अतः महावीर ने अपने शरीर तक की कोई पर-

वाह न की और निरन्तर उग्र आत्म-साधन में ही संलग्न रहे। क्या गर्मी क्या जाड़ा और क्या वर्षा अधिकतर निर्जन वनों में ध्यान लगाया, नगरों में भिक्षा आदि के लिए कभी-कभी ही आना होता था।

महावीर की यह साधना निरन्तर 12 वर्ष तक चलती रही। इस बीच में आपको बड़े ही भयंकर कष्टों का सामना करना पड़ा। हर जगह अपमानित होना पड़ा। ग्रामीण बड़ी निर्दयता से पेश आते थे। कभी-कभी तो प्राणन्तक पीड़ा के प्रसंग भी देखने को मिले; ताड़न, तर्जन, उत्पीड़न तो रोजमर्रा की बात थी। लाट देश में तो आपको शिकारी कुत्तों से भी नुचवा डाला था, परन्तु आप सर्वथा शान्त एवं मौन रहे। आपके हृदय में विरोधी से विरोधी के प्रति भी करुणा का झरना बहता था, द्वेष और रोष क्या चीज होती हैं, आपका अन्तर इस ओर सर्वथा अस्पृश्य रहा। भगवान की तितिक्षा एक प्रकार चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी।

चण्डकौषिक को प्रतिबोध—भगवान् महावीर 'दुइज्जत' तापस के आश्रम में प्रथम चातुर्मास समाप्त कर श्वेताम्बी की ओर जा रहे थे। मार्ग में कुछ मुसाफिर मिले। उन्होंने प्रभु से प्रार्थना की—इधर कुछ दूर झाड़ियों में चण्डकौशिक सर्प रहता हैं। वह दृष्टि विष है देखने भर से वायुमण्डल को विषाक्त बना देता है भगवान् मौन रहे और आगे बढ़े एवं सर्प की बांबी के पास जाकर ध्याल लगाया। सर्पराज ने गुस्से में आकर बार-बार फन की चोट मारी, श्वेत रुधिर की धारा बह निकली। चण्डकौशिक स्तब्ध रह गया। लाचार होकर चरणों में सिर रख दिया। बार-बार क्षमा मांगने लगा एवं चिरसंचित पाप कालिमा आज आँखों से आँसुओं के रूप में झर कर बाहर निकली। भगवान् ने सान्त्वना भरा उपदेश दिया। नागराज ने उस दिन से मन, वचन और कर्म से किसी को कुछ भी पीड़ा न देने का प्रण लिया।

अरिहन्त के पद पर—भगवान् महावीर 11-12 वर्ष तक इस प्रकार कष्ट सहन करते हुए आत्म-साधना करते रहे, प्रायः निर्जन वनों में रहना, जंगली पशुओं का रौद्र आतंक सहना, मनुष्यों एवं देवों के अत्याचारों को हँसते हुए सिर पर झेलना, छः-छः महीने तक अन्न का एक कण और जल की एक बूंद मुंह में न डालना।

इस प्रकार उग्र तप साधना करते हुए 'जंमिय' गाँव के पास बहने वाली 'ऋजु बालुका नदी' के तट पर पहुंचे। वहाँ साल का एक सघन वृक्ष था, उसके नीचे ध्यान लगाया हुआ था, आत्म-मन्थन चरम-सीमा पर पहुँच रहा था। बैशाख शुक्ला दशमी को केवल्य ज्ञान, केवल दर्शन के धर्ता जैन परिभाषा के अनुसार अरिहन्त और जिन हो गये।

इस प्रकार केवल्य ज्ञान मिलने के बाद किसी एक जगह न रहे, बराबर घूम-घूम कर उपदेश देते रहे, बड़े प्रेम से लोगों को सच्चे सुख और सच्ची शान्ती का रास्ता बताया। सबसे ज्यादा अहिंसा पर बल दिया। 'अहिंसा परमो धर्मः' का नारा बुलन्द किया। सब कोई जीवित रहना चाहता है इसलिए किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिये। सबकी भलाई के लिए एक मन्त्र 'जिओ और जीने दो' दिया। इसका मतलब यह है कि अपनी तरह हम दूसरों का भी ध्यान रखें और सब सुभीते दें। अहिंसा के साथ

संयम और तप एवं त्याग पर भी अधिक जोर दिया। उन्होंने कहा कि इनके बिना अहिंसा नहीं सध सकती है। पाँच महाव्रतों की महिमा बताई कि समाज की भलाई चाहते हो तो इन्हें इनका पालन अवश्य करना चाहिये। पहला व्रत, किसी को मत सताओ; दूसरा, हमेशा सत्य बोलो; तीसरा, चोरी न करो; चौथा, संयम रखें; पाँचवाँ, अपरिग्रह की आवश्यकता से अधिक वस्तु मत रखो।

उन्होंने यह भी बताया कि दुनिया में दुःख की जड़ अहंकार है, इसलिए किसी को भी अपनी बात पर हठ नहीं करनी चाहिये।

इस प्रकार भगवान् महावीर का उपदेश अमीर-गरीब, राजा-प्रजा, छोटे-बड़े सभी के लिए था। जाति-बन्धन एवं लिंग-बन्धन इनके यहाँ नहीं था। किसी भी जाति का साधु बनकर अपना जीवन सार्थक बना सकता है, उसी प्रकार स्त्रियों को भी पूर्ण रूप से अधिकार है। इनके संघ में 14000 भिक्षु थे, 36000 भिक्षुणियाँ थीं। इस प्रकार चहुं ओर त्याग और वैराग्य का समुद्र उमड़ता था।

निर्वाण पद—पावा नरेश हस्तिपाल के आग्रह से भगवान् ने अन्तिम चातुर्मास पावा नगरी में किया। कार्तिक अमावस्या आ चुकी थी, सोलह पहर तक निरन्तर एक प्रकार से अन्तिम रूप में प्रवचन कर रहे थे। शुक्ल ध्यान के द्वारा अवशिष्ट कर्मों के आवरण को हटाकर सदा के लिए अजर-अमर हो गये, यानी निर्वाण पाकर सिद्धमुक्त हो गये।

वह ज्ञान सूर्य—मुक्ति लोक में चला गया। आज साक्षात् दर्शन नहीं कर सकते, किन्तु धर्म प्रवचन के रूप में प्रसारित ज्ञान-किरणें हमारे सामने चमक रही हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम उन ज्ञान-किरणों के प्रकाश में सत्य का अनुसन्धान कर जीवन को सफल बनाएँ।

उपदेश—(1) जिस प्रकार कमल जल में पैदा होकर जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार जो संसार में रहकर काम-भोगों से अलिप्त रहता है उसे साधक कहते हैं।

(2) शरीर को नाव कहा है, जीव को नाविक और संसार को समुद्र। इसी संसार समुद्र को महर्षि लोग पार करते हैं।

(3) अपनी आत्मा को जीतना सब कुछ जीतना है।

(4) जैसे कछुआ आफत के समय अपने अंगों को अपने शरीर में सिकोड़ लेता है, उसी प्रकार साधक लोग विषयों की ओर जाती हुई इन्द्रियों को आध्यात्मिक ज्ञान से सिकोड़कर रखते हैं।

(5) स्त्री, पुत्र, मित्र और बन्धुजन सब जीते-जी के ही साथी हैं, मरने पर कोई भी साथ नहीं जाता है।

(6) क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विषय का, माया मित्रता का नाश करती है, लोभ सभी गुणों का।

(7) जो मनुष्य अपना भला चाहता है, उसे पाप को बढ़ाने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों दोषों को छोड़ देना चाहिए।

(8) ज्ञानी होने का सार ही यह है, वह किसी भी प्राणी की हिंसा न करे।

(9) जिस मनुष्य का मन अहिंसा, संयम, तप, धर्म में सदा लगा रहता है, उसे देवता नमस्कार करते हैं।

(10) अपनी आत्मा के साथ युद्ध करना चाहिये, बाहरी शत्रुओं के साथ युद्ध करने से क्या लाभ ? आत्मा के द्वारा आत्मजयी होने वाला ही वास्तव में पूर्ण सुखी है।

(11) जो आत्मा है वही विज्ञाता है, जो विज्ञाता है वही आत्मा है, क्योंकि ज्ञान के कारण ही आत्म शब्द का प्रयोग होता है।

(12) प्रत्येक साधक प्रतिदिन चिन्तन कर—मैंने क्या कर लिया है और क्या करना शेष है। कौन-सा ऐसा शाक्य कार्य है जिसको मैं नहीं कर पा रहा हूं।

(13) आत्मा ही अपने दुःख-सुख का कर्ता तथा भोक्ता है। अच्छे मार्ग पर चलने से निज आत्मा ही अपना मित्र है और बुरे मार्ग पर चलने वाला आत्मा ही अपना शत्रु है।

(14) सिर काटने वाला शत्रु भी उतना अपकार नहीं करता, जितना कि दुराचरण में आसक्त आत्मा करती है।

(15) ऐ जीव ! अजर-अमर है, महा-शक्तिशाली है और सम्पूर्णहै और दीखने वाला जगत् क्षणिक है, असमर्थ और निःसार है। तू इससे न्यारा है। और यह तुझसे न्यारा है।

(16) अन्नादि मिथ्यात्वश तू शरीर को स्वात्मा और विषय-भोग को सुख, परिग्रह को सम्पदा, नाम को वैभव, रूप को सुन्दरता, पशुबल को वीरता मानता रहा है।

रवीन्द्र-दिवस

उत्सव की तैयारी

(1) उत्सव दिवस के दो दिन पूर्व सभी छात्रों व शिक्षकों को उत्सव के कार्य-की सूचना देनी चाहिए जिससे वे उत्सव में बोली जाने वाली सामग्री का संकलन व बोलने की तैयारी कर सकें।

(2) उत्सव से सम्बन्धित महापुरुष। पर्व पर छात्रों को प्रेरित करने हेतु सभा-स्थल आदर्श वाक्य लिखने व महापुरुष का चित्र लगाना चाहिए।

(3) उत्सव में बोली जाने वाली सामग्री का संकलन कर विद्यालय पत्रिका में उसे स्थान देना चाहिये।

(4) कार्यक्रम का संयोजन छात्रों की एक कार्यक्रम समिति द्वारा करवाया जाना चाहिए।

(5) विश्वकवि की जीवन-झाँकी का भी सभा-स्थल पर आयोजन करना चाहिए।

उत्सव में बोलने हेतु सामग्री

कालिदास प्राचीन भारत के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं तो तुलसीदास मध्य युग के और आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं रवीन्द्रनाथ ठाकुर। रवीन्द्र भारत के ही नहीं विश्व के भी महाकवि हैं। उन्होंने जो लिखा है वह देश और काल की सीमाओं को लाँघकर मानव मात्र तक पहुंच जाता है।

रवीन्द्रनाथ का जन्म 7 मई, 1861 को कलकत्ते में हुआ। दुर्भाग्य से बचपन में ही उनकी माता का देहान्त हो गया। उनके पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर ब्रह्म-समाज के नेता थे। अपने पवित्र जीवन और उच्च आदर्शों के कारण वे महर्षि कहलाते थे। रवीन्द्रनाथ को प्रारम्भिक प्रेरणा और स्फूर्ति अपने पिता से ही मिली।

रवीन्द्रनाथ को घर में रवि नाम से पुकारा जाता था। बाल्यकाल से ही वे बड़े कल्पनाशील थे। उनके घर में पुराने जमाने की एक बहुत बढ़िया पालकी पड़ी होती थी। बालक रवि आँख बचाकर उसमें जा घुसता और भीतर से उसे बन्द कर लेता। भीतर घुसते ही उनकी कल्पना को पंख लग जाते और वे सोचने लगते कि वे राजकुमार हैं और कहार उन्हें उठाए लिए जा रहे हैं।

अपनी दादी और मां से रवि परियों और राजाओं की कहानियां खूब सुनते। डाकुओं की कहानियां भी वे चाव से सुनते। उन कहानियों से उम्हें मालूम हुआ की डाकू दो प्रकार के होते है। एक वे जो अमीरों का माल लूट कर गरीबों मैं बांट देते हैं और दूसरे वे जो गरीबों और निरपराधियों को लूटते-मारते हैं। रवि मन में सोचते रहते कि मैं बड़ा होकर एक नेक और बहादुर डाकू बनूंगा और गरीबों की सहायता करुंगा।

पर पढ़ने-लिखने से रवि को बहुत डर लगता। स्कूल के नाम से ही वे घबरा उठते। अध्यापक की शक्ल देखते ही उनकी घिग्घी बंध जाती। उसके हाथ में बेंत देखकर वे समझते कि अध्यापक का काम लड़कों को पीटना ही है। स्कूल में पढ़ने वाले लड़के उन्हें घटिया लगते हैं। वे सोचते स्कूल में जो पढ़ाई होती हैं, वह बड़ी हानिकारक होती है। इस प्रकार स्कूल से उन्हें बेहद घृणा हो गई थी। वे सदा ऐसे बहानों की तलाश में रहते कि जिससे उन्हें स्कूल न जाना पड़ें और कोई बहाना न मिलता तो वे बीमरी का बहाना ले बैंठते। इस विषय में अपने अनुभव से वे इस परिणाम हर पहुँचे थे कि सब बीमारियों में पेटदर्द का बहाना बहुत बढ़िया और आसान है। पर उनकी माता उनकी इस बहाने बाजी को समझती थीं। इसी लिए रवि के ये लक्षण देखकर उन्होने घर पर ही उनकी पढ़ाई की व्यावस्था कर दी।

पढ़ने-लिखने से दूर भागने वाले रवि को प्रकृति से असीम प्यार था। प्रकृति के सुन्दर दृश्यों को निहारते वे घण्टों बिता देते। अपने प्रकृति-प्रेम के बारे में उन्होने स्वयं भी लिखा है कि "प्रत्येक प्रातःकाल मुझे सुनहरी किनारी वाला लिफाफा जान पड़ता और ऐसा लगता कि वह मेरे लिए नया संदेश लाया है।" इसी बीच नगर में छूत की बीमारी फैल जाने के कारण उन्हे बोलपुर गांव भेज दिया गया। वहां उनके जीवन ने नई दिशा ली। दिन भर गांव का भ्रमण करते, गरीब किसानों से मिलते-जुलते और उनके सुख-दुःख में शरीक होते। सूर्योदय और सूर्यास्त के मनोहर दृश्य देखकर वे ठगे-से खड़े रह जाते। मुक्त आकाश में घटाऐं घिर आती हैं ओर नन्हीं-नन्हीं बूंदे पड़ने लगती है या तारों-भरी रात में जब चांद अपनी चांदनी छिटका कर हंसता तो बालक रवि का मन आनन्द से झूम उठता, उसकी आत्मा से कविता फूट निकलने को मचलती। पन्द्रह वर्ष की अवस्था से पहले ही वे रचना करने लग गये थे।

रवीन्द्रनाथ अभी सोलह वर्ष के ही हुए थे कि सन् 1877 में कानून का अध्ययन करने के लिए उन्हें इंगलैण्ड भेज दिया गया। वहां पहले वे ब्राइटन स्कूल में भर्ती हुए। फिर उसे छोड़कर यूनिवर्सिटी कालेज, लन्दन में दाखिल हुए। इस शिक्षा से उन्हें संतोष नहीं हुआ और वे एक वर्ष बाद ही भारत लौट आये। अंग्रेजी की योग्यता बढ़ाने, व्यापक विश्व का अनुभव प्राप्त करने और संसार की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करने के सिवा वहां उन्हें और कुछ प्राप्त न हुआ।

यहां लौटकर वे काव्य-रचना में जुटग ए। बाईस वर्ष की अवस्था में उनका विवाह बंगाल के प्रसिद्ध लेखक रमेशचन्द्र दत्त की पुत्री मृणालिनी देवी के साथ सम्पन्न हुआ। इस पर बंगाल के अनेक प्रतिष्ठित महानुभाव पधारे थे। उनमें 'वन्दे मातरम्' के प्रसिद्ध रचियता बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय भी थे। रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा से प्रभावित होकर आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा था, "यह साहित्य के आकाश का उदीयमान नक्षत्र है।"

रवीन्द्रनाथ आरम्भ से ही प्रतिभाशाली थे। अपने पिता के प्रभाव से बौद्धिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता की एक निर्मल और गहरी धारा उनके भीतर से फूट रही

थी। उनके भीतर बड़े आश्चर्यपूर्ण ढंग से आध्यात्मिक प्रकाश हुआ। उनका वर्णन करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है—"सूर्य देवता सामने के वृक्षों में झाँक रहे थे। मैं उनका स्वागत करने अपने तिमंजिले मकान के छज्जे पर दौड़ गया। वृक्षों पर सूर्य की किरणें पड़ रही थीं। इस समय एकाएक मुझे दिव्य प्रकाश मिला। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु इस समय एक ही प्रतीत होती थी—सारा विश्व एक दिखाई देता था। सब चेतन जगत् यह सारा जीवन, प्रकाश और प्रेम से पूर्ण दिखाई देने लगा। इस अपूर्व दृश्य का वर्णन मानवी शक्ति के परे है।"

वृद्ध पिता ने रवीन्द्रनाथ को सलाह दी कि वे नगर के कोलाहल को छोड़कर गाँव के शान्त वातावरण में रहें। उन्हें यह सलाह बहुत पसन्द आई और वे अपनी जमींदारी स्यालदय नामक गाँव में रहने लगे जो गाँव के किनारे है। यहाँ उनके जीवन के सबसे सुखी दिन बीते। यहाँ उनका प्रकृति-प्रेम और अधिक विकसित हुआ। किसानों के बीच रहकर उन्हें सच्चे भारत की आत्मा के दर्शन हुए और वे उनके साथ जमींदार नहीं, उनके सच्चे हितैषी और मार्गदर्शक बनकर रहे।

अब वे साहित्यिक कार्यों में अधिक प्रवृत्त हुए और अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण लोकप्रिय होने लगे। कुछ लोग उन्हें बंगाल के शेली के नाम से पुकारने लगे। सन् 1891 में 'मानसी' नाम से उनकी एक प्रौढ़ काव्य-रचना प्रकाशित हुई। जिस काव्य ने विशेष ख्याति दी, वह था उनका 'सान्ध्य गीत'। इस रचना को पढ़ने के बाद बंकिम बाबू रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा के इतने कायल हो गये थे कि उनकी प्रसंशा करते न अघाते थे। इसके दो वर्ष बाद 'प्रभात संगीत' निकला। उसकी भी खूब प्रशंसा हुई। पत्र-पत्रिकाओं में अब उनकी रचनाओं की मांग गढ़ गई और वे भी बड़े उत्साह से और मुखर होकर रचना करने में जुट गये। उनकी लेखनी से कविता, नाटक और निबन्धों की धारा फूट निकली। 'प्रभात संगीत' के कुछ समय बाद 'संन्यासी' नामक नाटक और 'नैवेद्य' नाम से एक कविता-संग्रह निकला। फिर तो रचनाओं की बाढ़-सी आ गई। 'बलिदान' नामक नाटक प्रकाशित हुआ जो बंगला का सर्वश्रेष्ठ नामक माना जाता है। 'चित्रांगदा' भी अपनी तरह की बेजोड़ कृति है। फिर 'चित्रा' और 'उर्वशी' नामक रचनाएँ प्रकाश में आईं जो सौन्दर्योपासना की दृष्टि से विश्व-साहित्य में भी बेजोड़ हैं।

उस समय भारत में नवयुग की सृष्टि हो रही थी। एक ओर तो ब्रह्म-समाज और आर्यसमाज जैसी संस्थायें कुरीतियों और रूढ़ियों को मिटाकर समाज में नवचेतना का संचार करके उसे नई दिशा दे रही थीं तो दूसरी ओर कांग्रेस सारे देश को राष्ट्रीयता के सूत्र में पिरो रही थी। उस समय बंगाल देश का नेतृत्व कर रहा था। रवीन्द्रनाथ भी देश-प्रेम से ओत-प्रोत थे। वे विदेशी शोषण के विरुद्ध थे। विदेशी ही क्यों, सब प्रकार के शोषण के वे घोर विरोधी थे। उस समय देश में दो अतिवादी प्रवृत्तियाँ काम कर रही थीं। कुछ लोग हीनभाव से पीड़ित होने के कारण पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के सब कुछ को सर्वोत्तम मानकर उसका अन्धानुकरण कर रहे थे। इसके विपरीत ऐसे लोग भी कम नहीं थे जो विदेशी संस्कृति के सब कुछ को बुरा और हानिकारक मानकर उसे

ठुकरा रहे थे और प्राचीन भारतीय धर्म और संस्कृति के कुछ को अत्युत्तम और कल्याण-कर मानकर उसके अनुसरण की दुहाई देते थे। पर रवीन्द्रनाथ इन दोनों प्रवृत्तियों को अतिवादी मानते थे। उनका कहना था, "तुम अपने को पहचानो। अपना जीवन शुद्ध और समृद्ध करो। तपस्या में तुम्हारी शक्ति अपने आप बढ़ने लगेगी। फिर, किसी की ताकत नहीं जो तुम्हारा अपमान करे।" रवीन्द्रनाथ भारतीय संस्कृति की त्याग, और तपस्या की भावना से अभिभूत थे। वे चाहते थे कि इन श्रेष्ठताओं की पुनः स्थापना हो। इस उद्देश्य से उन्होंने आर्य-सभ्यता और उपनिषदों पर व्याख्यान दिये और सिक्खों, राजपूतों एवं मराठों की वीरता तथा आत्म-विश्वास का काव्यगान किया।

सन् 1901 में रवीन्द्रनाथ ने अपने आदर्शों को मूर्तरूप देने के लिए बोल में 'शान्ति निकेतन' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य भारत की प्राचीन पद्धति पर युवकों को कला और संस्कृति की शिक्षा देना था। उन्हें ईंट-पत्थर के पक्के कमरों के कारागार से घृणा थी। वे चाहते थे कि युवक प्रकृति के साथ एकात्म हो जायें और विश्व में एक विशाल आत्मा का अनुभव करें। वे स्वयं बच्चों से खेलते और वृक्षों की शान्त छाया में मुक्त आकाश के नीचे पढ़ाया करते थे। भगवत्-प्रेम और कला उनके मुख्य विषय थे। विश्व-बन्धुत्व की भावना से प्रेरित होकर वे मानव-मानव में भेद की अपेक्षा एकता के दर्शन करते थे। विदेशों में से भी अनेक व्यक्ति इस संस्था के शान्त और कलामय वाता-वरण से आकृष्ट होकर अध्ययन करने के लिए आया करते थे।

देखते-देखते शान्ति निकेतन विश्व-भारती के रूप परिणत हो गया और कला एवं साहित्य के क्षेत्र में अद्भुत कार्य करने लगा।

सन् 1902 में रवीन्द्रनाथ की पत्नी का देहान्त हो गया और उन पर दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा। पत्नी के प्रति उनकी कोमल भावनाएँ 'स्मरण' नामक कविता-संग्रह में व्यक्त हुई। अब कवि की दृष्टि अधिक अन्तर्मुखी हो गई। सन् 1905 में उनके पिता का भी देहान्त हो गया। इससे उनकी भावनायें और भी अधिक कोमल और परिष्कृत होने लगीं। उनकी प्रतिभा का आलोक भारत की सीमा लाँघकर विदेशों में भी प्रसारित होने लगा। सन् 1909-10 में उन्होंने 'राजा' और 'तिलांजलि' तथा 1911 में 'डाकघर' नाटक लिखा।

सन् 1913 में उनकी रहस्यवादी कविताओं के संग्रह 'गीतांजलि' के अंग्रेजी अनुवाद पर उन्हें विश्व का सबसे बड़ा पुरस्कार 'नोबल पुरस्कार' मिला। यह पुरस्कार विश्व की सर्वश्रेष्ठ कृति पर मिलता है। कहते हैं कि इंगलैण्ड के प्रसिद्ध कवि ईट्स ने जब उनकी कविताओं के अंग्रेजी में अनुवाद किये, जिनकी वहाँ धूम मच गई। 'इण्डिया सोसायटी' ने इन ग्रन्थों को सुन्दर रूप में प्रकाशित किया। दीनबन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज भी रवीन्द्र के प्रशंसकों में थे। रवीन्द्रनाथ के नोबेल पुरस्कार से मिलने वाली विपुल राशि शान्ति निकेतन संस्था को अर्पित कर दी। यह प्रथम पुरस्कार था जो किसी भार-तीय को मिला था। इससे भारत के गौरव की वृद्धि हुई और देश ने बड़े आदर और उत्साह से उन्हें सर्वश्रेष्ठ कवि मान लिया। रवीन्द्रनाथ को जीवन-भर यह बात सालती

रहीं कि विदेश में ख्याति और मान्यता मिलने पर ही भारत ने उनकी काव्य-प्रतिभा को पहचाना, उससे पहले नहीं।

इस पुरस्कार के मिलने के बाद यूरोप और अमेरिका की विभिन्न संस्थाओं से उन्हें व्याख्यान देने के लिए निमन्त्रण आने लगे और उनकी बाढ़-सी आ गयी। अब वे केवल भारत के न रह कर विश्व-भर के हो गये। यूरोप के निकट सम्पर्क ने उनके हृदय में यूरोप की भौतिक सभ्यता के स्वार्थ-पूर्ण स्वरूप को स्पष्ट कर दिया। वहाँ की विलासिता ने उनके हृदय में यह बात पक्की तरह जमा दी थी कि यह सर्वनाश का मार्ग है। उनकी यह भावना दी ट्रम्पेट कविता में प्रकट हुई है।

सन् 1915 में रवीन्द्र के जीवन में एक और महत्त्वपूर्ण घटना हुई उनका एक दूसरी विश्व-विभूति, महात्मा गाँधी से मिलन हुआ और यह सम्बन्ध निरन्तर बढ़ता गया। रवीन्द्र साहित्य और दर्शन के क्षेत्र में प्रसिद्धि पा चुके थे, तो गांधीजी राजनीतिक क्षेत्र में। गांधीजी ने रवीन्द्र को गुरुदेव' के नाम से सम्बोधित किया और रवीन्द्र ने गांधीजी को महात्मा के नाम से। ये दोनों शब्द प्रसिद्ध हो गये और आज तक उनके नाम के साथ जुड़े हुए हैं। मतभेदों के बावजूद इन दोनों महान् विभूतियों का सम्बन्ध उत्तरोत्तर घनिष्ट होता गया, और जीवन के अन्त तक बना रहा। दोनों एक-दूसरे के हृदय को समझते थे। जब महात्मा गांधी ने सन् 1932 में इंगलैण्ड के प्रधानमन्त्री रेम्जे मैक्डोनल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय के विरोध में आमरण अनशन की घोषणा की, तब गुरुदेव विचलित हो गये और शान्ति निकेतन में न बैठे रह सके। एक तरफ उन्होंने इंगलण्ड के प्रधानमन्त्री को कड़ा तार भेजा और दूसरी ओर स्वयं पूना पहुंच कर गांधीजी की परिचर्या में लग गये। समझौता हो जाने पर जब महात्मा गांधी उपवास खोलने लगे तो गुरुदेव ने कविता द्वारा उनका अभिनन्दन किया।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर दोनों एक-दूसरे के पूरक थे। उनकी तुलना करते हुए फ्रांसीसी मनीषी रोम्याँ रोला ने लिखा है कि गांधी और रवीन्द्र हिमालय से निकली उन दो धाराओं के समान हैं जिनमें से एक पूर्व की ओर बहकर गंगा कहलाई और दूसरी पश्चिम की ओर बहकर सिन्धु के नाम से विख्यात हुई। रवीन्द्र और गांधी दोनों विश्व को भारतीय संस्कृति की दो महान देन हैं। एक में हृदय की सुकुमारता है तो दूसरे में आत्मा की तेजस्विता चमक रही है। दोनों इतने महान् हैं कि हम कबीर की तरह असमंजस में पड़ जाते हैं—"गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागँ पाँय।"

इसमें सन्देह नहीं कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का मूल कार्यक्षेत्र साहित्य, कला और अध्यात्म था। विश्वबन्धुत्व और मानवता के प्रति सदा उनका विशेष आग्रह रहा। सीधे राजनीति के अखाडे में उतरने से वे सदा बचते रहे। पर इसका यह अभिप्राय नहीं कि उनमें देश-प्रेम की कमी थी। अपने देश के लिए, देश की मान-रक्षा के लिए वे अपना सर्वस्व बलिदान कर सकते थे। अपनी एक मार्मिक कविता में उन्होंने स्वयं को ही मातृभूमि के चरणों में अर्पित किया है :

"जब मैं स्वर्ग के वितान के नीचे आ खड़ा हुआ तो लज्जा और भय से मुक्त हो गया। मुझे अनुभव हुआ कि विश्व में मेरे लिए भी काम है। इसलिए एक दिन प्रातःकाल मैं खड़ा हुआ अपने देश की धरती पर और करबद्ध प्रार्थना करने लगा—हे माँ, स्वीकार करो यह मेरा जीवन, जो मैं तुम्हें समर्पित करता हूँ।"

देश के पुनरुद्धार के लिए गुरुदेव के मन में बेहद तड़प थी, पर इसके लिए वे जिस मार्ग को अपनाने के पक्ष में थे, वह था आत्म बोध, आत्मसम्मान और आत्मनियन्त्रण का मार्ग, त्याग और तपस्या का मार्ग।

त्याग से जो आध्यात्मिक दृष्टि मिलती है उसे गुरुदेव मानव के उत्थान का मूल मन्त्र मानते थे। अपने एक और निबन्ध में उन्होंने लिखा है—"जो मन्त्र आध्यात्मिक दृष्टि को प्रत्येक वस्तु की आत्मा में प्रविष्ट होने में समर्थ बनाता है, वही भारत का मन्त्र है। वही शांतम्, शिवम् और अद्वैतक (शान्ति, कल्याण और एकता) का मन्त्र है। पश्चिम का भ्रमित मस्तिष्क इसी मन्त्र के लिए भारत के द्वार पर दस्तक देता है।

पर अन्याय से लोहा लेने को गुरुदेव सदा उद्यत रहते थे। चुपचाप अन्याय सहते रहना आपके निकट पाप था। बंग-भंग के विरुद्ध उनका विद्रोही स्वर बड़ा प्रखर था। जलियाँवाला बाग के हत्याकांड से तो वे इतने दुखी थे कि अंग्रेजों में से प्राप्त 'सर' की उपाधि का उन्होंने तुरन्त परित्याग कर दिया। इससे अंग्रेजों को विदित हो गया कि भारत में अभी भी ऐसे लोगों की कमी नहीं जो अन्याय के आगे कभी नहीं झुकते।

सन् 1931 में जब वे विदेश-यात्रा में अत्यन्त सम्मान पाकर भारत लौटे तो सारे देश में बड़ी धूमधाम से रवीन्द्र-जयन्ती मनाई गई। उनके सम्मान में उनके अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हुए। ब्रिटेन के आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने अपना विशेष प्रतिनिधि भेजकर शान्ति निकेतन में ही उन्हें 'डा० आफ लिट्रेचर की उपाधि अर्पित की।

नगर छोड़कर गांव की एकान्त गोद में साधना करते हुए मानवता के इस पुजारी ने अस्सी वर्ष की आयु में 8 अगस्त, 1941 को अपने असंख्य शिष्य-प्रशिष्यों के बीच शरीर त्याग दिया।

स्वतन्त्र भारत का राष्ट्रगीत 'जन-गण-मन' गुरुदेव की अमर देन है। अपने राष्ट्रगीत को गाकर स्वाधीन भारत सदा गुरुदेव को श्रद्धांजलि अर्पित करता रहेगा।

उत्सव में गाने हेतु सामग्री

रवीन्द्र-जयन्ती

सात मई सन् अठारह सौ इकसठ, कलकत्ता नगर नाम।
देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पुत्र हुए, रखा रवीन्द्र नाम।।
भेजा पढ़ने प्राथमिक शाला, ध्यान अध्ययन में जमा नहीं।
बचपन में पढ़ने-लिखने में, बाल रवीन्द्र रमा नहीं।।
विद्याध्ययन की सब व्यवस्था, निज घर ही प्रारम्भ हुई।
आठ वर्ष की आयु में प्रथम, कविता सृजना आरम्भ हुई।।
'पृथ्वीराज पराजय' नाटक, बारह वर्ष की आयु में लिखा।

प्रथम कविता का प्रकाशन, अमृत बाजार पत्रिका में दिखा ।।
अठारह सौ अठत्तर में, कवि कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ ।
तत्पश्चात् आपका, बंगला साहित्य नित ही विकसित हुआ ।।
इंगलैंड जा, रवीन्द्र ने इंगलिश का गहन अध्ययन किया।
अपनी कविताओं में 'रवी' ने मधुर कण्ठ का परिचय दिया ।।
जमींदारी का काम 'रवी' ने बाखूबी निभाया।
'साधना' मासिक पत्र प्रकाशित कर अपना नाम कमाया है ।।
'बोलपुर ब्रह्मचर्याश्रम' मानव शिक्षार्थ स्थापित किया।
पारिवारिक संकटों का सामना, 'रवी' ने डट कर किया ।।
बंग-भंग के विरुद्ध आन्दोलन चला, राष्ट्र-प्रेम प्रचार किया।
विदेशी माल की होली जला, स्वदेशी का प्रचार किया ।।
हिन्दू-मुस्लिम एकता, ग्राम-सुधार पर ध्यान विशेष दिया।
जन-गण-मन राष्ट्रीय गीत लिख, स्वदेश का अभिषेक किया ।।
गीतांजलि पर नोबल पुरस्कार पा, साहित्य शिरोमणि बने ।
डाक्ट्रेट की उपाधि पाकर आप, साहित्य मुक्तामणि बने ।।
'विश्व भारती' के लिए आपने, सर्वस्व बलिदान किया।
त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित कर, देश का गौरव-गान किया ।।
साहित्य-जगत् में रवीन्द्र नाथ जी, शिरोमणि कहलाते हैं।
मातृभूमि के सारस्वती पुत्र 'रवी' गुरुदेव कहलाते हैं।
जिज्ञासु-सेवार्थ आपने, शान्ति-निकेतन स्थापित किया।
जहाँ शिक्षा ग्रहण कर शिष्यों ने, जग में अपना नाम किया ।।
साहित्य-क्रान्ति से आपने, नवयुग का निर्माण किया।
अंग्रेजों की तानाशाही का, फिर मुंह तोड़ जवाब दिया ।।
यूरोप, एशिया, अमेरिका का अनेक बार भ्रमण किया।
मातृ-भूमि की सेवा हित निज जीवन को अर्पण किया ।।
अस्त हो गया आर्य धरा से, दिव्य ज्योति पुंज दिवाकर।
जन-मन बिखलता रह गया, हे गुरुदेव ! तुम्हें गँवाकर ।।
दो हजार गीत लिख, आप महान गीतकार सिद्ध हुए ।
उपन्यासकार, नाटककार, कवि, संगीतज्ञ प्रसिद्ध हुए ।।
तत्त्वज्ञानी, दर्शन-शास्त्री-विज्ञान-जिज्ञासु, लेखक सिद्ध हुए।
भगवन् महिमा गान किया नित, भगवन् प्रेमी सिद्ध हुए ।।
सरल स्वभाव, सात्विक विचार, पत्नी से प्रेम विशेष था।
राजनीति, इतिहास, व्याकरण, अंग्रेजी का ज्ञान विशेष था ।।
साक्षात् सरस्वती पुत्र 'रवी' जो तत्त्वज्ञानी विशेष था।
सब धर्मों का आदर करना, उनका कार्य विशेष था ।।

परिशिष्ट (1) मुस्लिम उत्सव

बारावफ़ात

बारावफ़ात के दो दिन पूर्व छात्रों को इसकी सूचना दे देनी चाहिए। हज़रत मोहम्मद साहब के जीवन के विभिन्न पक्षों को सभा में प्रस्तुत करना चाहिए। इस्लाम से संबंधित विभिन्न चित्रों का संकलन व प्रदर्शन भी किया जाये तो उत्तम रहेगा। यदि संभव हो तो किसी मौलवी या विशेषज्ञ को बुलाना चाहिए एवं उनसे मोहम्मद साहब के संबंध में विचार प्रस्तुत करने का अनुरोध करना चाहिए। कुरान की आयतों को श्याम पट्ट पर शुद्ध रूप में लिखना चाहिए। कव्वाली और संगीत कार्यक्रम आदि का भी अयोजन किया जाय तो उत्तम रहेगा।

मोहम्मद साहब के जन्म से पूर्व अरब देश की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति डावाँडोल थी। अरब का सारा शासन तन्त्र तानाशाही की स्थिति में था। सामन्तों का प्रभुत्व सारे समाज में इस तरह छाया हुआ था कि लोग उनके सामने निकलते हुए भी घबराते थे। अनेक सामाजिक बुराइयाँ समाज में फैलती जा रही थीं। अरबवासी शराब, जुआ और सुन्दरी में लीन थे। नारी को वे भोग की वस्तु समझते थे। एक-एक व्यक्ति अनेकों विवाह करके नारी का शोषण करता रहता था। समाज में गरीबों की स्थिति तो और भी बदतर थी। वे पशुओं से भी निम्न स्तर का जीवन जी रहे थे। सभी ओर अत्याचार, दमन और व्यभिचार का बोलबाला था। धर्म के मामले में भी उनकी विचारधारा संकीर्णता से ग्रस्त थी। वे अनेक देवी-देवताओं की पूजा करते थे। भूत-प्रेत और जिन्न आदि में भी विश्वास करते थे। ऐसे समय में समाज को सही मार्ग-दर्शन देने के लिए मोहम्मद साहब ने जन्म लिया। उन्होंने अपने उपदेशों के द्वारा समाज को नयी प्रेरणा दी।

मोहमम्द साहब का जन्म सन् 561 ईस्वी में अर्थात् आज से कोई 1400 वर्ष पूर्व अरब देश में हुआ था। इनके पिता का नाम अब्दुल्ला और माता का नाम अमीना था। इनका पालन-पोषण इनके दादा अब्दुल मुत्तलिष ने तथा उनकी माता अमीना ने किया। इनकी देखभाल के लिए एक दायी रखी गई थी। बचपन में ही इनकी माता और दादा का भी देहान्त हो गया। उनके चाचा अब्दुल तालिब ने आगे इनका पालन-

पोषण किया।

बचपन से ही ये कठोर परिश्रमी थे। अपने चाचा के साथ ये यात्राएँ करते रहते थे। अपनी ईमानदारी के कारण वे बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गये। मक्का के सभी व्यापारी उनके कार्य व व्यवहार से प्रसन्न थे। 24-25 साल की आयु में खदीजा नामक धनवान विधवा ने इन्हें अपने यहाँ नौकरी दी और आगे चलकर इनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर इनसे विवाह कर लिया।

हज़रत मोहम्मद अपने देशवासियों की दयनीय स्थिति देखकर चिन्तित रहते थे। वे उनके कल्याण के लिए निरन्तर प्रयास करते रहते थे। वे एकान्तप्रिय हो गये और आध्यात्मिक चिन्तन करने लगे। ईश्वरीय प्रेरणा पाकर उन्होंने धर्म-प्रचार का कार्य प्रारंभ कर दिया।

धर्म-प्रचार के मार्ग में भी अनेक कठिनाइयाँ आने लगीं। जब उन्होंने मूर्ति-पूजा आदि का विरोध किया तो लोग इनके विरोधी होने लगे। उनके सिद्धान्तों का इतना अधिक विरोध होने लगा कि उनका मक्का में रहना कठिन हो गया। मोहम्मद साहब जहाँ-जहाँ भी जाते उनका कड़ा विरोध किया जाता। अतः उन्होंने मदीना में जाकर रहने का निर्णय किया। मदीना जाने वाले वर्ष को हिजरी वर्ष के नाम से जाना जाता है।

मोहम्मद साहब के उपदेशों का संकलन 'कुरान' में किया गया है। इसमें जीव, जगत, माया, परमात्मा, परलोक, स्वर्ग-नरक और अन्य विषयों पर विस्तार से चर्चा की गयी है।

मोहम्मद साहब सादा जीवन व उच्च विचार में विश्वास रखते थे। वे स्वयं कर्म में आस्था रखते थे। और दूसरों को भीं मेहनत के लिए प्रेरणा देते थे। वे नारी को आदर की दृष्टि से देखते थे और उसके अधिकारों के हामी थे। वे एकेश्वरवाद में विश्वास रखते थे तथा मूर्ति-पूजा का विरोध करते थे। उनके सिद्धान्तों में नैतिकता पर विशेष बल दिया गया है। वे गरीबों और दुखी प्राणियों के मसीहा थे। उनका भाईचारे में विश्वास था। आज युवा पीढ़ी को उनके जीवन से प्रेरणा लेकर अन्धविश्वासों का विरोध करना चाहिए तथा भाईचारे से रहना चाहिए।

मुहर्रम

मुहर्रम मुसलमानों का त्यौहार है। वस्तुतः यह कोई त्यौहार न होकर शोक मनाने का दिन है। इस दिन हज़रत इमाम हुसैन याज़ीद के हाथों मारे गए थे। हर साल उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट करके मुसलमान भाई इस घटना को याद करते हैं।

हजरत इमाम हुसेन इस्लाम धर्म के प्रवर्त्तक मुहम्मद साहब के पोते थे। इमाम हुसैन और याज़ीद के वंशों के बीच खलीफ़ा के पद के प्रश्न पर प्रारम्भ से झगड़ा चला

आ रहा था। याज़ीद के पिता ने यह क़बूल कर लिया था कि उसकी मृत्यु के पश्चात् हज़रत अली और उत्तराधिकारी ख़लीफा बनेंगे। लेकिन याज़ीद इमाम हुसैन के पिता हज़रत अली एवं उसके भाई हज़रत इमाम को चाहता था। लेकिन याज़ीद दुष्ट चरित्र का व्यक्ति था, इसलिए हुसैन ने मंजूर नहीं किया। वह मक्क छोड़ कर मदीने के लिए चल दिया। जैसे ही वह करबला पहुंचा, वैसे ही याज़ीद की सेना ने उसे घेर लिया। सेना के सिपाहियों ने उसे तथा उसके सिपाहियों को नदी से पीने के लिए पानी भी नहीं लेने दिया। फिर भी हुसैन ने विना अन्न-पानी के भूखे-प्यासे रहकर दस दिनों तक बहादुरी से याज़ीद की सेना के साथ युद्ध किया। अन्त में नमाज में व्यस्त होने की अवस्था में क्रूरतापूर्वक वह मारे गए। इसी शोकपूर्ण घटना की याद प्रत्येक वर्ष मुहर्रम के अवसर पर की जाती है।

मुहर्रम के महीने में मुसलमान लोग दस दिनों तक उपवास करके इस घटना को याद करते हैं। जिस तरह हुसैन को दस दिनों तक अन्न-जल से भेंट नहीं हुई थी, ठीक उसी तरह अब भी लोग दस दिनों तक उपवास करके इस घटना को याद करते हैं। फिर बाँस की खपच्चियों और रंगीन कागज़ों से ताजिया बनाते हैं। बिहार के कुछ हिस्सों में लोग इसे 'दाहा' भी कहते हैं। ये ताज़िये हजरत हुसैन की कब्र के प्रतीक माने जाते हैं। 11वें दिन जुलूस के साथ ताजिये को किसी नदी या तालाब के निकट ले जाते हैं जुलूस के लोग हाय हुसैन ! हाय हुसैन !' कहकर छाती पीटते हैं। तलवार, बाना-बनैठी भी भाँजते हैं। इस तरह खेलते-कूदते ये निश्चित स्थान पर पहुंच जाते हैं। वहाँ वह ताजिये को पानी में बहा देते हैं। उसके बाद लोग घर लौटते हैं, उपवास को तोड़ते हैं और ग़रीबों को दान देते हैं। इस दिन ग़रीब-अमीर सभी मुसलमान यथा-शक्ति दान करते हैं।

इस अवसर पर कभी-कभी नासमझी के कारण हिन्दू-मुसलमानों में झगड़े भी हो जाते हैं। यह खतरनाक बात है। ताजये के अवसर पर 'झरनी' नामक गीत गाया जाता है। जिसमें हिन्दू-मुसलमान दोनों मिलकर गाते हैं और बांस की बनी 'झरनी' को बजा-बजाकर बहुत प्रेम से गाते हैं। इस गीत में करुणा भरी रहती है।

इसलिए, इस त्यौहार में आपस में मनमुटाव नहीं होना चाहिये और मिल-जुल-कर इस शोक-पर्व को मनाना चाहिये।

बाहर के देशों में लोग ताजिया नहीं बनाते। इस त्यौहार को शान्तिपूर्वक मनाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि तैमूरलंग ने ही हिन्दुस्तान में ताजिया कि पद्धति चलाई।

शव्वाल की पहली तारीख़—ईदुलफ़ित्र

इस्लाम के प्रवर्त्तक हज़रत मुहमम्द साहब का जन्म 'मक्क' के फुरैश परिवार में 561 ई० में हुआ था। इनका परिवार प्रतिष्ठित था। मुहम्मद साहब के माता-पिता की

मृत्यु उनके बाल्यकाल में ही हो गई थी, अतः उनका लालन-पालन उनके चाचा और दादा ने किया। मुहम्मद साहब का बचपन ग़रीबी में व्यतीत हुआ। उन्होंने अपने साथ उन ग़रीबों की अवस्था की भी तुलना की तथा यह चेष्टा की कि ग़रीबों के साथ उचित व्यवहार किया जाय।

इस्लाम के चार स्तम्भ—मुहम्मद साहब ने स्लाम के चार स्तम्भ निश्चित किये हैं। वे हैं— (1) नमाज़, (2) रोज़ा, (3) ज़कात,और (4) हज।

प्रत्येक मुसलमान के लिए यह आवश्यक है कि वह दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़े और वर्ष में एक बार रमज़ान के महीने में दिन में उपवास करें। साथ ही अपनी आमदनी का निश्चित भाग ग़रीबों में मुफ्त बांट दे; जीवन में एक बार 'मक्का' जाकर काले पत्थर की परिक्रमा करे। मुहम्मद साहब ने 'मक्का' को इस्लाम का सबसे पवित्र शहर माना है।

ईदुलफ़ित्र एवं रोज़ा का ऐतिहासिक तथा भौगोलिक आधार—मुहम्मद साहब ने रोज़ा का आदेश कई कारणों से दिया। जिस समय मुहम्मद साहब पैदा हुए, उस समय अरब के आस-पास ईसाई एवं यहूदी धर्म का बहुत अधिक बोलवाला था। अरब के पड़ोस में बैजण्टाईन साम्राज्य तथा इस साम्राज्य का राज-धर्म ईसाई था। पूर्व में पार्थियन साम्राज्य था, जहां राष्ट्रीयन धर्म की प्रधानता थी। साथ ही वहाँ बौद्ध लोग भी काफी संख्या में बसते थे। इन सभी देशों के लोगों में भगवान का अवतार हो चुका था, पर अरब अभी पिछड़ा था। हाँ राष्ट्रीय जागरण अरब में भी हो चुका था। ठीक इसी अवसर पर मुहम्मद साहब का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने रमज़ान के महीने को, जो पहले से ही पवित्र चला आता था, मुसलमानों के लिए कठिन तपस्या का महीना निश्चित कर दिया।

रोजा का व्रत एक महीने का होता है। इसे प्रथम चन्द्रदर्शन से आरम्भ करते हैं और महीने के अन्त में प्रथम चन्द्रदर्शन करके खत्म करते हैं। प्रत्येक मुसलमान के लिए आवश्यक है कि वह इस महीने में दिन में न कुछ खाये और न पीये। संध्या होने पर नमाज़ पढ़कर हल्का भोजन किया जाता है। संध्या-समय जब उपवास तोड़ा जाता है, तब भोजन एक साथ करना आवश्यक होता है।

रोज़ा का महत्त्व—रोज़ा मुसलमानों के लिए एक राष्ट्रीय पर्व है। यह संसार के कठोर पर्वों में से एक है। पूरा मुस्लिम जगत् रमज़ान के महीने में उपवास करता है। अमीर एवं ग़रीब, सबको भूख की ज्वाला का अनुभव हो जाता है। एकसाथ तकलीफ़ उठाने के कारण आपसी सहयोग एवं भाईचारे की भावना की वृद्धि होती है। लम्बे उपवास का स्वास्थ्य पर बड़ा ही सुन्दर प्रभाव पड़ता है। कहते हैं, इस्लाम के प्रादुर्भाव के पूर्व भी रमज़ान का महीना अरबी बद्दुओं में पवित्र माना जाता था। मुहम्मद साहब ने इस अरब लोकमत को सुनिश्चित धार्मिक मान्यता प्रदान कर दी।

ईद कैसे मनाई जाय—ईदुलफ़ितर 'रोज़ा की पूर्णाहुति' है। रोज़ा के रूप में

सामूहिक तपस्या पूर्ण होने पर सामूहिक उत्सव मनाना आवश्यक हो जाता है। प्रतिपदा अथवा द्वितीय के चन्द्रदर्शन करके दूसरे दिन ईद मनाई जाती है। कहते हैं, अरब मरु-भूमि में स्थित होने के कारण अत्यधिक गर्मी से पीड़ित होकर वहां के निवासी चन्द्रमा की शीतल चाँदनी में आनन्द का अनुभव करते हैं। यही कारण है कि इस्लाम धर्म में चन्द्रमा का बहुत ही अधिक महत्त्व है।

इस्लामी झंडे पर भी दूज के चन्द्रमा का चिह्न अंकित रहता हैं। ईदुलफ़ित्र के दिन खैरात करना एवं सामूहिक नमाज़ पढ़ना आवश्यक है। यह महान् सामूहिक तपस्या की सामूहिक पूर्णाहुति है। स्वाभाविक है कि इस अवसर पर बड़ी खुशी होती है। प्रत्येक मुसलमान एक दूसरे से बराबरी के आधार पर मिलते हैं अपनी आय का निश्चित भाग दान के रूप में वितरित करते हैं।

शिक्षाएं—पड़ोसी के साथ अच्छा व्यवहार इस्लाम के अनुसार सबसे बड़ा धर्म हैं ईद पर इस बात का खयाल रखा जाता है कि प्रत्येक पड़ोसी से मिलकर ईद की खुशी मनाई जाय

ज़कादा की दस तारीख़ ईदुलजुहा

ऐतिहासिक आधार एंव परम्परा—ईदुलजुहा मुसलमानों के महान् पर्वों में से एक है। इसे बोलचाल की भाषा में बकरीद भी कहते हैं। इस्लाम अरबी बद्दुओं के बीच पैदा हुआ। धार्मिक पुनरुत्थान के साथ ही इसे राष्ट्रीय जागरण मानना चाहिए। अपने उत्पत्तिकाल में इस्लाम ने अरबों के जिन परम्परागत रीति-रिवाजों को ग्रहण किया, ईदुलजुहा उनमें से एक है।

प्राचीन-कथा—कहते हैं, अरबों के धर्मिक गुरु अब्राहम को स्वप्न हुआ की अपनी सबसे प्रिय वस्तु ईश्वर के नाम पर बलिदान कर दो। वे बड़े असमंजस में पड़े उन्होंने अपने प्रिय पुत्र को ईश्वर के नाम पर बलि चढ़ाने का निश्चय किया। परिवार के लोगों एवं पुत्रकी भी सहमति ले ली गई। जब वे अपने पुत्र की कुर्बानी करने लगे तो पुत्र-स्नेह से अभिभूत होकर उन्होंने अपनी आँखों पर पट्टी लगा ली, ताकि कुर्बानी करते समय पुत्र-स्नेह उनकी भक्ति में बाधक न हो जाय। पट्टी बाँधकर अपने प्रिय पुत्र की उन्होंने कुर्बानी की। जब उन्होंने आँखों से अपनी पट्टी उतारी तो देखते हैं कि पुत्र स्वस्थ खड़ा है और उसकी जगह पर एक दुम्बे की कुर्बानी हो गई है। तभी से दुम्बे की कुर्बानी चल पड़ी। संकेत रूप में अल्लाह ने उन्हें बताया कि जानवरों से आदमी का स्थान बहुत ऊंचा हैं, तथा धर्म और अल्लाह के नाम पर पुत्र का बलिदान उचित एवं धर्म-संगत है।

भौगोलिक पृष्ठ भूमि—कहते हैं, इस्लाम के प्रादुर्भाव के पूर्व अरबों के सामाजिक संगठन का आधार कबिलाई था, अर्थात् वे कबीले में बँटे रहते थे और ये कबीले पानी के चश्मों एवं चरगाहों पर अधिकार जमाने के लिए एक-दूसरे से लड़ते रहते थे।

मरुभूमि के कठोर वातावरण ने इनके स्वभाव को अत्यन्त कठोर एवं झगड़ालू बना दिया था। कबीलों के संगठन में बहुदेववाद की प्रथा का होना आवश्यक ही होता है। जिस समय मुहम्मद साहब पैदा हुए, उस समय अरबों में राष्ट्रीय जागरण हो चुका था। तब दृढ़ संगठन के लिए किसी पक्के आधार की जरूरत थी मुहम्मद साहब ने ईदुलजुहा को ही संगठन की एकता के लिए चुना। तब से ईदुलजुहा मुसलमानों का एक पर्व हो गया। उस समय तक यह अरबों की राष्ट्रीय एकता का प्रतीक था, जिसमें केवल एक ईश्वर के नाम पर सर्वस्व होम करने की आज्ञा हुई।

ऐसा कहा जाता है कि मुहम्मद साहब ने अरबों के परम्परागत ईदुलजुहा के पर्व को एक व्यवस्था प्रदान करके एक सुनिश्चित सामाजिक एवं धार्मिक पर्व का रूप प्रदान किया। इस्लाम धर्म मूलतः अहिंसक धर्म है। वैसे तो कबीलों के लोगों में जीव-हिंसा को रोकना आर्थिक कारणों से असम्भव ही है, फिर भी इस्लाम ने इतनी पाबन्दियाँ लगा दी हैं कि अनावश्यक हत्या असम्भव हो गई।

इस्लाम की देन—क़ुर्बानी के सम्बन्ध में इस्लाम ने अनेक निषेधात्मक निर्देश किये हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

(1) बलि देने वाले पशु को पूर्ण स्वस्थ एवं पुष्ट होना आवश्यक है। बच्चा, गर्भवती तथा रोगी पशुओं की क़ुर्बानी निषिद्ध है।

(2) जिबह करने की छुरी खूब तेज़ होनी चाहिए और ठीक गले के पास ही छुरी चलनी चाहिए ताकि उसे कम-से-कम पीड़ा हो।

(3) जिबह करने वाला व्यक्ति चरित्रवान एवं नमाजी होना चाहिए। शराबी, सूदखोर तथा अपढ़ व्यक्ति द्वारा की गई क़ुर्बानी निषिद्ध है।

(4) जिस पशु की क़ुर्बानी की जाती है उसे खूब प्यार से पालना चाहिए।

उपर्युक्त पाबन्दियों से यह सिद्ध हो गया कि इस्लाम में अनावश्यक हत्या एवं पशुओं के प्रति क्रूरता को किस प्रकार अधार्मिक समझा है।

ईदुलजुहा का सामाजिक रूप—ईदुलजुहा का दूसरा नाम क़ुर्बानी भी है। यह पर्व तीन दिनों का होता है। दुम्बे के बदले बकरी, ऊंट आदि की क़ुर्बानी की भी व्यवस्था है। इस्लाम का आदेश है कि क़ुर्बानी के पशु का मांस अपने पड़ौसियों में वितरित कर देना चाहिए, ताकि आपसी भाईचारा और प्रेम बढ़े।

इस पर्व का सामाजिक उद्देश्य है प्रेम बढ़ाना। अतः ऐसा कार्य त्याज्य है जो आपसी भाईचारे के लिए घातक हो।

परिशिष्ट (2)

कुछ महत्त्वपूर्ण गायन व कविताएं

प्रार्थना

वह शक्ति हमें दो दयानिधे कर्त्तव्य मार्ग पर डट जावें।
पर सेवा, पर उपकार में हम, निज जीवन सफल बना जावें।।
हम दीन-दुःखी, निवलों-निकलों के, सेवक बन संताप हरें।
जो हैं अटके, भूले-भटके, उनको तारें, खुद तर जावें।। वह···
छल, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, झूठ, अन्याय से निशदिन दूर रहें।
जीवन हो शुद्ध, सरल अपना, सुचि प्रेम सुधारस बरसावें।। वह···
निज आन, मान-मर्यादा का, प्रभु ध्यान रहे अभिमान रहे।
जिस देश में राष्ट्र में जन्म लिया, बलिदान उसी पर हो जावें।। वह···
वह शक्ति हमें दो दयानिधे, कर्त्तव्य मार्ग पर डट जावें।
पर सेवा, पर उपकार में हम, निज जीवन सफल बना जावें।। वह···

प्रार्थना

दया कर दान भक्ति का हमें परमात्मा देना।
दया करना हमारी आत्मा में शुद्धता देना।।
हमारे ध्यान में आवो प्रभो आँखों में बस जावो।
अंधेरे दिल में आकर के, परम ज्योति जगा देना।।1।।
बहा दो प्रेम की गंगा, दिलों में प्रेम का सागर।
हमें आपस में मिल-जुलकर, प्रभो रहना सिखा देना।।2।।
हमारा कर्म हो सेवा, हमारा धर्म हो सेवा।
सदा ईमान हो सेवा, व सेवक चर बना देना।।3।।
वतन के वास्ते जीना, वतन के वास्ते मरना।
वतन पर जाँ फिदा करना, प्रभो हमको सिखा देना।।4।।

दया कर दान भक्ति का हमें परमात्मा देना।
दया करना हमारी आत्मा में शुद्धता देना ।।

भारत माँ की वन्दना

हे प्यारी भारत माँ, तुझे हम शीश झुकाते हैं।
तेरे पर बलि-बलि जाते हैं, तेरे पर बलि-बलि जाते हैं।
हमें लोरियाँ दी हैं, मग्न हो मीठी बोली में।
हमने नाचना सीखा माँ, तेरी भँगड़े की टोली में ।।
हम गिर-गिर हुए जवान, हमें समझे ना कोई नादान।
आगे को कदम बढ़ाते हैं तेरे पर बलि-बलि जाते हैं ।।1।।
हमें हंसना सिखाया माँ, लहरों की मस्त अदाओं ने।
हमें चलना सिखाया माँ, तेरे बहते दरियाओं ने।
तेरी मीठी मस्त हवा, हमें सदियों से रही जगा।
स्वर्ग को पास बुलाते हैं, तेरे पर बलि-बलि जाते हैं ।।2।।
मिला साहस हमको माँ, तेरे इस उच्च हिमालय से।
मिला सच्चा न्याय माँ, गंगा के एक उछाले से।
तेरे हरे-भरे हैं खेत, कि तेरी सोने जैसी रेत।
मस्तक पर जिसे लगाते हैं, तेरे पर बलि-बलि जाते हैं ।।3।।
हमने जीना सीखा माँ, लहरों की मस्त बहारों से।
हमने मरना सीखा माँ, भगतसिंह से सरदारों से।
हमारे बुद्ध जैसे भगवान् हमारे जवाहर बापू महान्।
कि जिनसे शिक्षा पाते हैं, तेरे पर बलि-बलि जाते है ।।4।।
हम सौगन्ध खाते माँ, भगतसिंह की कुर्बानी की।
हम सौगन्ध खाते माँ, तेरी झाँसी की रानी की ।।
जो तुझ पर आँख उठायेगा, कभी वह ना बच पायेगा ।।5।।

झण्डे का गीत

हिन्द देश का प्यारा झंडा, ऊंचा सदा रहेगा।
ऊंचा सदा रहेगा झण्डा, ऊंचा सदा रहेगा ।। हिन्द देश···
केशरिया बल देने वाला, सफेद है सच्चाई।
हरा रंग है हरी हमारी, खेती की अंगड़ाई ।।
और चक्र कहता है प्रति पल, आगे कदम बढ़ेगा।
ऊंचा सदा रहेगा झण्डा, ऊंचा सदा रहेगा ।। हिन्द देश···
नहीं चाहते हम औरों को, अपना दास बनाना।
नहीं चाहते हम गैरों के, मुँह की रोटी खाना ।।

सत्य, न्याय के लिए हमारा, लहू सदा ही बहेगा।
ऊंचा सदा रहेगा झंडा, ऊंचा सदा रहेगा।। हिन्द देश···
सागर पर लहराये झंडा, यह पर्वत पर फहराये।
जहाँ कहीं भी जाये झंडा, यह सन्देश सुनाये।।
ऊंचा सदा रहा है झंडा, ऊंचा सदा रहेगा।
हिन्द देश का प्यारा झंडा, ऊंचा सदा रहेगा।। ऊंचा सदा···
हम कितने सुख सपने लेकर इसको लहराते हैं।
इस झंडे पर मर मिटने की, कसम सभी खाते है।।
हिन्द देश का प्यारा झंडा, घर-घर में फहरेगा।
ऊंचा सदा रहेगा झंडा, ऊंचा सदा रहेगा।। हिन्द देश···

सामूहिक गान

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी, यह गुलसिताँ हमारा।।
पर्वत वोह सबसे ऊंचा, यह साया आसमाँ का।
वोह सन्तरी हमारा, वोह पासवाँ हमारा।। सारे जहाँ से···
गोदी में खेलती हैं, इसके हजारों नदियाँ।
गुलशन है जिसके दम से, रश्के जुन्हां हमारा।। सारे जहाँ से···
ऐ आबे रोदे गंगा, वह दिन है याद तुझको।
उतरा तेरे किनारे, जब कारवाँ हमारा।। सारे जहाँ से···
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारी।। सारे जहाँ से···
मजहब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना।
हिन्दी है हम वतन है, हिन्दोस्ताँ हमारा।। सारे जहाँ से···

(इकबाल)

सामूहिक गान

ऐ मेरे वतन के लोगों, तुम खूब लगा लो नारा।
ये शुभ दिन है हम सबका, लहरा लो तिरंगा प्यारा।।
मत भूलो सीमाओं पर, वीरों ने हैं प्राण गँवाये।
कुछ याद उन्हें भी कर लो, जो लौट के घर ना आये।।
ऐ मेरे वतन के लोगों, जरा आँखों में भर लो पानी।
जो शहीद हुए हैं उनकी, जरा याद करो कुरबानी।।
जब घायल हुआ हिमालय, खतरे में पड़ी आजादी।
जब तक थी साँस लड़े वो, फिर अपनी लाश बिछा दी।।

हो गये वतन पर निछावर वो वीर थे कितने गुमानी।
जो शहीद हुए हैं उनकी, जरा याद करो कुरबानी।। ऐ मेरे वतन···
जब देश में थी दीवाली, वो खेल रहे थे होली।
जब हम बैठे घरों में, वे झेल रहे थे गोली।।
थे धन्य जवान वो अपने, थी धन्य वो उनकी जवानी।
जो शहीद हुए हैं उनकी, जरा याद करो कुरबानी।। ऐ मेरे वतन···
कोई, सिख, कोई जाट, मराठा, कोई गुरखा, कोई मदरासी।
सरहद पर मरने वाला, हर वीर था भारतवासी।।
जो खून गिरा पर्वत पर, वो खून था हिन्दुस्तानी।
जो शहीद हुए हैं उनकी, जरा याद करो कुरबानी।। ऐ मेरे वतन···
थी खून से लथपथ छाती, फिर भी बन्दूक उठाके।
एक-एक ने दस को मारा, फिर गिर गये होश गंवा के।।
जब अन्त समय आया तो, कह गये कि अब मरते हैं।
खुश रहना ऐ देश के प्यारो, अब हम तो सफर करते हैं।।
तस्वीर नयन में खींचो, क्या लोग थे वे अभिमानी।
जो शहीद हुए हैं उनकी, जरा याद करो कुरबानी।। ऐ मेरे वतन···

मादरे हिन्द का वोह राजदुलारा न रहा

मुल्क का तेरी नजर में था हरेक सूदो जियाँ।
मौत से तेरी बना मातम-कदा सारा जहाँ
तेरी सानी अब नहीं है हिन्द में नेहरू कहीं।
अय अमीरे कारवाँ अय मुजिदे अम्नो अमाँ।।
बहुत एहसास है नेहरू इन्हें तेरे न होने का।
करेंगे अब तेरे आईन की पूजा जहां वाले।।
कमी तो अब तेरी महसूस होगी अहले गुलशन को।
तुझे अब याद करके रोयेंगे हिन्दोस्ताँ वाले।।
अमन का चैन का पैगाम सुनाया जिसने।
सारे संसार को अखलाक सिखाया जिसने।।
तफ़का शेखो बरहमन का मिटाया जिसने।
हाय ! अफसोस के रहबर वोह हमारा न रहा।।

मादरे हिन्द का वोह राजदुलारा न रहा।।

जंग में अम्न का पैगाम दिया था जिसने।
हंस के दुनियाँ के हरेक गम को सहा था जिसने।।
कौम वास्ते क्या-क्या न किया था जिसने।
ऐसा मुशफिक कोई दुनियाँ में हमारा न रहा।।

मादरे हिन्द का वोह राजदुलारा न रहा।।

जिसने हर जुल्मों तशद्दुद को मिटाकर छोड़ा।
जिसने मजदूरों को आदूदा बनाकर छोड़ा।।
जिसने आजाद वतन अपना करा कर छोड़ा।
मुल्क का हाय ! दरक्शां वोह सितारा न रहा।।
मादरे हिन्द का वोह राजदुलारा न रहा।।

देश से फिरका-परस्ती को मिटाने वाला।
अपने दुश्मन को भी सीने से लगाने वाला।।।
एक मरकट पे हरेक शक्स को लाने वाला।
ऐसा मुनिस कोई हमदर्द हमारा न रहा।।
मादरे हिन्द का वोह राजदुलारा न रहा।।

वोही साकी, वोही शीशे, वोही महफिल है मगर।
वोही राही, वोही प्यादा, वोही मंजिल है मगर।।
वोही दरिया, वोही मौजें, वोही साहिल है मगर।
ना खुदा तो है सफिने का किनारा न रहा।।
मादरे हिन्द का वोह राजदुलारा न रहा।।

उसकी अजमत को भला दिल से भुलायें कैसे।
उसकी खिदमत को भला दिल से भुलायें कैसे।।
उसकी उल्फत को भला दिल से भुलायें कैसे।
सच तो यह है कि गरीबों का सहारा न रहा।।
मादरे हिन्द का वोह राजदुलारा न रहा।।

'पारसा' देश में नेहरू-सा न होगा इन्साँ।
जिसने आखिर में कहा मुझ पे यह होगा ऐहसाँ।।
मेरी मिट्टी को भी कर देना वतन पे कुरबाँ।
आज वो गांधीयों आजाद का प्यारा न रहा।।
मादरे हिन्द का वोह राजदुलारा न रहा।।

मेरे भारत के कण-कण में

मेरे भारत के कण-कण में, गंगा माँ का डेरा है।
स्वच्छन्द पवन में लहराता, यह पावन तिरंगा मेरा है।।
अमर शहीदों ने खाई थीं देश की खातिर गोलियाँ।
जलियाँवाले बाग में भुन गई निहत्थों की टोलियाँ।।
ममता बिलख-बिलख कर रोई पुंछी, सिन्दूर-रोलियाँ।
भोले-भाले मासूमों का यहाँ, रक्त वहा बहुतेरा है।।
मेरे भारत के कण-कण में गंगा माँ का डेरा है।
स्वच्छन्द पवन में लहराता यह पावन तिरंगा मेरा है।

समर भूमि में अमर हो गए आजादी के परवाने।
मातृभूमि की बलि-वेदी पर शीश चढ़ा गए दीवाने।
अंगारों पर हंसते-हंसते वीर सो गए मस्ताने।
फाँसी के तख्ते चूमे तब पाया सुभग सवेरा है।
मेरे भारत के कण-कण में, गंगा माँ का डेरा है।
स्वच्छन्द पवन में लहराता, यह पावन तिरंगा मेरा है ॥

हमने कब चाहा है जग में, गैरों की धरती हथियाना।
हमने कब चाहा है मग में, औरों के काँटे बिखराना ॥
जीओ और जीने दो सबको, सबको यह पथ बतलाना।
अपने हित तो सकल विश्व ही, लगता यह घर मेरा है ॥
मेरे भारत के कण-कण में, गंगा माँ का डेरा है।
स्वच्छन्द पवन में लहराता, यह पावन तिरंगा मेरा है ॥

इन्साफ की डगर पे···

इन्साफ की डगर पे बच्चो दिखाओ चलके,
ये देश है तुम्हारा नेता तुम्हीं हो कल के।
दुनिया के रंग सहना और कुछ न मुंह से कहना।
सच्चाइयों के बल पे आगे को बढ़ते रहना,
रख दोगे एक दिन तुम संसार को बदल के। इन्साफ की···
अपने हों या पराये सबके लिए हो न्याय,
देखो कदम तुम्हारा हरगिज न डगमगाये,
रास्ते बड़े कठिन हैं चलना सम्भल-सम्भल के। इन्साफ की···
इन्सानियत के सिर पर इज्जत का ताज रखना,
तन-मन की भेंट रखकर भारत की लाज रखना।
जीवन नया मिलेगा अन्तिम चिता में जल के। इन्साफ की···

मेरे वतन से अच्छा कोई वतन नहीं है

मेरे वतन से अच्छा कोई वतन नहीं है
सारे जहाँ में ऐसा कोई रतन नहीं है
इस देश जैसी गंगा-जमुना कहीं न होगी
वेदों की खूबसूरत रचना कहीं न होगी
दुनिया में ऐसी धरती ऐसा गगन नहीं है, मेरे वतन···
ये राम कृष्ण गौतम नानक गुरु की बस्ती
पैदा यहाँ हुई थी गांधी की नेक हस्ती
किसी और देश की तो ऐसी पवन नहीं है, मेरे वतन···

इस सेर जमीं पर आये गुणवान कैसे-कैसे
कवि कालिदास जैसे कवि तानसेन जैसे
मुझे नाज है वतन पर झूठी लगन नहीं है, मेरे वतन···

वन्दे मातरम्

वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम्।
सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलाम्। मातरम्। वन्दे मातरम्॥
शुभ्र ज्योत्स्नाम् पुलकित यामिनीम्।
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्॥
सुहासिनीम् सुमधुर भाषिणीम्।
सुखदाम् वरदाम् मातरम्। वन्दे मातरम्॥
त्रिंशकोटि कण्ठ कल-कल निनाद कराले,
द्वित्रिशं कोटि भुजै धृत-खर करवाले।
के वले मा तुमि अबले बहुबल धारिणीम्॥
नमामि तारिणीम्, रिपुदल वारिणीम्।
मातरम्। वन्दे मातरम्॥
श्यामलाम् सरलाम् सुस्मिताम् भुषिताम्
धरणीम् भरणीम् मातरम्
वन्दे मातरम्॥

राष्ट्रगान

जन गण मन अधिनायक जय हे
भारत-भाग्य-विधाता !
कामरूप, पंजाब, मराठा, द्राविड़, उत्कल, बंगा।
विन्ध्य, हिमाचल, यमुना, गंगा उच्छल जलधि-तरंगा॥
तव शुभ नामे जागे
तव शुभ आशिष माँगे
गाए तव जय-गाथा
जन गण मंगलदायक जय हे
भारत-भाग्य-विधाता !
जय हे, जय हे, जय हे
जय, जय, जय, जय हे।

□□